

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182132

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83/1065A Accession No. G.H. 346

Author उपाध्याय, जयोध्यासिंह ।

Title अथर्ववेद सूक्त ११२४

This book should be returned on or before the date last marked below.

समर्पण ।

श्रील श्रोयुत मनोन्नते ~~प्र~~खिलगुणमौख्यलंकृत
सी० ई० काफोर्ड साहब बहादुर मुहतमिम बंदोबस्त
आज़मगढ़ बिबुधवृन्दविभूषणेषु !
प्रभुवर !

बालार्कअरुणरागरंजित प्रफुल्ल पाटलप्रसून, परि-
मलविकोर्णकारी मन्दबाहो प्रभात समीरण, अतसो-
कुसुमदलोपमेयकान्ति नवजलधरपटल, पीयूष-
प्रवर्षणकारी सुपूर्ण शुभ्र शारदीय शशांक, रविकिरणो-
द्भासित वोचिविच्छेपणशीला तरंगिणी, श्यामल-
तृणावरण-परिशोभित उत्तुंग शैलशिखरश्रेणी, नव-
किशलयकदम्बसमलंकृत वासंतिक बिबिध बिटपावली,
कौकिलकुल-कलंकीकृत कंठसमुत्कीर्ण कलनिनाद,
अत्यन्त मनोमुग्धकर और हृदयतलस्पर्शी हैं । किन्तु
इन अलौकिक प्रमोदकर प्राकृतिक पदार्थों को अपेक्षा
किसी पुरुषरत्न के पवित्र औदार्य्यादिगुण विशेषहृदय
ग्राही और विमुग्धोक्त-मनःप्राण हैं । अतएव काश्चित्
आश्चर्य्य का विषय नहीं है, यदि महेदय के लोकौ-
त्तरगुणग्राम औदार्य्य, धैर्य्य, दया, दाक्षिण्य, अदम्य

उत्साह, अद्भुत साहस, विलक्षण कार्यदक्षता और अश्रुतपूर्व अमायिकता इत्यादि मेरे हृदय को हर्षोत्फुल्ल और विमुग्ध करें। आज वही हर्षोत्फुल्ल और विमुग्ध हृदय अपने भक्त्युद्गार-स्वरूप इस 'अधखिला फूल' नामक उपन्यास को विनीत भाव से आपके करकमलों में सादर समर्पित करता है। यह सत्य है कि यह साधारण उपहार महानुभाव के पदमर्यादासम्मुख बहुत ही तुच्छ है, किन्तु जिन मानवमौलिमुकुट महाराजों के सन्निकट एक विभवशाली व्यक्ति का समर्पित रत्नाकीर्ण आभरण उपढौकनस्वरूप परिगृहीत होता है—उन्हींके चरण-कमलों में एक दीन भावुक जन के अर्पण किये हुए कतिपय साधारण प्रसून भी आहत और स्वीकृत होते हैं। विशेष लिखना लोकलोचन भगवान भास्कर को दीप दिखलाना है।

विनयावनत,
हरिऔध।

श्रीगणेशाय नमः ।

भूमिका ।

आज ठेठ हिन्दी की यह दूसरी पुस्तक आप लोगों के सामने है । मुझको इस बान का खेद है कि यह पुस्तक स्वर्गीय श्रीयुत बाबू रामदीन सिंह की उपस्थिति में न तो पूरी लिखी जा सकी और न छप सका । उनको इस पुस्तक के आद्योपान्त अवलोकन का, और जहां तक शीघ्र संभव हो सके इसके प्रकाश कर देने का एकान्त अनुराग था । किन्तु समय ने उनकी यह इच्छा पूरी न होने दी, वे इसको अधूरा छोड़ कर स्वर्गरूढ़ हुए—और हम लोगों को अपार शोक से संतप्त कर गये । उनके स्वर्गगमन के एक वर्ष उपरान्त आज यह पुस्तक प्रकाशित होती है—और आप लोगों के सम्मुख उपस्थित को जाती है । यद्यपि आज वे इस धरातल में नहीं हैं, तथापि उनकी प्रत्येक सदिच्छा की पूर्ति—हम लोगों का वैसा ही कर्त्तव्य है—जैसा कि उनकी उपस्थिति में होता । अतएव आज भी इस ग्रन्थ के प्रकाशन द्वारा, उनकी एक इच्छा को पूरी होते देख कर हम यह समझते हैं, कि उनके विषय में हमारे जितने कर्त्तव्य हैं, उनमें से एक का पालन हुआ, और हमारे लिये यह एक संतोष का विषय है ।

जिस भाषा में यह भूमिका लिखी गयी है—यह भाषा आजकल हिन्दी लेखकों को अभ्यस्त सी है । क्योंकि अधिकतर ग्रन्थ और समाचारपत्र इसी भाषा में लिखे जाते और प्रकाशित होते हैं । जिस विषय में जिसको अभ्यास है, उसमें वह प्रत्येक कार्य्य सुविधा

के साथ कर सकता है। इसी सूत्र से इस भूमिका की भाषा में आज कल कोई उपन्यास किम्बा ग्रन्थ लिखना, इतना दुष्कर नहीं है, जितना कि इसी भाषा की आनुसंगिक किसी नवीन भाषा में। मनुष्य स्वभावतः सुविधा को प्यार करता है और यथासामर्थ्य उसी ओर प्रवृत्त होने की चेष्टा करता है। तदनुकूल “ ठेठ हिन्दी का ठाट ” लिखने पश्चात् उसी भाषा में कोई दूसरा ग्रन्थ लिखने का मेरा विचार न था। किन्तु मानोन्नत महात्मा डाक्टर जी० ए० ग्रिअर्सन साहब बहादुर की असाधारण गुणग्राहकता और अभूतपूर्व उत्साहप्रदान से, मैं “अधखिलाफूल” नामक यह दूसरा ग्रन्थ भी ठेठ हिन्दी में लिखने का बाध्य हुआ। मेरे लुद्ध ग्रन्थ का उक्त महात्मा ने जितना समादर किया है, उसके लिये मेरा समुत्सुक हृदय कृतज्ञताव्यञ्जक सद्भावसुमनोज्ज्वलि द्वारा भक्तिभाव से अर्घ्यार्पण की पूजा करता है। उक्त महानुभाव की असाधारण गुणग्राहकता, अभूतपूर्व उत्साहप्रदान और अपूर्व समादर—वास्तव बात तो यह है कि केवल मेरे लिये ही नहीं—हिन्दीहितैषी मात्र के लिये कृतज्ञता-प्रकाश की वस्तु और अपार आनन्द की सामग्री है। अतएव आत्मश्लाघा दोष से दूषित होने का भय होने पर भी मैं उनके प्रकाश करना चाहता हूँ। पाठकगण देखें वीर ब्रिटिश जाति का हृदय कितना गुणग्राही है—और वह गुण का कहां तक समादर करती है।

श्रीयुत स्वर्गीय बाबू रामदीन सिंह जी द्वारा “ ठेठ हिन्दी का ठाट ” पाकर प्रशंसित महोदय ने उसके विषय में जे० अनुमति

प्रकाश की है—उससे न केवल उनका पूर्ण हिन्दी-भाषानुराग ही घोषित होता है—बरन उनकी सहृदयता और सज्जनता का भी पूरा परिचय मिलता है। वह अनुमति यह है :—

टाउनसेन्ड

शिमला

प्रियमहाशय,

२७/११

“ठेठ हिन्दी का ठाट” के सफलता और उत्तमता से प्रकाश होने के लिये मैं आपको बधाई देता हूँ। यह एक प्रशंसनीय पुस्तक है।

+	+	+	+	+
+	+	+	+	+

मुझे आशा है कि इसकी बिक्री बहुत होगी, जिसके कि यह योग्य है। आप कृपा करके पण्डित अयोध्या सिंह से कहिये कि मुझे इस बात का बहुत हर्ष है कि उन्होंने सफलता के साथ यह सिद्ध कर दिया है कि बिना अन्य भाषा के शब्दों का प्रयोग किये ललित और ओजस्विनी हिन्दी लिखना सुगम है। संस्कृत शब्दों का प्रयोग आधार दंड की नाई है। लंगड़े यदि चलने के समय उस आधार से चले तो ठीक है, परन्तु आप यदि किसी दृष्ट पुष्ट मनुष्य को उससे काम लेते हुए देखेंगे, तो हँसेंगे। उसी प्रकार हम लोगों को उस लेखक पर, जो हिन्दी लिखने में संस्कृत के बहुत से शब्दों का प्रयोग करना है, हँसी आवेगी। मैंने सम्पूर्ण कापियाँ इस पुस्तक की, जो आपने कृपा करके भेजी थीं, ऐसे मित्रों के पास भेज दी हैं, जो संभव है कि इसकी वृद्धि करने में सहायक होंगे। मैं कुछ पुस्तकें

पश्चिमोत्तर प्रान्त के शिक्षा विभाग के उच्च कर्मचारियों के पास भेजना चाहता हूँ ।

+	+	+	+	+	+	+	+
+	x	+	+	+	+	+	+

आपका सच्चा

जार्ज ए० ग्रिअर्सन ।

उक्त महात्मा केवल ऊर्ध्व लिखित अनुमति ही प्रगट करके तान्त नहीं हुए, उन्होंने कार्यक्ष्ण पुरुषों के समान अपने विचार को कार्य में भी परिणत करना चाहा । जिस समय कथित ग्रंथ उन को प्राप्त हुआ, उनकी सेवा का समय पूर्ण हो गया था, और वे विलायत-यात्रा के लिये प्रस्तुत हो रहे थे । कुछ ही दिनों पीछे वे भारतवर्ष को परित्याग कर विलायत पधार गये । अतएव उन्होंने जो कुछ विचार "ठेठ हिन्दी का ठाट" के विषय में प्रान्तिक राज-कर्मचारियों से प्रगट किया था वह कार्य में परिणत न हो सका । केवल बङ्गाल प्रान्त के शिक्षा-विभाग ने उसको बिहार प्रदेश को पुरस्कार-पुस्तकों में ग्रहण किया । किन्तु इससे उक्त महाशय भगोत्साह नहीं हुए, उन्होंने विशेष चेष्टा करके उसको 'सिविल-

Townsend,

Simla

5-7-99

My dear Sir,

I must congratulate you on the successful issue of "Theth Hindi ka [Tnat, " It is an admirable book and I have written to Mr. Pedler and other friends strongly recommending

सर्विस' परीक्षा की पाठ्यपुस्तकों में युक्त कराया और आज कल वह उक्त परीक्षा की पाठ्यपुस्तकों में परिगृहीत है। उक्त पुस्तक के 'कोर्स' में परिगृहीत हो जाने पर प्रशंसित महोदय ने निम्नलिखित पत्र स्वर्गीय बाबू साहब को लिखा था।

रथफार्नहम

किम्बरली

प्रिय महाशय,

सरे—१५-१-०३

आप यह सुनकर अवश्य प्रसन्न होंगे कि "ठेठ हिन्दी का ठाट"

its use in schools. I trust that it will have the large sale which it deserves. Will you kindly tell Pandit Ayodhya Singh how glad I am that he has so successfully proved that it is easy to write elegantly and at the same time strongly in Hindi without having to use foreign words. The use of Sanskrit words is like a crutch. It is quite right for a lame man to use a crutch when he has to walk, but if you see a strong man using a crutch you only laugh at him. So you should laugh at a writer who uses many Sanskrit words when he wants to write Hindi. I have sent all the copies of the book, which you were so good as to send me, to friends who would be likely to help it forward.

+	+	+	+	+	+	+	+
+	+	+	+	+	+	+	+

[Yours very sincerely,

GEORGE A. GRIERSON

भारतवर्षीय सिविलसर्विस परीक्षा की पाठ्य पुस्तकों में यहां पर
स्वीकृत हुआ ।

+	+	+	+	+	+	+	+
+	+	+	+	+	+	+	+
+	+	+	+	+	+	+	+

आपका सच्चा
जार्ज ए० ग्रियर्सन ”

एक दूसरे अवसर पर जो उन्होंने अपनी अनुमति मेरे विषय
में प्रकट की है—उसके लिये मैं उक्त महोदय को शतशः धन्यवाद दे
कर भी तृप्त नहीं होता हूँ । मिर्जापुर निवासी बाबू काशीप्रसाद से
हिन्दी भाषा के सुलेखक भली भाँति परिचित हैं । वर्त्तमान हिन्दी
साहित्य-सेवकों में एक यह महाशय भी हैं । इन्होंने उक्त महोदय
के पास एक पत्र लिख कर हिन्दी भाषा के आथरों के विषय में
कुछ प्रश्न किये थे । इनके पत्र के उत्तर में जो कुछ उक्त महात्मा ने

Rathfarnham,
Camberley,
Surrey.
15-1-03

DEAR SIR,

You will no doubt be glad to hear that Theth Hindi ka
Thath has been made a text-book for the Indian Civil Service
in this country.

+	+	+	+
+	+	+	+
x	x	x	x

Yours very sincerely,
GEORGE A. GRIERSON.

लिखा है उसका अविकल अनुवाद नीचे प्रकाश किया जाता है । पाठकगण देखें एक लुप्त लेखक का उत्साह इस पत्र में किस प्रकार बर्द्धन किया गया है ।

“ आपने मुझसे पूछा है कि हिन्दी में मेरी अनुमति अनुसार सबसे बड़ा आथर (ग्रन्थकार) कौन है ? मैं बिना किसी आगा-पीछा के कहता हूं कि मेरे विचार में भारतवर्षीय ग्रन्थकारों में तुलसीदास निर्विवाद सबसे बड़े ग्रन्थकार हैं । मैं उनको संस्कृत के सबसे बड़े ग्रन्थकारों से भी बढ़ कर समझता हूं । मुझको अच्छी हिन्दी पढ़ने में बहुत आनन्द प्राप्त होता है । विचार प्रगट करने के सम्बन्ध से आज कल जितनी सर्वाङ्गपूर्ण भाषायें प्रचलित हैं, मैं उन में से एक इस भाषा को भी समझता हूं । परन्तु मेरा विचार है कि संस्कृत शब्दों को मिलाकर उस लेखप्रणाली द्वारा जो थोड़े दिनों से.....में प्रचलित हो रही है, इसकी बहुत बड़ी हानि की जा रही है । शुद्ध ठेठ हिन्दी एक उत्कृष्ट भाषा है, हिन्दी और संस्कृत शब्दों का सम्मेलन जो.....में प्रचलित है, मेरे विचारानुसार बहुत ही भयानक संमिश्रण है, और उसी प्रकार व्यर्थ है, जैसा कि फारसी शब्दों से भरी हुई उर्दू—जिसको कोई कोई मौलवी काम में लाते हैं । तुलसीदास ने जिस विचार को चाहा, ठेठ हिन्दी में प्रगट किया, मुझको कोई कारण ऐसा दृष्टिगत नहीं होता है, कि जिस से लोग यह सोचें कि वह उनसे अधिक जानते हैं ।

दूसरे ग्रन्थकार जिनका मैं विशेष अनुरक्त हूं ‘बिहारीलाल’ हैं और मुझको सूरदास की रचनाओं के पढ़ने का भी अनुराग है ।

कतिपय लल्लू लाल के गद्य भी बहुत ही हृदयग्राही हैं, परन्तु उनके समय से मेरे विचार में बहुत ही कम लोग शुद्ध (ठेठ) हिन्दी के लिखनेवाले हुए हैं ॥

मेरी इच्छा है कि और लोग भी “हरि औध” के बनाये हुए “ठेठ हिन्दी का ठाट” के स्टाइल में लिखने का उद्योग करें और लिखें—जब मैं देखूंगा कि पुस्तकें वैसी ही भाषा में लिखी जाती हैं, तो मुझको फिर यह आशा होगी कि आगामी समय इस भाषा का अच्छा होगा, जिसको कि मैं तीस वर्ष से आनन्द के साथ पढ़ रहा हूँ ।” *

(* Letter from Dr. G. A. Grierson to B. Kashi Prasad,
Rathfarnham,
Camberely,
Surrey. 10. 1. 04.

You ask me who in my opinion is the best author in Hindi. I have no hesitation in saying that I am certain that the greatest author in any Indian language was Tulsi Das. I consider him a greater writer than even the best Sanskrit authors. I delight in reading good Hindi, which I consider to be one of the most perfect languages in existence when considered as a medium for expressing thoughts but I consider that it is very greatly injured of late years by the fashion which is growing up in..... of using Sanskrit words in writing Hindi. Pure Theth Hindi is a magnificent language. The mixture of Hindi and Sanskrit which is current in.....is to my mind a horrible concoction, quite as unnecessary,

इस अवसर पर मैं उन दूसरे सज्जनों को भी नहीं भूल सकता कि जिन लोगों ने भी मेरी इस लघु पुस्तिका को आदर की दृष्टि से देखा है। काशी नागरोप्रचारिणी सभा के उत्साही सभासद उक्त सभा के नवें वार्षिक विवरण के पृष्ठ २१ में लिखते हैं—

“इस वर्ष एक सभासद ने यह प्रश्न किया कि हिन्दी गद्य और पद्य की कौन कौन ऐसी उत्तम पुस्तकें हैं, जिन्हें सब लोगों को और विशेष कर उन लोगों को पढ़ना चाहिए, जो हिन्दी में योग्यता प्राप्त करना चाहें। बहुत विचार कर सभा ने निश्चय किया कि नीचे लिखी गद्य और पद्य की पुस्तकें हिन्दी में उत्तम हैं, और इन के पढ़ने से हिन्दी का अच्छा ज्ञान तथा इसके इतिहास और गठन में किस प्रकार परिवर्तन हुआ है और किस काल में कैसी भाषा का प्रचार था—इसका भी पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त हो जायगा।”

इतना लिख कर पृष्ठ २१ में २१ गद्य ग्रन्थ के और २० पद्य ग्रन्थ.

as the highly persianised Urdu employed by some Maulvis. Tulsi Das was able to express all that he wanted in Theth Hindi, and I do not see why people of the present day should think that they know better than him. Another very favourite author of mine is Bihari Lal, and I am also fond of reading Sur Dasa. Some of Lallu Lal's Prose Hindi is very charming, but since his day, in my opinion, there have been very few writers of Pure Hindi at all. I wish more people would try, and write in the style of the Theth Hindi ka Thath of Hari Audh. When I see books written in that language I shall again have hopes for the future of the language which it has been my pleasure to study for the last thirty years.”

कतिपय लल्लू लाल के गद्य भी बहुत ही हृदयप्राही हैं, परन्तु उनके समय से मेरे विचार में बहुत ही कम लोग शुद्ध (ठेठ) हिन्दी के लिखनेवाले हुए हैं ॥

मेरी इच्छा है कि और लोग भी “हरि औध” के बनाये हुए “ठेठ हिन्दी का ठाट” के स्टाइल में लिखने का उद्योग करें और लिखें—जब मैं देखूंगा कि पुस्तकें वैसी ही भाषा में लिखी जाती हैं, तो मुझको फिर यह आशा होगी कि आगामी समय इस भाषा का अच्छा होगा, जिसको कि मैं तीस वर्ष से आनन्द के साथ पढ़ रहा हूँ ।” *

(* Letter from Dr. G. A. Grierson to B. Kashi Prasad,)

Rathfarnham,

Camberely,

Surrey. 10. 1. 04.

You ask me who in my opinion is the best author in Hindi. I have no hesitation in saying that I am certain that the greatest author in any Indian language was Tulsi Das. I consider him a greater writer than even the best Sanskrit authors. I delight in reading good Hindi, which I consider to be one of the most perfect languages in existence when considered as a medium for expressing thoughts but I consider that it is very greatly injured of late years by the fashion which is growing up in..... of using Sanskrit words in writing Hindi. Pure Theth Hindi is a magnificent language. The mixture of Hindi and Sanskrit which is current in.....is to my mind a horrible concoction, quite as unnecessary,

इस अवसर पर मैं उन दूसरे सज्जनों को भी नहीं भूल सकता कि जिन लोगों ने भी मेरी इस लघु पुस्तिका को आदर की दृष्टि से देखा है। काशी नागरोप्रचारिणी सभा के उत्साही सभासद उक्त सभा के नवें वार्षिक विवरण के पृष्ठ २१ में लिखते हैं—

“इस वर्ष एक सभासद ने यह प्रश्न किया कि हिन्दी गद्य और पद्य की कौन कौन ऐसी उत्तम पुस्तकें हैं, जिन्हें सब लोगों को और विशेष कर उन लोगों को पढ़ना चाहिए, जो हिन्दी में योग्यता प्राप्त करना चाहें। बहुत विचार कर सभा ने निश्चय किया कि नीचे लिखी गद्य और पद्य की पुस्तकें हिन्दी में उत्तम हैं, और इन के पढ़ने से हिन्दी का अच्छा ज्ञान तथा इसके इतिहास और गठन में किस प्रकार परिवर्तन हुआ है और किस काल में कैसी भाषा का प्रचार था—इसका भी पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त हो जायगा।”

इतना लिख कर पृष्ठ २१ में २१ गद्य ग्रन्थ के और २० पद्य ग्रन्थ.

as the highly persianised Urdu employed by some Maulvis. Tulsī Das was able to express all that he wanted in the Hindi, and I do not see why people of the present day should think that they know better than him. Another very favourite author of mine is Bihari Lal, and I am also fond of reading Sur Das. Some of Lallu Lal's Prose Hindi is very charming, but since his day, in my opinion, there have been very few writers of Pure Hindi at all. I wish more people would try, and write in the style of the Hindi of the Thath of Hari Audh. When I see books written in that language I shall again have hopes for the future of the language which it has been my pleasure to study for the last thirty years."

के नाम उक्त महोदयों ने लिखे हैं * । मैं इन महाशयों का अत्यन्त अनुगृहीत हूँ और उनको अनेक धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने इक्कीस गद्य ग्रन्थों में एक मेरी लुट्ट पुस्तिका “ठेठ हिन्दी का ठाट” को भी स्थान दिया है ॥

हिन्दीभाषा के सुप्रसिद्ध लेखक पं० श्यामबिहारी मिश्र, एम० ए०, डिप्टी कलक्टर जिला बस्ती, ने अपने १७ मार्च सन् १९०१ के पत्र में, और स्वनामख्यात प्रसिद्ध पुरुष पं० महाराज नारायण शिवपुरी डिप्टीकलक्टर मथुरा ने अपने ७ मई सन् १९०२ को

* इक्कीस गद्य वेा बीस पद्य ग्रन्थ निम्न लिखित हैं—

गद्य ग्रन्थ—१ चन्द्रावली, २ सत्यहरिश्चन्द्र, ३ कर्पूरमञ्जरी, ४ मुद्राराक्षस, ५ शकुन्तला, ६ राजा भोज का सपना, ७ ठेठ हिन्दी की कहानी, ८ ठेठ हिन्दी का ठाट ९ प्रेमसागर, १० बेकन बिचार रत्नावली, ११ रत्नावली, १२ कादम्बरी, १३ हितोपदेश, १४ बादशाह-दर्पण, १५ दुःखिनी बाला, १६ प्राकृतिक भूगोल चन्द्रिका, १७ भाग्य-वती, १८ स्त्रीशिक्षा सुबोधिनी, १९ वनिताबुद्धिप्रकाशिनी, २० रणधीर प्रेममोहिनी नाटक, २१ श्रीनाथजी की प्राकट्यवार्ता ।

पद्यग्रन्थ—१ बिहारी सतसई, २ सुखसागर तरंग, ३ सुजान सागर, ४ सूरसागर, ५ रामचरितमानस, ६ रासपंचाध्यायी, ७ उत्सव माला, ८ हम्मोरहठ, ९ जगतविनोद १० भारतशिक्षा, ११ एकान्तवासो योगो, १२ संगीतशाकुन्तल, १३ अनुरागबाग, १४ प्रेमरत्न, १५ पद्मावत, १६ कबीर का बीजक, १७ दादू की बानी, १८ राम-चन्द्रिका, १९ जरासंधवध महाकाव्य, २० पृथ्वीराज रासो ।

चीठी में, उक्त ग्रन्थ के विषय में अपनी उत्तम अनुमति प्रगट की है, अतएव मैं इन महाशयों का भी अनेक धन्यवाद प्रदान करता हूँ। खेद है कि भूमिका के विस्तार भय से मैं उन पत्रों को यहाँ उद्धृत नहीं कर सकता।

मैं स्वनामधन्य पुरुष आनरेबुल श्रीयुत पं० मदनमोहन माल-
चोय महाशय का भी बाधित हूँ और उनका भी उन शब्दों के
लिये - जिनका कि उन्होंने सेवा में उपस्थित होने के समय उक्त
ग्रन्थ के विषय में मुझसे कहे थे - विनोदभाष से अनेक धन्यवाद
देता हूँ ॥

—: :—

“अखिलाफूल” नामक इस दूसरे ग्रन्थ को भी मैंने ठेठ
हिन्दी में ही लिखा है, यह मैं पहले कह चुका हूँ। ठेठ हिन्दी
कैसे कहते हैं? और उसकी उत्पत्ति क्या है? ये सब बातें मैंने
“ठेठ हिन्दी का टाट” की भूमिका में लिख दी हैं, अतएव यहाँ
फिर उनको लिख कर मैं पिष्टपेषण नहीं करना चाहता। हाँ,
यह अवश्य है कि जो परिभाषा मैंने ठेठ हिन्दी के उक्त ग्रन्थ में
लिखी है, उसके विषय में मेरे कतिपय भाषामर्मज्ञ मित्र अपनी
कुछ स्वतन्त्र अनुमति रखते हैं—किन्तु उन लोगों की यह स्वतन्त्र
अनुमति भी एक दूसरे से विभिन्न है। वे फ़ारसी, अरबी, तुर्की,
अङ्ग्रेजी, और फ्रेंच शब्द जो टूट फूट कर संस्था हिन्दी भाषा के
आकार में परिणत हो गये हैं ठेठ हिन्दी का शब्द कहलाने योग्य
हैं या नहीं? ठेठ हिन्दी लिखने में उनका उसी आकार में प्रयोग

होगा जैसा कि वे सर्वसाधारण द्वारा बोले जाते हैं, या उनके शुद्ध रूप का ? यदि ऐसे शब्दों का प्रयोग ठेठ हिन्दी की पुस्तकों में होगा, तो किस नियम के साथ और कैसे स्थल पर होगा ? ये सब बातें अवश्य विचारणीय हैं। और यदि समय हाथ आया तो मैं अपने एक दूसरे उपन्यास की भूमिका में—जिसको मैं स्वयं प्रवृत्त हो कर ऐसी ही एक प्रकार की भाषा में लिख रहा हूँ—इन सब बातों की यथासामर्थ्य मीमांसा करूँगा। इस समय मैं इस विषय में कुछ नहीं लिखना चाहता ॥

जिस समय मैंने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' लिखा था उस समय साधारण लोगों की बोलचाल पर बहुत दृष्टि रखता था। और जिन संस्कृत शब्दों को एक साधारण से साधारण ग्रामीण को मैंने बोलचाल के समय काम में लाते देखा था, उन्हीं शुद्ध संस्कृत शब्दों का प्रयोग मैंने उक्त ग्रन्थ में किया है, किन्तु ये शुद्ध संस्कृत शब्द सब अधिकतर दो अक्षरों के हैं, जैसे रोग, दुख, सुख इत्यादि। मैंने उस ग्रन्थ में तीन अक्षर के शुद्ध संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी किया है, किन्तु अल्प, उपाय इत्यादि दोही चार शब्द इस प्रकारके उसमें आये हैं। कारण इसका यह है कि उस समय तक मैंने कतिपय तीन अक्षर के संस्कृत शब्दों के विषय में यह निश्चित नहीं कर लिया था कि ये शब्द अवश्य सर्व साधारण की बोलचाल में व्यवहृत हैं—उस समय ये सब शब्द मीमांसित हो रहे थे। किन्तु अब मैंने इन शब्दों के विषय में निश्चय कर लिया है कि ये सब अवश्य सर्व साधारण की बोलचाल में आते हैं, अतएव इस ग्रन्थ में मैंने इन

सब शब्दों का प्रयोग निस्संकोच किया है— ये तीन अक्षर के शब्द चंचल, आनन्द, सुन्दर इत्यादि हैं ॥

“ठेठ हिन्दी का ठाठ” की भूमिका में मैंने ठेठ हिन्दी लिखने में ऐसे शुद्ध संस्कृत शब्दों का प्रयोग करना उत्तम नहीं समझा है कि जिनके स्थान पर अपभ्रंश संस्कृत शब्द प्राप्त हो सकते हैं, और इसी लिये “ कहानी ठेठ हिन्दी ” में जो चंचल शब्द का प्रयोग हुआ है उस पर मैंने कटाक्ष किया है । किन्तु अब मैं इस विचार के समीचीन और युक्तिसंगत नहीं समझता, क्योंकि यदि इस नियम को मान कर ठेठ हिन्दी लिखी जावेगी, तो उस का परिमाण विस्तृत होने के स्थान पर संकुचित हो जावेगा । जल एक शुद्ध संस्कृत शब्द है, और उसी प्रकार सर्व साधारण का परिचित है जिस प्रकार पानी—अतएव प्रयोग स्थल पर ठेठ हिन्दी लिखने में शुद्ध संस्कृत शब्द जल उसी प्रकार रखा जा सकता है, जिस प्रकार संस्कृत अपभ्रंश शब्द पानी—क्योंकि ठेठ हिन्दी लिखने में विशेष विचारणीय विषय यही है कि उसमें सर्व साधारण के बोझ चाल की रक्षा लिखित भाषा के नियमों का पालन करते हुए की जावे । निदान इसी सूत्र से आनन्द और सुन्दर का पर्यायवाची हरख और सुघर शब्द मिलते हुए भी मैंने “अधखिला फूल” में इन शब्दों का प्रयोग यथास्थान किया है ॥

एक बात और है, वह यह कि कोई कोई शुद्ध संस्कृत शब्द अपने पर्यायवाची किसी दूसरे शब्द किम्बा अपभ्रंश संस्कृत शब्द से विशेष परिमाण में व्यवहृत होते हैं । अतएव इस उप-

योगिता का ध्यान अवश्य रखना चाहिये। यदि इस उपयोगिता का ध्यान हम न रखेंगे, तो भाषा के माधुर्य्य, सौंदर्य्य और विस्तार का कियदंश में विनाश होगा। मेरे इस कथन का यह भाव नहीं है कि यहां सर्व साधारण को बोलचाल का विचार छोड़ दिया जावे—वरन इस बात को सर्वथा रक्षा करते हुए उक्त विचार को कार्य में परिणत करना चाहिये, यह मेरा वक्तव्य है। जैसे चंचल शब्द है—इसका पर्यायवाची चुलबुला एक दूसरा शब्द है। हम ठेठ हिन्दी लिखने में चंचल शब्द के प्रयोग की जहां आवश्यकता हो, वहां चुलबुला शब्द का प्रयोग कर सकते हैं। किन्तु इस शब्द का व्यवहार उतने परिमाण में नहीं हो सकता जितने परिमाण में कि चंचल शब्द का व्यवहार होता है। चुलबुली लड़की, चुलबुला घोड़ा, हम लिख सकते हैं, पर चुलबुली आंखें नहीं लिख सकते। पर चंचल शब्द का प्रयोग हम तीनों स्थानों पर एक सा कर सकते हैं—जैसे चंचल लड़की, चंचल घोड़ा, चंचल आंखें। इसलिये सर्व साधारण के व्यवहार में चंचल शब्द रहते हुए भी यदि शुद्ध संस्कृत शब्द होने के कारण हम चंचल शब्द को ठेठ हिन्दी लिखने में स्थान न देंगे, और उसके स्थान पर चुलबुला शब्द ही प्रयोग करेंगे—तो इस अवस्था में हम अवश्य कियदंश में भाषा के माधुर्य्य, सौंदर्य्य और विस्तार को नष्ट करेंगे—और यही विषय मैंने ऊपर निरूपण किया है ॥

“अधखिला फूल” में ऊमस, नेह, बयार, निहोरा, सजीला, छबीली, बापुरे, सरबस, अनोखा, निधारती, नेरे, घनेरे, चेरे, इत्यादि शब्द भी लिखे गये हैं। इनमें से और ऐसे ही बहुत से शब्द, “ठेठहिन्दी का ठाठ” में भी आये हैं। वर्त्तमान काल के कई एक विद्वानों ने मुझसे इन शब्दों और इसी प्रकार के अपर शब्दों के प्रयोगविषय में कई प्रकार के तर्क किये हैं। उन लोगों का कथन है कि यदि हिन्दी भाषा में इन शब्दों या इसी प्रकार के अपर शब्दों का स्वतन्त्रता से प्रयोग होता रहेगा, तो निम्नलिखित आपत्तियां उपस्थित होंगी—

१—हिन्दी भाषा की सर्वस्वीकृत लेखप्रणाली और नियम में व्याघात होगा, और स्वेच्छाचार को प्रश्रय मिलेगा।

२—लब्धप्रतिष्ठ लेखकों की स्थापित परम्परा और शैली का उल्लंघन होगा।

३—अप्रचलित और नवीन शब्दों का प्रयोग होगा।

४—भाषा को ग्रामीण होने का लक्षण लगेगा।

मैं यह नहीं कह सकता कि उन लोगों के ये विचार कहां तक समीचीन और सुसंगत हैं। परन्तु इस विषय में मेरी जो सम्मति है, मैं उसको यहां लिखना चाहता हूं, जिसमें दूसरे भाषामर्मज्ञ विद्वानों को उक्त महाशयों की अनुमति और मेरी सम्मति पर दृष्टि रख कर उचित आलोचना करने का अवसर हस्तगत हो।

प्रथम आपत्ति यह है कि हिन्दी भाषा के सर्वस्वीकृत लेख-प्रणाली और नियम में व्याघात होगा, और स्वेच्छाचार को प्रश्रय

मिलेगा। पहले यह देखना है कि इस आपत्ति के उत्थापित होने का मूल कारण क्या है? मैं इस कारण का सविस्तर नीचे लिखता हूँ—

उर्दू लिखने में जिस प्रकार लखनऊ और देहली की बोलचाल और उस भाषा के प्राचीन लेखकों की लेखप्रणाली का ध्यान रखा जाता है—हिन्दी लिखने के समय अनेकांश में वैसा नहीं किया जाता। उर्दू के समाचारपत्र कलकत्ते और बम्बई से भी निकलते हैं, परन्तु उनमें मरहठी और बंगाली की छूत तक नहीं लगती। जिस रंग और स्टाइल में ढले हुए आप दिल्ली, लखनऊ और लाहौर के उर्दू समाचारपत्रों को देखेंगे, ठोक उसी रंग और स्टाइल में ढले हुए इन समाचारपत्रों को भी पावेंगे—मजाल नहीं जो शब्दविन्यास और मुहाबिरों में भेद हो सके। यही दशा उर्दू ग्रन्थकारों और अपर लेखकों की भी है—ये लोग चाहे कलकत्ता और बम्बई में बैठ कर उर्दू लिखें, चाहे नागपुर और सिंध में, किन्तु इन लोगों की उर्दू वही सांचे की ढली उर्दू होगी—कहीं भी वे चूकते दिखलाई न देंगे। किन्तु हिन्दी भाषा के पत्र जिस प्रान्त से निकलते हैं, उनमें उस प्रान्त के भाषा की छूत कुछ न कुछ अवश्य लग जाती है। हिन्दी भाषा के कई एक ग्रन्थकार और अपर लेखक भी इस दोष से मुक्त नहीं हैं। यदि इसी प्रान्त के अंशभूत बैसवारे के रहनेवाले अपने लेखों में ‘भरुका’ शब्द का प्रयोग कर देते हैं, तो भोजपुरी महाशय “नीमन” शब्द का प्रयोग करने से नहीं चूकते, और बुन्देलखंडी महाशय ‘भंडिआ’ शब्द लिखने से नहीं घबड़ाते। प्रयोजन यह कि यदि युक्त प्रान्त से कई

सौ कोस दूर बम्बई और कलकत्ते में बैठे हुए पत्र-सम्पादकगण किसी स्थलविशेष पर उस प्रान्त का शब्द प्रयोग करने पर, किम्बा वाक्यरचना में त्रुटि होने पर, इस विषय में एकांश में दोषी हैं, तो इस प्रान्त में बैठे हुए लेखक और ग्रन्थकारगण इस प्रकार की भूल करने के लिये अनेकांश में दोषभागी हैं।

इस लेख से संभव है कि किसी महाशय को कुछ भ्रम होवे, अतएव मैं इसको कुछ और स्पष्ट करके लिखना चाहता हूँ। जो कुछ ऊपर लिखा गया है उसका यह भाव नहीं है कि अब तक हिन्दी भाषा के लिए कोई पूर्णाली या नियम निर्धारित नहीं है, या अन्य प्रान्तों के जितने सम्पादकगण हैं और इस प्रान्त के जितने ग्रन्थकार और लेखक हैं वे सभी भाषा लिखने में यथेच्छाचार में प्रवृत्त हैं, और सभी मनमाना अप्रयोज्य शब्दों का प्रयोग करके भाषा को कलुषित करते हैं। बरन अभिप्राय यह है कि हिन्दी भाषा की जो लेखपूर्णाली उद्भावित हो कर नियमबद्ध हुई है, कई एक पत्रसम्पादकों और नवोत्साहित अभिनव लेखकों और ग्रन्थकारों द्वारा उसको यथोचित रक्षा नहीं हो सकती है। कितने लोग स्वयं प्रवृत्त हो कर इस दोष में लिस होते हैं और कितने ही अमनोनिवेश, आंति और अप्रगल्भतावश ऐसा करते हैं। प्रमाण में “हितवार्ता” और “हिन्दोस्तान” पत्र के सम्पादकगण और बिहार प्रान्त के वर्तमान पाठ्य पुस्तकों के लेखकगण बतलाये जा सकते हैं। निदान इन्हीं सब विषयों पर दृष्टि रख कर प्रथम आपत्ति उत्थापित की गयी है।

मिलेगा। पहले यह देखना है कि इस आपत्ति के उत्थापित होने का मूल कारण क्या है? मैं इस कारण को सविस्तर नीचे लिखता हूँ—

उर्दू लिखने में जिस प्रकार लखनऊ और देहली की बोलचाल और उस भाषा के प्राचीन लेखकों की लेखप्रणाली का ध्यान रखा जाता है—हिन्दी लिखने के समय अनेकांश में वैसा नहीं किया जाता। उर्दू के समाचारपत्र कलकत्ते और बम्बई से भी निकलते हैं, परन्तु उनमें मरहठी और बंगाली की छूत तक नहीं लगती। जिस रंग और स्टाइल में ढले हुए आप दिल्ली, लखनऊ और लाहौर के उर्दू समाचारपत्रों को देखेंगे, ठोक उसी रंग और स्टाइल में ढले हुए इन समाचारपत्रों को भी पावेंगे—मजाल नहीं जो शब्दविन्यास और मुहाबिरों में भेद हो सके। यही दशा उर्दू ग्रन्थकारों और अपर लेखकों की भी है—ये लोग चाहे कलकत्ते और बम्बई में बैठ कर उर्दू लिखें, चाहे नागपुर और सिंध में, किन्तु इन लोगों की उर्दू वही सांचे की ढली उर्दू होगी—कहीं भी वे चूकते दिखलाई न देंगे। किन्तु हिन्दी भाषा के पत्र जिस प्रान्त से निकलते हैं, उनमें उस प्रान्त के भाषा की छूत कुछ न कुछ अवश्य लग जाती है। हिन्दी भाषा के कई एक ग्रन्थकार और अपर लेखक भी इस दोष से मुक्त नहीं हैं। यदि इसी प्रान्त के अंशभूत बैसवारे के रहनेवाले अपने लेखों में 'भरुका' शब्द का प्रयोग कर देते हैं, तो भोजपुरी महाशय "नीमन" शब्द का प्रयोग करने से नहीं चूकते, और बुन्देलखंडी महाशय 'भंडिआ' शब्द लिखने से नहीं घबड़ाते। प्रयोजन यह कि यदि युक्त प्रान्त से कई

सौ कोस दूर बम्बई और कलकत्ते में बैठे हुए पत्र-सम्पादकगण किसी स्थलविशेष पर उस प्रान्त का शब्द प्रयोग करने पर, किम्बा वाक्यरचना में त्रुटि होने पर, इस विषय में एकांश में दोषी हैं, तो इस प्रान्त में बैठे हुए लेखक और ग्रन्थकारगण इस प्रकार की भूल करने के लिये अनेकांश में दोषभागी हैं।

इस लेख से संभव है कि किसी महाशय को कुछ भ्रम होवे, अतएव मैं इसको कुछ और स्पष्ट करके लिखना चाहता हूँ। जो कुछ ऊपर लिखा गया है उसका यह भाव नहीं है कि अब तक हिन्दी भाषा के लिए कोई पूणाली या नियम निर्धारित नहीं है, या अन्य प्रान्तों के जितने सम्पादकगण हैं और इस प्रान्त के जितने ग्रन्थकार और लेखक हैं वे सभी भाषा लिखने में यथेच्छाचार में प्रवृत्त हैं, और सभी मनमाना अप्रयोज्य शब्दों का प्रयोग करके भाषा को कलुषित करते हैं। बरन अभिप्राय यह है कि हिन्दी भाषा की जो लेखपूणाली उद्भावित हो कर नियमबद्ध हुई है, कई एक पत्रसम्पादकों और नवोत्साहित अभिनव लेखकों और ग्रन्थकारों द्वारा उसको यथोचित रक्षा नहीं हो सकती है। कितने लोग स्वयं प्रवृत्त हो कर इस दोष में लिस होते हैं और कितने ही अमनोनिवेश, भ्रांति और अप्रगल्भतावश ऐसा करते हैं। प्रमाण में “हितवार्ता” और “हिन्दोस्तान” पत्र के सम्पादकगण और बिहार प्रान्त के वर्त्तमान पाठ्य पुस्तकों के लेखकगण खतलाये जा सकते हैं। निदान इन्हीं सब विषयों पर दृष्टि रख कर प्रथम आपत्ति उत्थापित की गयी है।

अब देखना यह है कि हिन्दी भाषा की सर्वस्वीकृत लेख-प्रणाली और नियम क्या हैं और ऊमस इत्यादि शब्दों के प्रयोग से स्वेच्छाचार को प्रश्रय मिलता है या नहीं।

हिन्दी गद्य के जन्मदाता पं० लल्लू लाल और उन्नतकर्त्ता बाबू हरिश्चन्द्र हैं। पं० लल्लू लाल ने हिन्दी गद्य लिखने में अधिकांश ब्रजभाषा की क्रियाओं, सर्वनामों, कारकचिह्नों, और अव्ययों से काम नहीं लिया। उसमें उन्होंने खड़ी बोल-चाल की क्रियाओं इत्यादि का प्रयोग किया है और अपने विचारों को अधिकतर संस्कृत शब्दों में प्रगट किया है—तथापि उसमें ब्रजभाषा के शब्द इस अधिकता से भरे हुए हैं कि प्रति पृष्ठ में बीसियों दिखलाये जा सकते हैं। कहीं कहीं ब्रजभाषा की क्रिया और सब-नाम इत्यादि भी पाये जाते हैं। पाठकगण प्रेमसागर के निम्नलिखित पैरे पर दृष्टि डालिये, और देखिये, उसमें जिन शब्दों के नीचे आड़ी लकीर खिंची है—वे सब ब्रजभाषा के शब्द हैं या नहीं?

“इतनी कथा कह श्री शुकदेवजी बोले, महाराज, अब मैं रितु बरनन करता हूँ—कि ऐसी ऐसी श्री कृष्णचन्द्र ने तिन में लीला करी सो चित्त दे सुनो। प्रथम ग्रीष्म ऋतु आई तिस ने आते ही सब संसार का सुख ले लिया, और धरती आकाश को तपाय अग्नि सम किया। पर श्री कृष्ण के प्रताप से वृन्दावन में सदा बसंत ही रहै यहां घनी घनी कुंज के वृक्षों पर बेले लह लहा रहैं, बरन बरन के फूल फूले हुये, तिन पर भौरों के झुंड क

भुंड गूंज रहे, आर्षों की डालियों पर कोयल कुहक रहीं, ठंडी २ छाहों में मोर नाच रहे, सुगंध लिये मीठी मीठी पवन बह रही और एक ओर बन के न्यारी ही शोभा दे रही थी। तहां कृष्ण बलराम गायें छोड़ सखा समेत आपस में अनूठे २ खेल खेल रहे थे कि इतने में कंश का पठाया ग्वाल का रूप बनाय प्रलम्ब नाम राजस आया, विसे देखते ही श्री कृष्णचन्द्र ने बलदेवजी को सैन से कहा ”

१६वां अध्याय ।

बाबू हरिश्चन्द्र ने इस लेख-प्रणाली को बहुत पारिष्कृत किया और इसे वर्त्तमान ढंग में ढाला, और इस सौंदर्य और माधुर्य के साथ संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया कि उनके लेखों को पढ़ते पढ़ते मन मुग्ध हो जाता है। तथापि ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग इनकी भाषा में भी अधिकता से हुआ है, वरन संस्कृत शब्दों के साथ इन्होंने जहां ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग किया है—उनकी भाषा वहीं विशेष हृदयग्राहिणी और मधुर हुई है। निम्नलिखित कतिपय पंक्तियां ध्यान देने योग्य हैं।

क्यों जी “ये निठुर क्यों दो गये हो ? क्या वह तुम नहीं हो, इतने दिन पीछे मिलना, उसपर भी आंखें निगोड़ी प्यासी ही रहें ! मुंह न छिपाओ, देखो, यह कैसा सुन्दर नाटक का तमाशा तुम को दिखलाता हूं ! क्योंकि जय तुम अपने नेत्रों को स्थिर कर के यह तमाशा देखने लगोगे, तो मैं उतना ही अवसर पा कर तुम्हारी भोली छुबि चुपचाप देख लूंगा ।”

पाखण्ड बिडम्बन नाटक का समर्पण ।

पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० अम्बिकादत्त व्यास, पं० राधा-
चरण गोस्वामी, पं० दामोदर शास्त्री, पं० बदरीनारायण चौधरी,
पं० सदानन्द मिश्र, पं० बालकृष्ण भट्ट, बाबू श्रीनिवास दास, बाबू
काशीनाथ, बाबू तोताराम, इत्यादि सुजन 'हरिश्चन्द्री हिन्दी' के
प्रचार और पुष्ट करनेवाले हैं। इन लोगों ने पूणतया उनके दिखाये
पथ को अवलम्बन किया है। जब आप लोग इन महाशयों के लेख
को उठा कर देखेंगे, उस समय यह बात बहुत स्पष्ट हो जावेगी।
विस्तार-भय से मैं इन लोगों का लेख यहां उद्धृत नहीं करता।
वर्त्तमान काल के जो धुरंधर लेखक हैं उनके भी आप लोग
अधिकांश में इस रंग में रंगा हुआ पावेंगे, क्योंकि हिन्दी लिखने में
ब्रजभाषा के शब्दों का बिलकुल बायकाट इनमें से एकने भी नहीं
किया।

एक प्रकार से हम और इस विषय को सिद्ध करेंगे। हम निश्चित
करना चाहते हैं कि जिनके समवाय को हम शुद्ध हिन्दी भाषा,
और संस्कृत शब्दों का मेल होने पर जिस समवाय को हम साधु
भाषा कहते हैं, वह कौन से शब्द हैं। बाबू हरिश्चन्द्र ने हिन्दी भाषा
और उसकी लेखप्रणाली को नियमबद्ध करने के लिए अपने
'हिन्दीभाषा' नामक ग्रन्थ में बारह प्रकार को हिन्दी लिखा है, जिन
का लक्षण इस प्रकार निश्चित किया है। अधिक संस्कृत शब्द
युक्त हिन्दी, अल्प संस्कृतशब्दप्रयुक्त हिन्दी, शुद्ध हिन्दी, अधिक-
फारसी शब्दयुक्त हिन्दी, बंगालियों की हिन्दी, अंगरेजों की हिन्दी
इत्यादि। अर्थात् संस्कृत, अङ्गरेजी, फारसी शब्दों के न्यूनाधिक
प्रयोग और उच्चारणविभेद से हिन्दी के बारह भाग बन्हीं किये

हैं। अब यहां यह स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा के सम्पूर्ण विभागों के आधारभूत हिन्दी शब्द हैं—केवल संस्कृत और फ़ारसी इत्यादि के शब्दों के अल्पाधिक प्रयोग से उसके विभाग होते हैं। इस लिए यदि इन बारह विभागों पर दृष्टि डालो जावे तो यह सिद्ध हो जायगा कि हिन्दी शब्द कौन हैं।

बाबू साहब ने इन विभागों के प्रदर्शन के पहले प्रत्येक प्रकार की हिन्दी का रूप पद्य में दिखलाया भी है—इनमें मुख्य ब्रजभाषा, बुंदेलखंडी, भोजपुरी और बैसवारी, इत्यादि हैं। और वास्तव में इन प्रान्तों में जो शब्द बोले जाते हैं, वे हिन्दी भाषा के ही शब्द हैं—ऐसी दशा में यह कहा जा सकता है कि इन सम्पूर्ण प्रान्त की भाषाएं अपने शुद्ध रूप में, किम्बा न्यूनाधिक संस्कृत इत्यादि के शब्दों के साथ लिखी जावेंगी तो हिन्दीभाषा होगी। परन्तु यह सभी जानते हैं कि ऐसा नहीं है। यह सब उस स्टाइल को हिन्दी न होगी कि जिस स्टाइल में वर्तमान हिन्दी भाषा लिखी जाती है। अब यहां यह विषय विवेचनीय है कि इनमें से उस स्टाइल की भाषा कौन हो सकती है? इस विषय की मीमांसा के लिए विशेष अनुसंधान की आवश्यकता नहीं है, बाबू साहब ने जो शुद्ध हिन्दी नाम की भाषा का निदर्शन उक्त ग्रन्थ में दिया है, उस पर दृष्टि रख कर विचार किया जावे तो इस विषय की मीमांसा आप हो जावेगी। क्योंकि जो शुद्ध हिन्दी का पैरा है, उसके शब्द अवश्य हिन्दी के शब्द माने जावेंगे और उनका समवाय अवश्य हिन्दी भाषा माना जावेगी। यहां यह भी स्मरण रखना चाहिये

कि इस शुद्ध हिन्दी पैरे को बाबू साहब ने लिखने योग्य हिन्दी स्वीकार की है। वह पैरा यह है—

‘पर मेरे प्रीतम अब तक घर न आये, क्या उस देश में बरसात नहीं होती, या किसी सौत के फन्दे में पड़ गये, कि इधर को सुध ही भूल गये। कहां तो वह प्यार की बातें, कहां एक संग ऐसा भूल जाना—कि चीठी भी न भिजवाना। हा! मैं कहां जाऊं, कैसी करूं, मेरी तो ऐसी कोई मुंहबोली सहेली भी नहीं कि उससे दुखड़ा रो सुनाऊं—कुछ इधर उधर को बातों ही से जी बहलाऊं!’

हिन्दीभाषा

इस पैरे में सर्वनाम, अव्यय, कारकचिह्नों और क्रियाओं को छोड़ कर प्रीतम, अब, घर, देश, बरसात, सौत, फन्द, सुध, प्यार, एक संग, चीठी, मुंहबोली, सहेली, दुखड़ा, बात, जी, इत्यादि शब्द आये हैं। इनमें अब, घर, देश, बरसात, प्यार, एक संग, चीठी, बात और जी ऐसे शब्द हैं जो सुख, दुख, नाक, कान, आंख, इत्यादि शब्दों के समान युक्त प्लान्त के प्रत्येक भागों में एकरस बोले जाते हैं, अतएव इन शब्दों के विषय में कुछ वक्तव्य नहीं है। देखना तो यह है कि प्रीतम (पीतम) सौत, फन्द, सुध, मुंहबोली, सहेली, और दुखड़ा, किसी प्रीतिविशेष के शब्द हैं या क्या? यदि इन शब्दों के विषय में थोड़ा भी विचार किया जायगा, तो अवश्य कहना पड़ेगा कि ये सब शब्द ब्रज-भाषा के हैं। अतएव यहां हमको यह मानना पड़ेगा कि जिन शुद्ध हिन्दी शब्दों के समवाय को हम हिन्दी भाषा कहते हैं—जिस

समवाय में संस्कृत शब्दों का प्रयोग होने पर साधु भाषा बनती है, वे सब शब्द अब, घर, देस, बरसात, प्यार, एक संग इत्यादि के समान जन-साधारण में प्रचलित शब्द-समूह हैं, और इन शब्दों में यदि किसी प्रान्त-विशेष का कोई शब्द भाषा-पथ-प्रदर्शक लेखकों द्वारा परिगृहीत हुआ है तो वह ब्रजभाषा है— और यही हम को सिद्ध करना था ।

हम यह भी प्रिखलाना चाहते हैं कि क्या कारण है जो भाषा के पथ-प्रदर्शकों द्वारा ब्रजभाषा के शब्द कहीं कहीं परिगृहीत हुए हैं ! परन्तु इस विषय की मीमांसा करने के पहले हमको यह सोचना चाहिये कि भाषा में संस्कृत शब्दों के ग्रहण किये जाने का क्या कारण है ? वास्तव में जान यह है कि प्रान्तिक ठेठ शब्दों को अपेक्षा संस्कृत शब्द अधिक व्यापक हैं । बैसवारे, भोजपुर और बुन्देलखंड में जो ठेठ शब्द व्यवहृत हैं, राजपुताने, मध्यहिन्द और बिहार में उनका समझना *ठिन होगा । ऐसे ही राजपुताने, मध्यहिन्द और बिहार के ठेठ शब्द, बैसवारे, भोजपुर और बुन्देलखंड में नहीं समझे जावेंगे, किन्तु इन शब्दों के स्थान पर यदि कोई संस्कृत शब्द रख दिया जायगा, तो उसके समझने में उन्नी असुविधा न होगी । यह सुविधा इस लिए है कि अब भी संस्कृत का थोड़ा बहुत प्रचार भारत के प्रत्येक प्रान्त में है । इसके अतिरिक्त श्राद्ध-तर्पण और संस्कारों के समय, कथा-वार्त्ता और धर्म-चर्चाओं में, व्याख्यानो और उपदेशों में, नाना प्रकार के पर्व और उत्सवों में, हमको परिडतों का साहाय्य ग्रहण करना पड़ता

है। पण्डितों का भाषण अधिकतर संस्कृत शब्दों में होता है। वे लोग समस्त क्रियाओं को संस्कृत पुस्तकों द्वारा कराते हैं—अतएव ऐसे अवसरों पर भी हमारा संस्कृत शब्दों का ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है। और यह हम लोगों के लिए दूसरी सुविधा है।

ब्रजभाषा शब्द संस्कृत शब्दों की अपेक्षा भी अधिक व्यापक हैं, और यही कारण उनके भाषा के सुलेखकों द्वारा परिगृहीत होने का है। ब्रजभाषा शब्द संस्कृत शब्दों की अपेक्षा भी अधिक व्यापक हैं; इस विषय की सिद्धि के लिए विशेष प्रमाणसंग्रह की आवश्यकता नहीं। सभी जानते हैं कि युक्तप्रान्त, राजपुताने मध्यहिन्द और बिहार में संस्कृत ग्रन्थों वा श्लोकों के पढ़नेवालों की अपेक्षा रामायण, ब्रजविलास, दधिलीला, दानलीला और भाषा के अपर काव्यों के पढ़नेवाले और सूरदास के पदों के गाने वाले अधिक मिलेंगे। वास्तव ज्ञान यह है कि ब्रजभाषा प्रान्तिक-भाषा होने पर भी धर्मग्रन्थों और भाषा काव्यग्रन्थों के साहाय्य से आज पांच सौ वर्ष से हिन्दी बोलनेवाले मात्र की सुपरिचिता भाषा है।

जो कुछ ऊपर लिखा गया उससे स्पष्ट है कि वर्तमान हिन्दी-भाषा ब्रजभाषा के आधार से गढ़ी गई है—या यों कहो, ब्रजभाषा का पुट दे कर हिन्दीभाषा पर रंग चढ़ाया गया है—और यह प्रणाली प्राचीन हिन्दी सुलेखकों द्वारा बहुत सोच विचार कर युक्तिपूर्वक स्थापित हुई है। वादग्रस्त, ऊमस इत्यादि शब्द ब्रजभाषा के ही हैं, इस लिए यदि हिन्दीभाषा, मुख्यतः ठेठ हिन्दी, लिखने में इन शब्दों,

का प्रयोग किया गया, तो न तो इससे सर्वस्वीकृत लेखप्रणाली और नियम का व्यघात हुआ और न स्वेच्छाचार को प्रश्रय दिया गया । अतएव प्रथम आपत्ति की अयौक्तिकता सिद्ध है। अब हम दूसरी आपत्ति पर दृष्टि डालते हैं ।

दूसरी आपत्ति यह है “लब्धप्रतिष्ठ लेखकों की स्थापित परम्परा और शैली का उल्लंघन होगा” अर्थात् आपत्तिकर्त्ता का यह कथन है कि हिन्दीभाषा के लब्धप्रतिष्ठ पथप्रदर्शक सुलेखकों द्वारा ब्रजभाषा से जो शब्द वर्तमान स्टाइल की हिन्दीभाषा में गृहीत हुए हैं, परवर्त्ती लेखकों को भी वही शब्द ग्रहण करने चाहिये । ब्रजभाषा से उनके अतिरिक्त नवीन शब्द ग्रहण करना एक स्थापित परम्परा और बंधी हुई शैली का उल्लंघन करना है । प्रमाण में वे उर्दू को उपस्थित करते हैं, और बतलाते हैं कि उसके मुस्तनद उस्तादों (प्रामाणिक लेखकों) ने जो शब्द उर्दू में ब्रजभाषा के ग्रहण किये हैं, उनके परवर्त्ती लेखकों ने भी उन्हीं शब्दों को अपने गद्य और पद्य में स्थान दिया है—नवीन शब्द ग्रहण करने का उद्योग कदापि नहीं किया । बरन कितने शब्दों को छोड़ भले ही दिया ।

यह आपत्ति कियदंश में समुचित हो सकती है, सर्वांश में नहीं । उर्दू का प्रमाण हिन्दी के लिए यथातथ्य नहीं ग्रहण किया जा सकता । यदि उर्दूवालों ने उत्तरकाल में ब्रजभाषा से नवीन शब्द ग्रहण नहीं किये, बरन कतिपय गृहीत शब्दों को छोड़ दिया, तो उस का फल क्या हुआ ? उसका फल यही हुआ कि उसमें अरबी और फ़ारसी के अप्रचलित और अत्यन्त कठोर शब्द प्रचलित

हो गये, और उसने लखनवी उर्दू की नींव डाली। आप लखनऊ के मुख्य शायरों की कविता उठाकर पढ़िये, देखिये उनमें मिर्जा-दबीर के “ज़रे क़दमे वालिदा फिर दो सबरी है” इस मिसरे का अनुकरण सर्वत्र है या नहीं। इस मिसरे में आप देखेंगे, केवल उपसर्ग भाषा का है, और सम्पूर्ण शब्द फ़ारसी अरबी के हैं। किन्तु एक शताब्दी भी नहीं बीतने पाई थी कि ऐसी उर्दू भाषा मर्मज्ञों की दृष्टि में निन्दनीय ठहराई गई, और अब पुनः देहलीवालों के अनुकरण पर आसान उर्दू लिखने की चेष्टा हो रही है। बुद्धिमान मनुष्य का यह कार्य है कि अपने आप पास होते हुए प्रत्येक कार्य के हानि-लाभ पर दृष्टि डाल कर सांसारिक कार्यों में प्रवृत्त हो। हमलोगों को उर्दू द्वारा जो यह शिक्षा मिली है, उसका कदापि न भूलना चाहिये। यदि हम समय और आवश्यकतानुसार अपर भाषा के प्रचलित शब्दों और ब्रजभाषा से नूतन शब्दों को हिन्दीभाषा में न ग्रहण करेंगे—तो अवश्य है कि एक दिन वह भी संस्कृत शब्दों से भर जावेगी कि जिसके विषय में पीछे हम को भी स्तर्क होना पड़ेगा। फिर उर्दू हमारी जातीय भाषा नहीं है—यदि ब्रजभाषा के शब्दों के ग्रहण करने में वह संकोच करे तो कर भी सकती है, पर हिन्दी भाषा कदापि ऐसा नहीं कर सकती, ब्रजभाषा के शब्दों के लिए उसको अपना द्वार सदा उन्मुक्त रखना चाहिये।

यहां यह तर्क किया जा सकता है कि ऐसी अवस्था में फिर कोई परम्परा और शैली नहीं स्थापित हो सकती। किन्तु अभिनि-

विष्ट चित्त से थोड़ा विचार करने पर यह तक इस विषय में उपस्थित नहीं किया जा सकता। भाषा की जो परम्परा और शैली नियत है यदि उसको छिन्न भिन्न करके मैं कोई दूसरी परम्परा और शैली नियत करने को कहता, तो अवश्य यह तर्क किया जा सकता था। परन्तु जब मैं उसको रक्षा करते हुए आवश्यकतानुसार यथा-समय दो एक शब्द मात्र उसमें युक्त कर लेने को कहता हूँ तो फिर इस तर्क करने का अवसर कहां रहा। मैं यह नहीं कहता, 'देखो को 'द्यखो' लिखो, मैं यह नहीं कहता कि 'हम आते थे' को 'हमनीका आवत रहली' लिखो—मैं यह नहीं कहता कि 'हां सखी' के स्थान पर 'हम्ये बीर' लिखो—मेरा विचार कदापि नहीं है कि खड़ी बोलचाल की जो क्रियायें, कारक के चिह्न, और उपसर्ग इत्यादि उसमें व्यवहृत होते हैं, उसमें परिवर्तन किया जाय—मेरा यह उद्देश्य भूल कर भी नहीं है कि वाक्य-योजना और वाक्य-विन्यासप्रणाली में नवीनता उत्पन्न की जावे—मैं यदि कहता हूँ तो यह कहता हूँ कि आवश्यकतानुसार कश्चित् संज्ञा या विशेषण या इसी प्रकार का कोई दूसरा शब्द हिन्दीभाषा में ब्रजभाषा से ग्रहण कर लिया जावे तो कोई क्षति नहीं। ब्रजभाषा क्या, समय तो हमको यह बतलाता है कि अङ्गरेजी, फ़ारसी, अरबी, तुर्की, इत्यादि के वे सब शब्द भी कि जिनका प्रचलन दिन दिन देश में होता जाता है, और जिनका प्रत्येक प्रान्त में सर्वसाधारण भली भाँति समझते हैं, यदि हिन्दीभाषा में आवश्यकतानुसार ग्रहीत होते रहें, तो भी कोई क्षति नहीं।

यहां यह पूछा जा सकता है कि फिर ब्रजप्रान्त छोड़ कर युक्त-

प्रान्त के अन्य प्रान्तों और मध्यहिन्द एवम् राजपुताने और बिहार के ठेठ शब्दों ने कौन सा अपराध किया है, जो उनको वर्त्तमान हिन्दीभाषा में स्थान न दिया जावे। वास्तव में उन शब्दों ने कोई अपराध नहीं किया है, किन्तु उनका उक्त शब्दों के इतना व्यापक न होना ही उनके स्थान न पाने का कारण है। किन्तु यदि दाल में नमक की भांति किसी आवश्यकतावश किसी स्थान-विशेष पर कभी कोई शब्द प्रयुक्त हो जावे तो वह इतना गर्हित भी नहीं कहा जा सकता।

अब तीसरी आपत्ति को लीजिये—तीसरी आपत्ति यह है “अप्रचलित और नवीन शब्दों का प्रयोग होगा”। यहां यह स्मरण रहे कि इस आपत्ति में अप्रचलित और नवीन शब्द का प्रयोग गद्य हिन्दी लेखों में अप्रचलित और व्यवहृत शब्दों के विचार से हुआ है। अतएव यह स्पष्ट है कि आपत्तिकर्ता पद्य में उन शब्दों के प्रचलित होने की उपेक्षा करके यह आपत्ति उत्थापित करते हैं—परन्तु उन की यह उपेक्षा युक्तियुक्त नहीं है; क्योंकि भाषा के अंग गद्य पद्य दोनों हैं। इसके अतिरिक्त जब ऊपर कथन की गई युक्तियों से व्यापक होने के कारण वे सर्वसाधारण के अनेकांश में परिचित हैं तो लेख में उनका अप्रचलित होना उनके पहले पहल व्यवहार किये जाने का बाधक नहीं है—क्योंकि उक्त दशा में वे सर्वसाधारण के लिए असुविधा के कारण नहीं हो सकते। रहा नवीनता का झगड़ा ! उसके विषय में मुझको इतना ही वक्तव्य है कि वर्त्तमान काल के विद्वानों और भाषातत्त्वविदों की अनुमति इस प्रणाली के उत्तम होने के अनुकूल है। उनका कथन है कि आवश्यकतानुसार

नवीन शब्दों का प्रयोग करने से भाषा की वृद्धि और प्रसार में प्रश्रय मिलता है, और अभिनव भाषों के प्रकाश करने में सुविधा होती है। प्रमाण में अङ्गरेजी भाषा उपस्थित की जाती है, और दिखलाया जाता है कि आवश्यकतानुसार इस भाषा में सर्वदा नवीन शब्द गृहीत होते रहते हैं, इसलिए पृथ्वीतल की सम्पूर्ण भाषाओं में आज यह भाषा समुन्नत और वृद्धि-पर है। इसी सूत्र से थोड़े दिन हुए एक विद्वान ने उर्दू की वृद्धि और समुन्नत होने की सूचना दी है। प्रत्युत यह स्वीकार किया जा सकता है कि भाषा में नवीन शब्द ग्रहण की प्रणाली निन्दनीय नहीं है, बरन उत्तम है।

चौथी आपत्ति कुछ पुष्ट है, और वह यह है, “भाषा को ग्रामीण होने का लाल्छन लगेगा” यहां यह विचार्य्य है कि भाषा के ग्रामीण न होने की चेष्टा क्यों की जाती है? और किसी परमावश्यक स्थल पर दो चार ग्राम्य शब्दों के आजाने से ही भाषा ग्रामीण हो जाती है या क्या? जो शिष्टसमाज की बोल-चाल की भाषा होती है, लिखित भाषा वही हुआ करती है। कारण इसका यह है कि वह सब प्रकार सुसम्पन्न और पूर्ण होती है, इसलिए किसी विषय के लिपिबद्ध करने में विद्वानों द्वारा आदर उसीका होता है। और ऐसी दशा में भाषा के ग्रामीण न होने देने की चेष्टा स्वाभाविक है। किन्तु किसी परमावश्यक स्थल पर दो चार ग्राम्य शब्दों के प्रयोग से ही भाषा ग्रामीण नहीं हो सकती—भाषा ग्रामीण उसी समय होगी—जब

हम शिष्टसमाज में गृहीत शब्दों को अनेकांश में न ग्रहण करेंगे—किम्बा शब्दों के लिखने में उनके उच्चारण और व्यवहार का ध्यान न रखेंगे। अर्थात् छत को छात, भूँकने को भूसने, और बाल को बार इत्यादि एवम् पांश के स्थान पर गोड़—नाक के स्थान पर नकुरा—और समय और बेला के स्थान पर बिरिया इत्यादि लिखेंगे। यह भी स्मरण रहे कि जैसे कविता में संकीर्ण स्थल पर—कोई भावव्यञ्जक मधुर ग्रामीण शब्द कवियों द्वारा परिगृहीत हो जाता है और वह उतना निन्दनीय नहीं समझा जाता, प्रत्युत पद्य की शोभा ही वर्द्धन करता है। उसी प्रकार किसी स्थानविशेष पर किसी मुख्य कारण से यदि गद्य में भी कोई मधुर ग्रामीण शब्द प्रयुक्त हो जावे, तो केवल इसी कारण से ग्रन्थ की भाषामात्र को गंवारी होने का लांछन नहीं लग सकता।

उर्दू भाषा छील-छाल कर बहुत ठोक की गई है। इस भाषा के गद्य और पद्य में जो शब्द आते हैं, वे बहुत ही बीछे बराये हुए शब्द हैं, तथापि ब्रजभाषा के अनेक ग्राम्य शब्द अब तक उसकी शोभा वर्द्धन कर रहे हैं। पाठकगण ! नीचे के शैरों को देखिये, इनमें जिन शब्दों के नीचे आड़ी लकीर खिंची हुई है, वे सब विशेष ध्यान देने योग्य हैं। यतः उर्दू के गद्य और पद्य दोनों की भाषा एक ही है, अतएव मैंने गद्य का कोई पैरा न उठाकर आप लोगों के मनोरंजन के ध्यान से कतिपय पद्यों को ही उठाया है।

दर्द—अब दर्द बहुत किया परेखा हम ने।

देखा तो अजब जहाँ का लेखा हम ने ॥

बोनाई न थी तो देखते थे सब कुछ ।

जब आंख खुली तो कुछ न देखा हमने ॥

नसीम—बादे सहरी चली जो सन से ।

वह शमा सिधारी अंजुमन से ॥

मोमिन—उम्र सारी तो कटी इश्क बुतांमें मोमिन ।

आखिरी वरू में कग खाक मुसलमां होगे ॥

सादा—जैसी सजधज थी गलेबीच हेमायल गुलकी ।

बैसी ही इज की बू बैसी ही सौंधे की महक ॥

इन्शां—कोई शबनम से छिड़क बालों प अपने पौडर ।

कुरसिये नाजप जल्वा की दिखावेगा फबन ॥

अहल नजारा की आंखां में नजर आवेगी ।

बाग में नरगिसे शोइला की हवाई चितवन ॥

यदि परेखा, लेखा, सिधारी, सारी, सजधज, सौंधे, फबन, चितवन, शब्दों के ग्राम्य होने में सन्देह हो, तो यह तो सभी स्वीकार करेंगे कि यह ठेठ ब्रजभाषा शब्द हैं । और जब इन ठेठ शब्दों के प्रयोग से दर्द इत्यादि उर्दू के लब्धप्रतिष्ठ शायरों की और निगोड़ी, सौत, फन्द, इत्यादि ऐसे ही शब्दों के प्रयोग से बाबू हरिश्चन्द्र इत्यादि सुलेखकों और पथप्रदर्शकों की भाषा को ग्रामीण होने का दोष नहीं लगा, तो आशा है कि मेरे ऊमस, नेह, निहोर, इत्यादि शब्दों के प्रयोग से 'अथखिला फूल' और 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' की भाषा को भी ग्रामीण होने का दोष नहीं लगेगा, क्योंकि यह सब शब्द भी उसा टाइप के हैं । मुख्यतः उस अवस्था में ज कि

ये दोनों पुस्तकें ठेठहिन्दी में बिना अन्य भाषा और संस्कृत का कोई अप्रचलित शब्द प्रयोग किये लिखी गयी हैं ।

हम यथासामर्थ्य चारों आपत्तियों की अयौल्लिखिता सिद्ध कर चुके, साथ ही उस आशंका का भी निरसन हुआ, जो कि आपत्तियों के उत्थापन का कारण थी। संभव है कि इस विषय में भाषामर्मज्ञों की कुछ और सम्मति हो, किन्तु अब मुझको कुछ वक्तव्य नहीं है ।

इतना लिखने के पश्चात् भी यदि उन शब्दों के विषय में किसी महाशय को विशेष तर्क-वितर्क होवे, तो मेरी प्रार्थना यह है कि वे गंभीर गवेषणा से काम लें, उस समय उनको ऊमस, अनाखा, सजीला का व्यवहार हिन्दी को कौन कहे उडूँ गद्य में भा मिलेगा। नेह, बयार, निहोरा, छबीली, बापुरे, सरबस, निबारती आदि का प्रयोग भी वे लब्धप्रतिष्ठ हिन्दी-लेखकों के गद्य ग्रन्थों में पावेंगे। हां ! नेरे, घनेरे, चेरे शब्दों का प्रयोग उनको शायद ही गद्य ग्रन्थों में मिलेगा। मैंने भी उनको गद्य में स्थान नहीं दिया है, ये शब्द पद्य ही में आये हैं। गद्य से पद्य में सर्वत्र कुछ स्वतंत्रता होती है। मैं ग्रन्थों से वाक्यों को उद्धृत करके अपने कथन की पुष्टि भी करता, किन्तु इस विषय में ऊपर विस्तृत लेख लिखने के पश्चात् मैंने व्यर्थ दस भूमिका के कलेवर की वृद्धि उत्तम नहीं समझा ।

जो कुछ मैंने अभी कतिपय पंक्तियों में लिखा है, यदि पहले ही मैं इसको लिख देता, तो इस विषय में विस्तृत लेख लिखने की आवश्यकता न होती। क्योंकि जब लब्धप्रतिष्ठ लेखकों द्वारा

उनका व्यवहार सिद्ध है, तो फिर तर्क का स्थान कहाँ रहा। किन्तु ऐसी दशा में किसी सिद्धान्त पर उपनीत होना कठिन होता, और इसी लिए मुझको विस्तृत लेख लिखना पड़ा।

इस अवसर पर और एक विषय की मीमांसा आवश्यक है, वह यह है कि जस, अपजस, विपत, इत्यादि शब्द जो अशुद्ध रूप में व्यवहृत हुए हैं, क्या यह प्रणाली ठीक है? शब्दों को तोड़-मरोड़ कर रखने की श्रमसे उनका शुद्ध रूप में व्यवहार करना क्या उत्तम नहीं है? जहाँ तक मैं समझता हूँ, कह सकता हूँ कि व्यवहारस्त्रोत में पड़ कर जो टेढ़े मेढ़े शब्द-प्रस्तर-समूह घिसते घिसते सुन्दर और सुडौल आकार में परिणत हो गये हैं फिर उनको उसी पूर्व रूप में लाने की चेष्टा व्यर्थ है। आज कल की हिन्दीभाषा में शुद्ध संस्कृत शब्द अधिकतर व्यवहृत होते हैं, और प्रायः धुरंधर लेखकों की चेष्टा शुद्ध संस्कृत शब्द-समूह व्यवहार करने की और अधिक देखी जाती है—किन्तु शुद्ध संस्कृत शब्दों के स्थान पर व्यवहृत अपभ्रंश संस्कृत शब्दों का प्रयोग मैं इससे उत्तम समझता हूँ। आंख, नाक, कान, मुँह, दूध, दही के स्थान पर लिखने के समय हम इनका शुद्ध रूप अक्ष, नासिका, कर्ण, मुख, दुग्ध, दधि इत्यादि व्यवहार कर सकते हैं, किन्तु भाषा इससे कर्कश हो जावेगी, जन-साधारण की बोधगम्य न होगी। साथ ही उसका हिन्दीपन लोप हो जावेगा। किसी भाषा के लिखने की चेष्टा करने पर यथासाध्य उसको उन्हीं शब्दों में लिखना चाहिये, जिनमें कि वह बोली जाती होवे—अन्यथा वह उन्नत कदापि न होगी। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि लिखित

भाषा और कथित भाषा में सर्वदा कुछ न कुछ अन्तर अवश्य हुआ करता है—परन्तु यह अन्तर इतना न होना चाहिए जिस से कि आप उसके रूप पहचानने में भी कुंठित हों।

यदि कोई वादग्रस्त विषय लिखना होवे, किम्बा कोई गूढ़ मीमांसा करनी हो, अथवा मनेभाषव्यञ्जक कोई उपयुक्त शब्द भाषा में न प्राप्त होता होवे—तो हम संस्कृत शब्दों से हिन्दी लिखने के समय ऋचय काम ले सकते हैं—ऐसी अवस्था में हमको कोई दोषभागी भी न बनावेगा। किन्तु यदि हम कोई साधारण बात लिखना चाहते हैं, और भाषा के भंडार से हमको आवश्यकता-नुसार शब्द प्राप्त हो सकते हैं, और हम फिर भी संस्कृत शब्दों की तृष्णा नहीं त्यागते, और दौड़ कर भाषा के चिकने कोमल शब्दों को संस्कृत का पूर्वरूप देने का ही आग्रह करते हैं, तो अवश्य हम दोषभागी हैं।

यदि यह कहा जावे “ कि आंख नाक, कान इत्यादि जो अपभ्रंश संस्कृत शब्द हैं, वे वास्तव में जन साधारण द्वारा ऐसे ही बोले जाते हैं, अतएव उनको शुद्ध कर के लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। जस इत्यादि को इस लिये शुद्धरूप में लिखने को कहा जाता है कि वास्तव में उन का जन साधारण में इस रूप में व्यवहार नहीं है यह सब सर्वथा बने हुए और कल्पित अवगत होते हैं।” तो हम कहेंगे कि यदि यह विचार सत्य है, तो हम को भी कोई विरोध नहीं है, मैं भी उसी रूप में शब्द के व्यवहार का पक्षपाती हूं कि जिस रूप में वह सर्वसाधारण द्वारा बोला जाता है, यदि सर्वसाधारण द्वारा वह उस रूप में नहीं बोला जाता

है कि जिस रूप में वह लिखा गया है तो अवश्य त्याज्य है। किन्तु वक्तव्य यह है कि क्या यह विचार सत्य है ? क्या सर्वसाधारण जस को यश और अपजस को अपयश और विपत को विपत्ति बोलते हैं ? कदापि नहीं, वरन उन का उच्चारण वही है, जैसा कि लिखा गया है। उच्चारण के विषय में इन शब्दों पर आक्षेप कदापि नहीं हो सकता, हां ! यह कहा जा सकता है कि इस रूप में किसी ग्रन्थ में ये शब्द नहीं लिखे गये, परन्तु मैं इस बात को भी नहीं मान सकता। उर्दू में बराबर यश के स्थान पर जस का व्यवहार होता है। कविता में अनेक स्थानों पर अपयश के स्थान पर अपजस का प्रयोग हुआ है, सर्व साधारण में वह बोला भी इसी रूप में जाता है, विपत के विषय में भी वही कहा जा सकता है।

मैं उच्चारण को आदर्श मान कर, यतः कार्य करने का पूर्ण पक्षपाती हूं, अतएव मैं ने, अपने अनुभव पर निर्भर करके उक्त दोनों ग्रन्थों में प्रायः शुद्ध संस्कृत शब्दों के स्थान पर बोल चाल में व्यवहृत अपभ्रंश संस्कृत शब्दों के व्यवहार की चेष्टा की है, और उन को उसी आकार और रूप में लिखा है कि जिस आकार और रूप में वे व्यवहृत होते हैं। या यों समझिये ठेठ हिन्दी में ग्रन्थ लिखने के लिये कटिवद्ध हो कर मुझ को बिवशतः निबन्धन ऐसा करना पड़ा है। किन्तु मेरा यह पक्षपात सर्वथा निर्दोष या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। मैंने ऐसे शब्दों के व्यवहार की पुष्टि भी की है। परन्तु इस पुष्टि से मेरा यह अभिप्राय नहीं है; कि किसी पुस्तक में इस प्रकार के किसी शब्द का प्रयोग मिलने पर

ही उस शब्द का उस प्रकार हम को प्रयोग करना चाहिये । सिद्धान्त की बात तो यह है कि प्रत्येक लेखक को इस प्रकार का प्रयोग करने का अधिकार है । किन्तु उस अवस्था में जब कि वह निश्चय कर लेवे कि उस शब्द का व्यवहार सर्वसाधारण में उसी प्रकार होता है ।

स्मरण रहे कि यह प्रयोग ' देखो ' के ' दखो ' लिखने के समान नहीं हैं, कारण इस का यह है कि देखो का व्यवहार अधिकतर प्रान्तों में इसी रूप में होता है—हिन्दी और उर्दू के सुलेखकों ने भी इस को इसी रूप में लिखा है—अतएव इन बातों र दृष्टि देकर इस का इसी रूप में लिखा जाना सुसंगत है । किसी एक प्रान्त के उच्चारण का आग्रह कर के उस को ' दखो ' लिखना ऐसा ही अनुचित है, जैसा सर्वसम्मत और भाषापरिगृहीत ' नाक ' शब्द के स्थान पर किसी प्रान्तविशेष के उच्चारण का आग्रह करके ' नकुल ' लिखना असंगत है ।

इस ढंग से शब्दप्रयोग करते प्राचीन हिन्दी लेखकों को भी देखा जाता है, प्रमाण में मैं बाबू हरिश्चन्द्र के सत्यहरिश्चन्द्र नाटक से एक पैरा नीचे उद्धृत करता हूँ । इस पैरे में जिन शब्दों के नीचे आड़ी लकीर है, वे सब शब्द ध्यान देने योग्य हैं ।

“ हाय ! यह बिपत का समुद्र कहां से उमड़ पड़ा, अरे ! छलिया मुझे छल कर कहां भाग गया ! (देख कर) अरे आयुस की रेखा तो इतनी लम्बी है फिर अमो से यह बज़ कहां से टूट पड़ा । अरे ऐसा सुन्दर मुंह, बड़ी बड़ी आंख, लम्बी २ भुजा, चौड़ी

छाती, गुलाब सा रंग । हाय ! मरने के तुझ में कौन से लच्छुन थे,
जो भगवान ने तुझे मार डाला ! हाय ! लाल ! अरे बड़े बड़े जोतसी
गुनी लोग तो कहते थे कि तुम्हारा बेटा बड़ा प्रतापी चक्रवर्ती राजा
होगा, बहुत दिन जीवेगा, सो सब झूठ निकला ! हाय ! पोथी, पत्रा,
पूजा, पाठ दान, जप होम, कुछ भी काम न आया ! हाय ! तुम्हारे
बाप का कठिन पुन भी तुम्हारा सहाय न भया और तुम चल
बसे ! हाय ! ”

शैव्याबिलाप ।

जैसे ब्रजभाषा शब्दों के व्यवहार के विषय में लोगों ने तर्क
किये, उसी प्रकार कई महाशयों ने कतिपय शब्दों के खोलिङ्ग
और पुल्लिङ्ग होने के विषय में भी वाद किया । इन में मुख्य शब्द,
उमंग, चाल चलन, और चर्चा हैं । मैं इन शब्दों के विषय में
भी कुछ लिखना चाहता हूँ लिंगविभेद का भगड़ा बहुत दिनों
से उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओं में चला आता है । उर्दू ही में
कुछ लोग एक शब्द को पुल्लिङ्ग और दूसरे खोलिङ्ग लिखते हैं ।
लखनवी और देहली की उर्दू को मिला कर देखिये उस समय
आप को मेरे कथन के कितने ही प्रमाण मिलेंगे । हिन्दी भाषा में
भी देखाजाता है कि बाबू हरिश्चन्द्र और उन के परवर्ती लेखकों
के अनुसरण करनेवाले तो पुस्तक और आत्मा को स्त्रीलिंग
लिखते हैं और पंडितऊ हिन्दी लिखनेवाले इन्हीं शब्दों को पुल्लिङ्ग
लिखते हैं ऐसा ही विभेद आप वायु और पवन शब्द में देखेंगे,
इन शब्दों को कोई पुल्लिङ्ग लिखता है, और कोई स्त्रीलिङ्ग । ऐसे
ही और शब्द भी बतलाये जा सकते हैं । किन्तु इस विवाद को

छोड़ कर मुझे वादग्रस्त शब्दों की हो मीमांसा करना है, अतएव मैं इसी कार्य में प्रवृत्त होता हूँ।

पहले मैं उमंग शब्द को लेता हूँ—और देखता हूँ कि हिन्दी भाषा के सुलेखकों ने इस को खीलिङ्ग लिखा है वा पुलिङ्ग। सब से प्रथम मैं बाबू हरिश्चन्द्र के ग्रन्थ से ही प्रमाण उद्धृत करता हूँ। उन के कर्पूरमंजरी सट्टक के पृष्ठ २३ में यह वाक्य है—

“ राजा—परस्पर सहज स्नेह अनुराग के उमंगों का बढ़ना अनेक रसों का अनुभव, संयोग का विशेष सुख, संगीत साहित्य और सुख की सामग्री मात्र को सुहावना कर देना, और स्वर्ग का पृथ्वी पर अनुभव करना। ”

बाबू राधाकृष्ण दास हिन्दी के वर्तमान सुलेखकों में हैं, बाबू हरिश्चन्द्र की जीवनी के पृष्ठ १६ में लिखते हैं—

“ बाबू हर्षचन्द्र के बाल्यकाल ही में इन के पूजनीय पिता ने परलोक प्राप्त किया। लोगों ने इन के उमंग का अच्छा अवसर उपस्थित देख उन्हें राय रत्नचन्द्र बहादुर से लड़ा दिया ”

कबिचर मिखारी दास भाषा के प्रसिद्ध कवियों में हैं, उन के शृंगारनिर्णय के पृष्ठ ३६ में यह सवैया लिखी हुई है ॥

सवैया ।

समीप निबुंजन कुंजबिहारी गये लखि सांभ पगे रसरंग ।
इतै बहु द्योस मैं आय कै धाय नवेली को बैठी लगाइ उछंग ॥
उड़ी तहं दास बसी चिड़ियां उड़िगो तिय को चित वाहि के संग ।
बिछोह तें बुंद गिरे अंसुआं के सु वाके गुने गये प्रेम-उमंग ॥ १ ॥

हिन्दी—कोष के पृष्ठ ३० में यह शब्द अर्थ के साथ इस प्रकार

लिखा हुआ है, कोष्ठगत 'प' से उसी ग्रन्थ के आदि पृष्ठ की सूचना के अनुसार पुलिङ्ग समझना चाहिये ।

उमङ्ग (प) मग्नता, धुन, तृष्णा ।

ऊपर जो प्रमाण संग्रह किये गये, उन से स्पष्ट है कि हिन्दी में 'उमङ्ग' शब्द को पुलिङ्ग लिखते हैं ।

अब कुछ उर्दू के शायरों की कविता नीचे लिखता हूँ, पाठकगण देख । इस में 'उमंग' शब्द का व्यवहार 'स्त्रीलिंग' की भांति हुआ है ।

अकबर—साम्हने थीं लेडियाने माह वश जाबू नज़र ।

यां जवानी की उमंग वो उन को आशिक की तलाश ॥

नैरंग—सहरा को खींचती है दिलेजार की उमंग ।

बैठा रहे जो घर में यह किस को करार है ।

अब चालचलन को देखिये ।

सुप्रसिद्ध भारतमित्र पत्र के वर्त्तमान सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त हिन्दी और उर्दू दोनों पर समान अधिकार रखते हैं, अतएव इन्हीं का लेख हिन्दी के विषय में प्रमाणस्वरूप यहां उद्धृत किया जाता है, क्योंकि केवल हिन्दी जाननेवाले की अपेक्षा हिन्दी और उर्दू दोनों जाननेवाले का लेख विशेष पुष्टि का हेतु होगा—

“जज—अगर तुम नहीं मानोगे तो मैं सरकार में तुम्हारी चालचलन की रीपोर्ट करूंगा”

एक दूसरी ठौर—

“अगर एक ज़िला जज एक बारिष्टर को गाली दे तो बारिष्टर जज की चालचलन पर रिमार्क कर सकता है ।

भारतमित्र ४ जून सन् १९०४ ई० कालम चौथा पंक्ति ८०
८१, वो ११५, ११६

मोलवी हसन अली साहब मुहम्मद मिशनरी अपने नेकचलनी
नामक प्रबन्ध में लिखते हैं ।

“गो इन्सान पूरी लियाकत न रखता हो, और दोलत में भी
कम हो, लेकिन अगर उस का चाल चलन उम्दा और शाइस्ता है,
तो उसकी क़दर और मंज़िलत हमेशा बढ़ती रहेगी ”—

मुअल्लिमुत्तहज़ीब पृष्ठ ७२ ।

सर सैय्यद अहमद साहब “अपनी मदद आप ” शीर्षक
प्रबन्ध के आठवें टुकड़े में लिखते हैं—

“लौर्ड बेकन का निहायत उम्दा कौल है—कि इल्म से अमल
नहीं आता, इल्म को अमल में लाना इल्म से बाहर वो इल्म से
बरतर है, इल्म की निस्वत अमल और सवानेह उमरी की निस्वत
उम्दा चालचालन आदमी को ज्यादा मुअज़्ज़िज़ और क़ाबिल
अदब बनाता है—”

मुअल्लिमुत्तहज़ीब पृष्ठ ६१ ।

ऊपर जो वाक्य उद्धृत किये गये, उन के देखने से पाया जाता
है कि हिन्दीवाले चालचलन को ख़ीलिंग लिखते हैं—किन्तु उर्दू-
वाले इसी शब्द का प्रयोग पुलिङ्ग की तरह करते हैं ।

अब चर्चा की चर्चा हमें और करनी है। सब से पहले भारतेन्दु
जी की एक सयैया हम नीचे लिखते हैं ।

सबैया ।

जग जानत कौन है प्रेमबिथा केहि सों चरचा या वियोग की

कीजिये । पुनि को कही मानै कही समझे कोऊ क्यों बिन बात की
रारहिं लीजिये ॥ नित जो हरिचंद जू बीतै सहै बकि कै जग क्यों
परतीतहि छीजिये । सब पूछत मौन क्यों बैठि रही पिय प्यारे कहा
इनै उत्तर दीजिये ॥

सुन्दरीतिलक पृष्ठ २२६ में यह सबैया लिखी है ।

सबैया ।

पी चलिबे की चली चरचा सुनि चंदमुखी चितई दगकोरन ।
पीरी परी तुरतै मुख पै बिलखी बनि व्याकुल मैन सकोरन ॥
को बरजै अलि कासों कहों मन भूलत नेह ज्यों लाज झकोरन ।
मोती से पोह रहे अंसुआ न गिरे न फिरे बरुनीन के कोरन ॥

उर्दू कवियों की भी दो कवितायें देखिये—

अकबर—अकबर से आज हज़रते वायज़ ने यों कहा ।

चरचा है जा बजा तेरे हाले तवाह का ॥

कश्चित—दुनिये के जो मज़े हैं हरगिज यह कम न होंगे ।

चरचा यही रहेगा अफ़सोस हम न होंगे ॥

ऊपर की कविताओं के देखने से स्पष्ट है कि भाषा में चर्चा
को स्त्रीलिंग लिखते हैं और उर्दू वाले उस को पुलिङ्ग बांधते हैं ।

अब यहां उल्लभन यह आन पड़ी कि जब भाषा और उर्दू
लिखनेवालों के प्रयोग में इस प्रकार प्रभेद है—तो इन शब्दों के
स्त्रीलिङ्ग पुलिङ्ग की मीमांसा कैसे हो । वास्तव बात यह है कि
इस प्रकार के शब्दों के लिङ्ग की मीमांसा बहुत कठिन है । ऐसे
अवसर पर हमारा कर्तव्य यही है कि जब हम भाषा लिखें तो

ऐसे शब्दों के प्रयोग के विषय में भाषावालों का मार्ग ग्रहण करें, और जब उर्दू लिखें तो उर्दूवालों का । अन्यथा हमारा लेख पुलिङ्ग, खीलिङ्ग के दोष से मुक्त न हो सकेगा ।

यह हम स्वीकार करेंगे कि भाषा लिखनेवालों में भी कोई उर्दूवालों के समान चालचलन को पुलिङ्ग लिखते हैं, परन्तु अल्प । अधिकतर भाषा लिखनेवाले प्राचीन हिन्दी लेखकों का ही अनुसरण करते हैं । हां, उमंग, की बात निराली है, भाषा-गद्य पद्य लिखनेवालों में भी अधिक लोग इस को खीलिङ्ग ही लिखते हैं । बाबू हरिश्चन्द्र ने चन्द्रावली नाटिका पृष्ठ २५ में इस को खीलिङ्ग लिखा है—स्वर्गीय पं० प्रतापनारायण मिश्र इस को सदा खीलिङ्ग ही लिखते थे । अतएव यदि व्यवहार के आधिक्य पर विचार किया जावे तो यह अवश्य कहना पड़ेगा कि इस शब्द का खीलिङ्ग लिखा जाना ही अच्छा है । इसी प्रकार आधिक्य पर दृष्टि डाल कर उन शब्दों की मीमांसा कर लेनी चाहिये, कि जो भाषा में भी दो प्रकार से लिखे जाते हैं—अर्थात् भाषा ही में जिन को कोई खीलिङ्ग और कोई पुलिङ्ग लिखता है ।

वास्तव बात यह है कि शब्दों का खीलिङ्ग और पुलिङ्ग लिखा जाना और किसी वाक्य का ठीक ठीक लिपिबद्ध होना समाज के बोलचाल पर निर्भर करता है । व्याकरण भी बोलचाल के अनुसार ही विधिबद्ध होता है, अर्थात् बोलचाल की विधिबद्ध प्रणाली ही व्याकरण है । अतएव समाज द्वारा जो शब्द जिस प्रकार काम में लाया जाता है, अथवा जो वाक्य जिस प्रकार व्यवहृत होता है, उस को उसी प्रकार काम में लाना और व्यवहार करना चाहिये ।

दा चार शब्दों के विषय में मुझ को कुछ बातें और कहनी हैं, उन को कह कर अब मैं इस लेख को समाप्त करूंगा ।

“अधखिला फूल” के पृष्ठ ८६ पंक्ति ६ में ‘पतोहैं’ और पृष्ठ ११० पंक्ति २० में देवतों, और पृष्ठ १२६ पंक्ति १० में बिपतों, शब्द का प्रयोग हुआ है । व्याकरणानुसार इन शब्दों का शुद्ध रूप, पतो-हुयें, देवताओं, और बिपत्तियों, होता है । अतएव यहां पर प्रश्न हो सकता है, कि इन शुद्ध रूपों के स्थान पर, पतोहैं इत्यादि अशुद्ध रूप क्यों लिखे गये ? बात यह है कि पतोहू और बिपत्ति शब्द का बहुवचन व्याकरणानुसार अवश्य पतोहुयें, और बिपत्तियां होगा, परन्तु सर्वसाधारण बोलचाल में पतोहू के स्थान पर पतोह और बिपत्ति के स्थान पर बिपत शब्द का प्रयोग करते हैं, अतएव व्याकरणानुसार इन दोनों शब्दों का बहुवचन पतोहैं, और बिपतों किम्बा बिपतें यथास्थान होगा । इस के अतिरिक्त उच्चारण की सुविधा, कारण, अब पतोहुयें और बिपत्तियों के स्थान पर पतोहैं व बिपतों शब्दों का ही सर्वसाधारण में प्रचार है, इस लिये पतोहुयें और बिपत्तियों के स्थान पर पतोहैं और बिपतों लिखा जाना ही सुसंगत है । हां देवतों शब्द किसी प्रकार व्याकरणानुसार सिद्ध न होगा, क्योंकि देवता शब्द का बहुवचन जब होगा तो देवताओं ही होगा । अतएव इस शब्द के विषय में अशुद्ध प्रयोग का दोष अवश्य लग सकता है । परन्तु स्मरण रहे कि व्याकरणानुसार यद्यपि देवतों पद असिद्ध है तथापि सर्वसाधारण की बोलचाल में देवताओं शब्द नहीं है, देवता का बहुवचन उन लोगों के द्वारा देवतों ही व्यवहृत होता है, और समाज की बोलचाल को सदा

व्याकरण पर प्रधानता है, अतएव देवताओं के स्थान पर देवतों पद का ही प्रयोग किया गया है। किन्तु यदि इस में मेरा दुराग्रह समझा जावे तो देवतों शब्द के स्थान पर देवताओं शब्द ही पढ़ा जावे, इस विषय में मुझ को विशेष तर्क-वितर्क नहीं है।

पतोहें, और बिपतों, किम्बा विपतें इत्यादि के समान पहले से भी प्रयोग होता आया है, आप लोग बाबू हरिश्चन्द्र के निम्नलिखित पद के उन शब्दों पर ध्यान दीजिये, जिन के नीचे आड़ी लकीर दी हुई हैं। उन शब्दों का बहुवचन रीतियां, नीतियां, प्रीतियां, व्याकरणानुसार होना चाहिये, परन्तु उनका उच्चारण रीत, नीत प्रीत समझ कर बहुवचन रीतें, नीतें, प्रीतें बनाया गया है।

पद।

कुढ़त हम देखि २ तु रीतैं । सब पै इक सी दया न राखत नई
निकाली नीतैं ॥ अजामील पापी पर कीनी जौन कृपा करि प्रीतैं ।
सो हरिचन्द हमारी बारी कहां बिसारी जी तैं ॥

ठेठ हिन्दी का ठाठ, के बहुत प्रचार के साथ उसकी भाषा के विषय में लोगों की अनेक तर्कनायें भी हुईं, समय समय पर श्रवणपरम्परा से मुझको उनका ज्ञान होता रहा, परन्तु जब नागरीप्रचारिणी सभा के सभा-भवन-उत्सव पर मैं काशी गया तो वहां कई एक सज्जनों से इस विषय में विशेष बातचीत हुई। मेरे भक्तिमान कनिष्ठ सहोदर पं० गुरुसेवक सिंह उपाध्याय बी० ए० डिप्टी कलकटर मिर्जापुर ने जब इस ग्रन्थ की एक एक प्रति महा-महोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी इत्यादि सुजनों को अर्पण की थी,

तो उन लोगों ने भी इस विषय में कई एक बातें कही थीं। निदान जो जो तर्क वितर्क 'ठेठ हिन्दी का ठाठ, की भाषा के विषय में आज तक हुये हैं, मैंने यथासामर्थ्य उन सबका उत्तर इस भूमिका में लिख दिया है। किन्तु मेरा उत्तर सुसंगत है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। इसका विचार भाषामर्मज्ञों के हाथ है। मुझको इस बात का खेद है कि मेरी इच्छा के विरुद्ध भूमिका बहुत विस्तृत हो गई, किन्तु क्या करूं, प्रसंगवश मुझको अनेक विषयों की अवतारणा करनी पड़ी—आशा है आप लोग विवश समझ कर क्षमा करेंगे ॥

मैंने इस "अधखिला फूल" को भी ठेठ हिन्दी में ही लिखा है, और यथासामर्थ्य किसी अन्य भाषा के शब्द न आने देने की चेष्टा की है, ऐसा कई ठौर लिखा जा चुका है किन्तु इस पौने दो सौ पृष्ठ की पुस्तक में अनवधानता अथवा भ्रमवश भी अन्य भाषा का कोई शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है—यह मैं नहीं कह सकता। यदि ऐसी त्रुटि कहीं दृष्टिगोचर होवे, तो मैं अपने सहृदय पाठक से उसकी मार्जना और उससे अभिज्ञताप्रदान की प्रार्थना करता हूं। किन्तु विनय यह है कि जवान और बच्चा इत्यादि शब्दों पर गंभीर गवेषणा पूर्वक दृष्टि डाली जावे, क्यों यद्यपि ये शब्द फारसी ज्ञात होते हैं किन्तु वास्तव में ये संस्कृत शब्द युवन् और बत्स के अपभ्रंश हैं।

एक विषय में मैं बहुत लज्जित हूं—और वह इस भूमिका की भाषा है। इस भूमिका में बहुत से संस्कृत शब्दों का प्रयोग करके मैं गोस्वामी तुलसीदासजी के इस वाक्य का कि "पर उपदेस कुसल

बहुतेरे । जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥” स्वयं आदर्श बन गया हूं ।
 किन्तु क्या करूं एक तो जटिल विषयों की मीमांसा करनी थी,
 दूसरे यह भूमिका बहुत शीघ्रता में लिखी गई है, अतएव उक्त
 दोष से मैं मुक्त न हो सका । यदि परमात्मा सानुकूल है तो आगे
 को इस विषय में सफलता लाभ करने की चेष्टा करूंगा ॥

विनयावनत

हरिऔध

अधखिला फूल ।

पहली पंखड़ी ।

बैशाख का महोना, दो बड़ी रात बीत गई है । चमकीले तारे चारों ओर आकाश में फैले हुये हैं, वृज का बाल सा पतला चाँद, पश्चिम ओर डूब रहा है, अंधियाला बढ़ता जाता है, ज्यों ज्यों अंधियाला बढ़ता है, तारों की चमक बढ़ती जान पड़ती है । उन में जोत सी फूट रही है, वे कुछ हिलते भी हैं, उनमें चुपचाप कोई कोई कभी टूट पड़ते हैं, जिससे सुनसान आकाश में रह रह कर फुलझड़ी सी छूट जाती है । रात का सन्नाटा बढ़ रहा है, ऊमस बढ़ी है, पवन डोलती तक नहीं, लोग घबड़ा रहे हैं, कोई बाहर खेतों में घूमता है, कोई घर की खुली छतों पर ठंढा हो रहा है, ऊमस से घबड़ा कर कभी कभी कोई टिटिहरी कहीं बोल उठती हैं ।

भीतों से घिरे हुये एक छोटे से घर में एक छोटा सा आँगन है, हम वहीं चल कर देखना चाहते हैं, इस बड़ी वहाँ क्या होता है । एक मिट्टी का छोटा सा दीया जल रहा है, उसके धूँधले उँजाले में देखने से जान पड़ता है, इस आँगन में दो पत्तंग पड़े हुये हैं । एक पत्तंग पर एक ग्यारह बरस का हंसमुख लड़का लेटा हुआ उसी दिशे के उँजाले में कुछ पढ़ रहा है । दूसरे पत्तंग पर

एक पैंतीस छत्तीस बरस की अधेड़ स्त्री लेटी हुई धीरे धीरे पंखों काँक रही है, इस पंखे से धीमी धीमी पवन निकल कर उसके लड़के तक पहुँचती है, जिससे वह ऐसी ऊमस में भी जी लगा कर अपनी पोथी पढ़ रहा है। इस स्त्री के पास एक चौदह बरस की लड़की भी बैठी है। यह एकटक आकाश के तारों की ओर देख रही है, बहुत बेर तक देखती रही, पाछे बोली मा ! आकाश में ये सब चमकते हुये क्या हैं ?

मा ने कहा, बेटा ! जो लोग इस धरती पर अच्छी कमाई करते हैं, मरने पर वेही लोग स्वर्ग में बास पाते हैं, उनमें बड़ा तेज होता है, अपने तेज से वे लोग सदा चमकते रहते हैं। दिन में सूरज के तेज से दिखलाई नहीं पड़ते, रात में जब सूरज का तेज नहीं रहता, हमलोगों को उनकी छवि देखने में आती है। यह सब चमकते हुये तारे स्वर्ग के जाव हैं, इनकी छटा मिराली है, रूप इनका कहीं बढ़ कर है। न इन लोगों के पास रोग आता न ये बूढ़े होते, दुख इनके पास फटकता तक नहीं। यह जो तारों के बीच से उजली धार सी दक्खिन से उत्तर को चली गई है, आकाशगंगा है, इसका पानी बहुत सुथरा, मीठा और टंडा होता है, वह लोग इसमें नहाते हैं, मीठे अनूठे फलों को खाते हैं, मीनी मीनी महकवाले अनोखे फूल सूँघते हैं, भूख प्यास का खर नहीं, कमाने का खटका नहीं, जब जो चाहते हैं मिलता है, जब जो कहने हैं होता है, सदा सुख चैन से कटती है, इन लोगों के ऐसा बड़भागी जग में और दूसरा कोई नहीं है।

उत्तर और यह जो अकेला चमकता हुआ तारा दिखलाई पड़ता है, जिसके आस पास और कोई दूसरा तारा नहीं है, यह ध्रुव है। ध्रुव एक राजा के लड़के थे, इन्होंने बड़ा भारी तप किया था, वही तप के बल से आज उनको यह पद मिला हुआ है।

इन सर के ऊपर के सात तारों को देखो, ये सातों ऋषि हैं। इनमें ऊपर के चार देखने में चौखूँटे जान पड़ते हैं, पर नीचे के तीन कुछ कुछ तिकोने से हैं। इन्हीं तीनों में जो बीच का तारा है, वे वशिष्ठ मुनि हैं। उनके पास ही जो बहुत छोटा सा तारा दिखलाई पड़ता है, वे अरुंधती हैं, ये वशिष्ठ मुनि की स्त्री हैं। ये बड़ी, सीधी, सच्चो, दयावाली, और अच्छी कमाई करनेवाली हो गई हैं; अपने पति के चरणों में इन का बड़ा नेह था। इनकी भांति जो स्त्री अपने पति के चरणों की सेवकाई करती है, पति, कोई देवता जानती है, उन्हींकी पूजा करती है, उन्हींमें लव लगाती है, सपने में भी उनके साथ बुरा बरताव नहीं करती, भूल कर भी उनके कहीं बात नहीं कहती, कभी उनके साथ छल कपट नहीं करता वह भी मरने पर इसी भांति अपने पति के साथ रह कर स्वर्गसुख लूटती है।

जिन जीवों की कमाई पूरी हो जाती है, जिनका पुण्य ख़ुक जाता है, वे सब फिर स्वर्ग से आकर धरती में जनमते हैं, ऐसेही जीव ये सब रात के टूटते हुये तारे हैं। धीरे धीरे अपना तेज खो कर स्वर्ग से गिरते हैं, और फिर आकर इस धरती में जन्म लेते हैं।

लड़का चुपचाप मा की बातों को सुनता था, जब मा ने बातें पूरी कीं, बोला, मा तुम यह सब क्या कहती हो, ये सब तारे ऋषि मुनि नहीं हैं, जैसी हमारी यह धरती है, वैसे ही एक एक तारा एक एक धरती है, इनमें कोई कोई हमारी धरती से भी सैकड़ों गुना बड़ा है, ये तारे लाखों कोस की दूरी पर हैं। इसीसे देखने में छोटे जान पड़ते हैं नहीं तो बहुत सी बातों में ये सब ठोक हमारी धरती के से हैं। जैसे हमारी धरती पर नदी, पहाड़, झील, वन, पेड़, गांव, घर, जीव, जन्तु हैं, वैसेही इन तारों में भी समुद्र, नदी, वन, पहाड़, पेड़, पौधे, और जाव हैं; चांद में जो काले काले धब्बे देखने में आते हैं, वे उसमें के नदी पहाड़ हैं। जैसे अपनी रात होने पर हमलोग इन तारों को आकाश में चमकता हुआ देखते हैं, वैसे ही जब इन तारों में रात होती है, तो वहां के रहनेवाले भी हमारी धरती को इसा भांत आकाश में चमकता हुआ तारा देखते होंगे। तारों के बीच से उत्तर से दक्खिन को जो उजली धार सी निकल गई है, यह आकाशगंगा नहीं है, यह अनगिनत तारों की पांती है जो बहुत छोटे और बहुत दूर होने से आंखों को दिखलाई नहीं देते, और आंखों से न दिखलाई देनेही से उनकी पांती एक उजली धार सी जान पड़ती है, नहीं तो सचमुच यह कोई नदी नहीं है, और न उजली धार ही है। अरुंधती, जिस को तुम वशिष्ठ मुनि के पास बैठी समझती हो, उनसे लाखों कोस की दूरी पर होगी, वहां से बहुत दूर पर होने ही से हम तुमको वे दोनों पास पास जान पड़ते हैं। ये जो तारे टूटते हैं, वे स्वर्ग के जीव नहीं हैं जो

धरती की ओर जनमने के लिये गिरते हैं, भगवान ने अंत सबका बनाया है। दिन पाकर इन तारों का भी नाश होता है, उस घड़ी ये तारे बिखर जाते हैं, और उनके अनगिनत टुकड़े आकाश में इधर बधर गिरने लगते हैं। जो टुकड़े हम लोगों की आंखों के सामने होकर निकलते हैं, वेही टूटते हुये तारे हैं। आज कल के पढ़े लिखे लोग कहते हैं, दस सौ बरस पीछे हमारा चांद भी बिखर जायगा, जिस घड़ी यह दिखरेगा, इसके टुकड़े भी टूटते हुये तारे की भांत आकाश में बिखलाई पड़ेगे।

वह चौदह बरस की लड़की जो उस अंधेड़ स्त्री के पास बैठी हुई थी, लड़के की बातों को सुन कर खिलखिला कर हंस पड़ी, वह अंधेड़ स्त्री भी जो इन दोनों लड़कों की मा है, इन बातों को सुन कर कुछ घड़ी चुप रहो, फिर बोली, बेटा ! ये सब नई बातें हैं, कुछ अचरज नहीं जो ठीक हों, पर हमलोगों के उतने काम की नहीं हैं, ऐसी बातें कुछ तुम लोगों ही के काम की होती हैं।

लड़के ने कहा, मा ! ये बातें नई कैसे हैं, एक पण्डित जी परसों कहते थे, ये सब बातें हमारे यहां भी लिखी हुई हैं। यह जो एक तारा दक्खिन ओर भुका हुआ सर के ऊपर लाल रङ्ग का दिखलाई देता है, इसका नाम मङ्गल है। आज कल के पढ़े लिखे लोग कहते हैं, यह तारा हमारी धरती ही का टुकड़ा है, और इसीसे निकल कर बना है, इसकी सब बातें लगभग धरती ही की सी हैं। वे पण्डितजी कहते थे कि इस बात को हमारे बड़े लोग भी जानते थे,

क्योंकि जे न जानते होते तो मङ्गल को धरती का बेटा * क्यों कहते । ऐसे ही एक छोटा सा तारा जो कभी सबेरे बेलें पूर्व और कभी सांझ को पश्चिम ओर आकाश में नीचे को दिखलाई देता है, वह बुध है । कहा जाता है कि इसको बने अभी थोड़ा दिन हुआ है, यह अभी नया है, वह जाना भी बहुत पीछे गया है । परिडतजी कहते थे, बुध के लिये ठाक ऐसी ही बातें हमारे बहां भी लिखी हैं ।

मां-बेटे में ये बातें होती ही थीं, इतने ही में आकाश में बड़ा उजाला हो गया, और एक बड़ा तारा टूटकर आकाश से गिरते हुए उनको दिखलाई पड़ा । यह तारा ठीक इन लोगों के घर की सीढ़ में आ रहा था, और ज्यों ज्यों पास आता जाता था, एक सनसनाहट की धुन चारों ओर फैलती जाती थी, जिससे इन लोगों में खलबली सी मच गई । पर देखते ही देखते यह तारा इन लोगों के घर से दूर एक खेत में जा गिरा, और लड़का बठ कर वसी ओर चला गया ।

संस्कृत में मंगल का नाम भौम भूमितनय इत्यादि भी लिखा है ।

दूसरी पंखड़ी

जिस खेत में यह टूटा हुआ तारा गिरा, उसमें देखते ही देखते एक भीड़ सी लग गई, लोग पर लोग चले आते थे, और सब यही चाहते थे, किसी भांत भीड़ चीर कर उस तारे तक पहुँचें, पर इतने लोग वहाँ इकट्ठे हो गये थे, जिससे पीछे आये हुए लोगों का उसके पास तक पहुँचना कठिन था। जितनी मुंह उतनी बात सुनने में आती थी, सब इस सोच में डूबे हुए थे, यह क्या है। टूटे हुए तारे के चारों ओर बहुत लोग खड़े थे, पर उनमें से एक भी इतना जीवट नहीं रखता था, जो उसके छूकर उसका भेद बनलावे, कुछ घड़ी योंही बीती, वह जैसे पहले एक पत्थर की बड़ी चट्टान की भांति खेत में पड़ा हुआ था, अब भी बिना हिले डुले वैसे ही पड़ा है, पर उसको कोई हाथ तक नहीं लगा सकता। पीछे एकने कुछ जीवट किया, अपना कलेजा थामा, और दूर से एक ढेला उस पर फेंका। ढेला सनसनाता हुआ आकर उसपर गिरा, उस सुनसान रात में खटाक का शब्द हुआ, और फिर वैसे ही सन्नाटा छा गया। वह तनिक हिला तक नहीं, जैसे पहले पड़ा था वैसे ही पड़ा रहा। अब की बार एक दूसरे जन ने एक मोटी लाठी से ठोक ठोक कर उस को भली भांति देखा, और कहा, यह तो पत्थर की चट्टान है, कोई डरने की बात नहीं है, सब लोग पास आओ इसको देखो जो मैं कहता हूँ सच है कि नहीं। धीरे धीरे छड़ी और हाथों से चटोला कर सब लोगों ने इस दूसरे जन की बात मानी, पर अब यह सोचा जाने लगा, आकाश से इतनी बड़ी पत्थर की चट्टान क्योंकर गिरी।

लोग यह सोच रहे थे, इसी बीच एक बूढ़ा बोल उठा—
 भाइयो ! यह मैनाक पहाड़ का एक टुकड़ा है, पहले पहाड़ों को
 पंख होते थे, इस लिये वे सब उड़ते और बहुत से गांवों को गिर
 कर उजाड़ दिया करते थे, जब यह यात राजा इन्द्र से न देखी गई,
 तो उन्होंने अपने हथियार से सब पहाड़ों का पंख काट डाला ।
 मैनाक उनके डर से भागा, और समुद्र में जाकर छिप रहा, इससे
 वह आज तक बचा हुआ है । जान पड़ता है इस कलयुग में वह
 फिर समुद्र से निकला है, और उड़ता हुआ किसी गांव पर गिरने के
 लिये किरूी ओर गया है, उसीसे यह एक टुकड़ा निकल कर यहां
 गिर पड़ा है, यह एक मन से घट थोड़े ही होगा । जो उसमें से
 निकल कर न गिरता, तो आकाश में इतना बड़ा पत्थर का टुकड़ा
 कहां से आता । बड़ी कुशल हुई जो मैनाक इसी गांव पर नहीं
 गिरा, नहीं तो आज हमलोगों को कहीं ठिकाना भी न मिलता ।

एक बूढ़े पुराने ढङ्ग के परिण्डत भी वहां खड़े थे, वे बोले, यह
 बात नहीं है, जो यह मैनाक का टुकड़ा होता तो इसमें जोत कहां
 से आती, आप लोगों ने नहीं देखा था, इसके गिरने के समय कैसा
 बंजाला हुआ था, और जब यह आकाश से नीचे का आ रहा था,
 जान पड़ता था सूरज का टुकड़ा धरती की ओर आ रहा है । मैं
 समझता हूं, यह स्वर्ग का कोई जीव है, किसी शाप से पत्थर होकर
 धरती में आया है । पुराणों में लिखा है अपने पति के शाप से
 अहल्या को पत्थर होना पड़ा था, जान पड़ता है वही दशा इसकी
 भी हुई है । अभी घड़ी भर पहले दूसरे तारों की भांत आकाश में
 ये भी बमकते रहे होंगे, पर जग का कैसा ढङ्ग है, जो घड़ी भर पीछे

हम इनको पत्थर हो कर धूल मिट्टी के बीच एक खेत में पड़ा हुआ पाते हैं। राम का नाम जपने के लिये इससे बढ़ कर और कौन सी डरावनी बात दिखलाई जा सकती है।

एक नये पढ़े बाबू भी वहां खड़े थे, बोले आप लोग जो कहें, पर जहां तक मैं सोचता हूं टूटे हुए तारे छोड़ यह और कुछ नहीं है। आकाश में इतने बड़े और इससे कई गुने लम्बे चौड़े और छोटे अनगिनत टुकड़े दिन रात चक्कर लगाया करते हैं, दिन पाकर जब ऐसे बहुत से टुकड़े धीरे धीरे टुकड़े हो जाते हैं, तो एक तारा बन जाता है, इस तारे में कुछ दिनों में जोत भी आ जाती है, और तब यह चमकीला हो जाता है। ऐसे ही बनने के बहुत दिनों पीछे बहुत से तारे बिखर भी जाते हैं। जिस घड़ी ये बिखरते हैं, उस बेलें इनके अनगिनत टुकड़े आकाश में इधर बधर फैलते हैं, उनमें से पहले की भांति बहुत से फिर आकाश ही में चक्कर लगाने लगते हैं, बहुत से इतने छोटे होते हैं, जो कठिनाई से देखे जा सकते हैं, जो कुछ इनसे बड़े होते हैं, वे आकाश से धरती तक तड़ुंचते २ लाख बन जाते हैं, इन में जो बहुत बड़े होते हैं, वे कभी कभी धरती पर भी आन गिरते हैं, ऐसी बात खैकड़ों ठौर हो चुकी हैं, कुछ पहले पहल यहीं यह बात नहीं हुई है। आप लोग इसको भली भांति देखें, यह पत्थर की चट्टान नहीं है, जिन सब वस्तुओं से हमारी यह धरती बनी है, वे ही सब वस्तुएं इसमें भी हैं।

ये सब बातें हो ही रही थीं, इसी बीच पूर्व ओर से बहुत बड़ा धक्का आया, जिससे सामने के सब लोगों के पांव हलक गये, और एक लड़का घड़ाम से बसी टूटे हुए तारे के ऊपर

गिर पड़ा, गिरते ही उसके सिर में बहुत चोट आई, सिर फूट गया, लहू बहने लगा, और वह अचेत हो गया । यह देख कर सब लोग घबरा उठे, और फिर जितने मुंह बतानी बात सुनी जाने लगी । दो चार लोगों ने घर पकड़ कर उस लड़के को उसके घर पहुँचाया, और धीरे धीरे यह चर्चा गाँव भर में फैल गई । थोड़ी ही बेर में टूटे हुए तारे के पास की भीड़ भी छंट गई ।

तीसरी पंखड़ी ।

एक बहुत हो सजा हुआ घर है, भीतों पर एक से एक अच्छे-बेले बूटे बने हुए हैं। ठौर ठौर भांति भांति के खिलौने रक्खे हैं, बैठकी और हाँकियों में मामबत्तियाँ जल रही हैं, बड़ा डंजाला है, बीच में एक पलंग बिछा हुआ है, उसपर बहुत ही सुथरा और सुहावना बिछावन लगा है, पास ही कई एक बढ़िया चौकियाँ भी पड़ी हैं, इन में से एक पर एक लम्बा चौड़ा बाजा रक्खा हुआ है, यह बाजा अपने आप बज रहा है, कभी मीठे मीठे सुर भरता है, कभी अच्छी अच्छी गीत सुनाता है, कभी अपने आप चुप हो जाता है। रात का सन्नाटा है, कहीं कोई बोलता नहीं, इससे इस बाजे का सुर रंग दिखला रहा है। जिस पलङ्ग की बात हमने ऊपर कही है, उसी पर लेटा हुआ एक जन इस बाजे का बहुत जी लगा कर सुन रहा है, तनिक हिलता तक नहीं। बाहर जो कहीं कुछ खड़कता है, तो भौंहेँ टेढ़ी हो जाती हैं, पर बाजे में इतना लीन होने पर भी वह जैसे कुछ चंचल है, आखें उसकी किवाड़ की ओर लगा हैं। कान कुछ खड़े से हैं। जान पड़ता है किसी की बाट देख रहा है। और क्या जाने उतावले होकर ही जी बहलाने के लिये उसने बाजे में कुंजी दे रक्खी है, नहीं तो इतना चंचल क्यों ?

खिड़कियों में से धीरे धीरे ठण्ढी ठण्ढी बयार आती है और चुपचाप उस सन्नाटे में बाजे के मीठे मीठे सुरों को लेकर बाहर निकलती है, दूर निराले में जाते हुए किसी थके हुए बटोही के कानों में कहीं अमृत की बूँद सी ढाल देती है, कहीं गांव

से बाहर के खेत के एक कोने में चुपचाप बैठे हुए किसी किसान के मन को ब्रत की बांसुरी की सुरति कराती है। एक ठौर जो किसी कोयलकंठवाली के मतवाले को कल्लेजे में पीर सी डठा कर चावना बनाती है, तो दूसरी ठौर अधियाले में खड़े हुए पेड़ों के धीरे धीरे हिलते हुए पत्तों में से उनको कठिनार्ई से जैसा का तैसा बाहर निकालती है और पास के किसी कोठे में एक आंसू बहाती हुई बिरहिनी को रिझा कर अपने मन की सी करना चाहती है, पर उलटा उसको अपने आपे से बाहर होता देख कर एक झरोखे से निकल भागती है, और फिर पहले की भांति बैसी ही अठखेलियां करने लगती है। अब की बार वह एक हंसमुख स्त्री के मन को बस करने में लगी, इसके मन को लुभाया, उसको उमङ्ग को दूना किया, पर उसके हाथ के गजरो का महक पर आप भी मोह गई। इधर यह फूलों की बास से बसी हुई आगे बढ़ी, उधर वह उन मीठे मीठे सुरी पर लोट पोट होती हुई लम्बी लम्बी डेग भरने लगी। कुछ ही बेर में उसने उस सजे हुए घर को देखा।

बाजा बजते बजते रुक गया, सुरों की दूर तक फैली हुई लहरें पहले पवन में पीछे धीरे धीरे आकाश में लीन हुईं। सन्नाटा फिर जैसा का तैसा हुआ। पर यह क्या? फिर यह सन्नाटा क्यों टूट रहा है? वह घुंघुँकारों की झनकार कैसी सुनाई पड़ती है? बाजे के सुरों से भी रसीला सुर यह कौन छेड़ रहा है? क्या जिस जन को हम ने ऊपर इतना चंचल देखा था, यह बलीका ढाढ़स बंधानेवाला प्यारा सुर तो नहीं है? वह देखो, वह घर के बाहर भी तो निकल आ रहा है, क्या जिस ओर से झनकार आ रही है उसी ओर जाना

ज्वाहता है ? क्यों जायगा । देखते नहीं, छुम् छुम् करती उसके पास आकर कौन खड़ी हो गई ? क्या यह ऊपर की गजरेवाजी स्त्री तो नहीं है ?

जो जन अभी घर से बाहर आया है, उसका नाम कामिनी-मोहन है । कामिनीमोहन ने इस स्त्री की ओर देख कर कहा । क्यों बासमती ? अच्छी तो हो ?

बासमती । हां, अच्छी हूं ! बहुत अच्छी हूं ! ! आज मैं आप का बहुत कुछ काम करके आई हूं, इसी लिये अच्छी हूं । मेरे लिये अच्छा होना और दूसरा क्या है ! ! !

कामिनीमोहन । क्या सब ठीक हो गया ? क्या अबकी बार तुम मोहनमाला ले ही लोगी ? मैं सच कहता हूं, बासमती ! जो मेरा काम हो गया, तो मैं तुमको मोहनमाला ही न दूंगा, उसके सङ्ग एक सोने का कण्ठा भी दूंगा ।

बासमती । आप इतने उतावले क्यों होते हैं ? आपसे मैंने क्या नहीं पाया और क्या नहीं पाऊंगी । मैं मोहनमाने और कंठे को कुछ नहीं समझती । जिससे आपका जी सुखी हो, मैं उसी की खोज में रहती हूं, और उसके मिलने पर सब कुछ पा जाँगी हूं ।

कामिनीमोहन । क्या हम यह नहीं जानते, तुम कहोगी तब जानेगे ? जो तुम्हारे मैं यह गुण न देता तो हम तुम्हारा इतना भरोसा क्यों करते ? पर इस घड़ी इन बातों को जाने दो । आज क्या कर आई हो यह बतलाओ ?

बासमती । बतलाऊंगी, सब कुछ बतलाऊंगी, पर इस घड़ी नहीं, मैं जो कुछ ठीकठाक कर आई हूँ, जो मैं बात करने में फँसूंगी, तो वह सब बिगड़ जावेगा, इस लिये अब मैं यहाँ ठहरना नहीं चाहती, उसी ओर जाती हूँ । आज मैं आपसे मिलने के लिये पहले कह चुकी थी, इसी लिये आई हूँ । जो मैं न आती, आप घबराया करते ।

कामिनीमोहन । क्या दो एक बातें भी न बताओगी ?

बासमती । अभी दो एक बातें भी न बतलाऊंगी, अब मैं जाती हूँ, आप इन गज्रों से अपना जी बहलाइये, मैं जब चलने लगी थी, आपके लिए इनको साथ लेती आई थी । देखिये तो इन में कैसी अच्छी मंहर है ।

कामिनीमोहन ने गज्रों को हाथ में लेकर कहा, अच्छा जाना चाहती हो तो जाओ, पर जी मैं एक अनाखी बलमन डाले जाती हो । जब तक फिर आकर मुझसे तुम सब बातें पूरी पूरी न कहोगी, मुझको चैन न पड़ेगा । क्या इन गज्रों के न कुम्हलाते कुम्हलाते तुम आकर मेरे जी की कली खिला सकती हो ?

बासमती । आपके जी की कली मैं खिला सकती हूँ, पर इन गज्रों के न कुम्हलाते कुम्हलाते नहीं । कहां गज्रों का कुम्हलाना ! कहां कली का खिलना । क्या बिना मोर हुए भी कली खिलती है ?

कामिनीमोहन । गजरे कब बिना मोर हुए कुम्हलाते हैं ?

बालमती । आप ही सोचें । मैं बड़ी कइंगी जिस घड़ी फूलों से भी कहीं सुन्दर आपके हाथों में मैंने इन गजरो को दिया, यह अपनी बड़ाई को खो जाते देख कर उसी घड़ी कुम्हला गये ! अब आगे यह क्या कुम्हलायेंगे ?

कामिनामोहन ने देखा, इतना कह कर वह मुसकुराती हुई वहां से चली गई । और देखते ही देखते उसी अंधियाले में छिप गई । कभी कभी दूर से आकर उसके बजते हुए घुंघुराओं की झनकार कानों में पड़ जाती थी ।

कामिनीमोहन कुछ घड़ी वहीं खड़ा खड़ा न जाने क्या सोचता रहा, पीछे वह घर में आया, और फिर उसी पलंग पर लेट गया, पर नींद न आई, घंटों इधर उधर करवटें बदलता रहा, भाँति भाँति की उधेड़ बुन में लगा रहा, आंखें मीच कर नींद के बुलाने का जतन करता रहा, पर नींद कहाँ ? अबकी बार वह फिर पलंग पर से उठा, बिछावन को हाथों से झाड़ा, कुछ घड़ी धीरे धीरे टहलता रहा, पीछे सोया, नींद भी आई, और कुछ घंटों के लिए भाँति भाँति की बलझनों से छुटकारा पा गया ।

चौथी पंखड़ी ।

चांद कैसा सुन्दर है, उसकी छटा कैसी निराली है, उसकी शीतल किरणें कैसी प्यारी लगती हैं ! जब नीले आकाश में चारों ओर जोति फैला कर वह छवि के साथ रस की वर्षा सी करने लगता है, उस घड़ी उसको देख कर कौन पागल नहीं होता ? आंखें प्यासी प्यारी छवि देखते रहने पर भी प्यासी ही रहती हैं ! जी को जान पड़ता है, उसके ऊपर कोई अमृत ढाल रहा है, दिगार्यें हंसने लगती हैं, पेड़ की पत्तियां खिल जाती हैं । सारा जग डमंग में मानों डूब सा जाता है । ऐसे चांद, ऐसे सुहावने और प्यारे चांद में काले २ धब्बे क्यों हैं ? क्या कोई बतलावेगा ! ! ! आहा ! यह कमल सी बड़ी यड़ी आंखें कैसी रसीली हैं ! इनकी मोली मोली चितवन कैसी प्यारी है ! ! इसमें मिनिरी किसने मिठा दी है ! ! ! देखा न कैसी हंसती हैं, कैसी अठखेलियां करती हैं ! चाल इनकी कैसी मतवाली हैं ? यह जी में क्यों पैड़ी जाती हैं ? बरबस प्राण को क्यों अपनाये लेती हैं ? क्या इनकी सुन्दरता ही यह सब नहीं करती ? ओहो ! क्या कहना है ! कैसी सुन्दरता है ! ! मन क्यों हाथों से निकला जाता है ? इस लिये कि उस की सुन्दरता में जादू है ! ! ! पर घड़ी भर पीछे यह क्या गत है ? इनको इतना उदास क्यों देखते हैं ! यह आंसू क्यों बहा रही हैं ? क्या कोई कह सकता है ! जो आंखें ऐसी रसीली, ऐसी सुन्दर और ऐसी मतवाली हैं, उनको रोने धोने और आंसू बहाने का रोग क्यों

लगा ? अभी कुछ घड़ी पहले हमने जिस स्त्री को अपने लड़के लड़की के साथ मीठी मीठी बातों से जी बहलाते देखा था, हंसती बोलती पाया था, वह इस घड़ी क्यों रो कलप रही है, क्यों सर पर हाथों को मार रही है ? क्या इसका भेद बतानेवाला कोई है ? नहीं कहा जा सकता ! जग में सभी ढंग के लोग हैं ! कोई बतलानेवाला भी होगा ! पर मैं समझना हूँ जहां सुख है वहां दुख भी है, जहां अच्छा है वहां बुरा है, जहां फूस है, वहां कांटा है ।

जाड़े का दिन है, शीत से कलेजा कांप रहा है, घने बादल आकाश में छुये हुए हैं । पवन चल रही है, जो फटा कपड़ा पास है, उससे देह तक नहीं ढंक सकती, सूरज की किरणों का ही सहारा है, पर बादल कैसे हटे ? घबड़ाहट बढ़ो है । इतने में आकाश में एक ओर बादल कुछ हटते दिखलाई पड़े, थोड़ा सा आकाश खुल गया, इसी पथ से सूरज की किरणें आ कर कुछ कुछ कांसे हुए कलेजे को ढाढ़स बंधाने लगी ! जी थोड़ा ठिकाने हुआ, धीरे धीरे यह भरोसा भी हुआ—अब बादल हटते जायेंगे । जग के सब कामों की यही गत है—जहां उलझन ही उलझन देखने में आती है—वहां थोड़ा सा सुनभाव ही बहुत गिना जाता है—जो बातें बहुत ही गूढ़ हैं, उनका थोड़ा सा ओर छोर मिल जाना ही जी का बहुत कुछ बोध करता है । परमेश्वर की करतूत के गूढ़ भेदों का समझना सहज नहीं—किस घड़ी कौन काम किस लिये होता है, और उसका छिपा हुआ भेद क्या है, उसको हम लोग क्या जान सकते हैं ? पर ऐसे बोलें उस ठौर

जो बातें देखने सुनने में आती हैं वन्हींमें से किसी एकको हम लोग उस काम का कारण समझ लेते हैं, और उस घड़ी इतने समझ लेने ही को बहुत जानते हैं । वह स्त्री जिसकी चर्चा हमने ऊपर की है, इस घड़ी क्यों रो रहा है ? सर पर क्यों हाथों को मार रही है ? हंसते ही हंसते उसकी यह क्या गत हो गई ? हम इसका गूढ़ भेद क्या बतला सकते हैं, पर जो बात देख सुन रहे हैं उसको बतलावेंगे ।

एक खाट बिछी हुई है, उसपर वही लड़का जिसको हमने आंगन में पलंग पर लेटे हुए पोथी पढ़ते देखा था, अचेत पड़ा हुआ है, सर से लहू बह रहा है, मुँह पीला पड़ गया है । पास हा पांच चार स्त्रियाँ भी बैठी हैं । इनमें एक लड़के की मा, दूसरी उसकी बहन और तीसरी गजरेवाली है । दो उसी पड़ोस की और हैं । लड़के की मा उसको अचेत और उसके सर से लहू बहता देख कर ही रो पीट रहा है । और उसकी बहन भी बहुत घबराई हुई है, पर इन दोनों को वही गजरेवाली समझा बुझा रही है । पड़ोस की दोनों स्त्रियों में से एक पानी छोड़ती है, और दूसरी लड़के के घाव को धो रही है । लड़के की मा का नाम पारबती, और बहन का नाम देवहूती है । गजरेवाली का नाम बासमती है, यह आप लोग जानते हैं । यह जाति की मालिन है ।

पारबती और देवहूती को बहुत घबराई हुई देख कर बासमती ने कहा, लहू का जाना रुकता नहीं, लड़का अचेत पड़ा है, बैदजी

आज घर नहीं हैं जो उनको बुला लाकर दिखलाऊं, और जो बात मैं कहती हूं उसको तुम मानती नहीं हो, फिर काम कैसे चलेगा ? मेरी बात मानो, नहीं तो मैं देखती हूं अनरथ हुआ चाहता है ।

पारबती । मेरे घर आज तक कोई ओम्हा नहीं आया, देवहूतो के बाप कहा करते, जिस घर में ओम्हा का पांव पड़ा, वह घर चौपट हुआ ! फिर मैं तेरी बात कैसे मानूं । घर हां ! जो कोई दूसरा ऐसा मिले, जो मुझ दुखिया को इस दुख में सहारा दे सके तो तू जा उसको लिवा ला, मैं तेरा बहुत निहोरा मानूंगी ।

बासमती । ओम्हा होने हो से क्या होता है, क्या सभी ओम्हा थोड़े ही बुरे होते हैं, फिर भले बुरे किसमें नहीं होते । मैंने कई एक ऐसे बैद और पण्डित भी देखे हैं, जिनका नाम लेते पाप लगता है, तो क्या इससे सभी बैद और पण्डित बुरे हो जावेंगे ? यह मैं मानता हूं, हरलाल जाति का कोहार है, और ओम्हा है । पर कोहार और ओम्हा होने ही से वह बुरा भी है, यह मैं कभी नहीं मान सकती । फिर हरलाल बैदई भी तो करता है, जब बड़े महाराज नहीं हैं, तो हरलाल को आप बैदई के लिए ही क्यों नहीं बुलातीं ? ओम्हा होने से क्या बैदई करने के लिए भी वह नहीं बुलाया जा सकता ?

पारबती । जिन लोगों में बहुत लोग बुरे होते हैं, जो उनमें दो चार अच्छे भी हों तो उनके बुरे होने हो का डर रहता है । और जिन लोगों में बहुत लोग अच्छे होते हैं उनमें जो दो चार बुरे भी हों तो इस बात की खटक जी में पहले नहीं होती । पंडित

और बैदों में बहुत लोग भले और अच्छे होते हैं, इससे उनमें जो कोई बुरा भी हो तो, पहले ही उससे जो नहीं खटकता । पर ओम्हा लोगों में जो लगभग सभी बुरे होते हैं, और उनमें जो बहुत करके नीच ही हुआ करते हैं, इससे पहले तो उनमें भलाई होती ही नहीं, और जो दो एक कोई भला हो भी तो, मन को उनकी परतीत नहीं होती । इस लिए उनसे सदा दूर ही रहना अच्छा है । पर इस घड़ी मैं बावली बनी हूँ मेरा कलेजा फट रहा है, मेरा बच्चा अचेत खाट पर पड़ा है, भाग की खुटाई से बैदजी घर नहीं हैं । इस लिए जा ! तू जा !! जो वह बैदर् भी करता है, तो उसीको लिवा ला । वह साठ बरस का वृद्ध भी है । पर मैं बड़े दुबिधे में पड़ी हूँ, जो मेरे पति का बचन नहीं है, बसको कर रही हूँ, कहीं ऐसा न हो, जो मुझे कुछ धोखा हो !!!

बासमती । मैं जाता हूँ, आप सब बातों में खटकनी बहुत हैं, पर ऐसा न चाहिये, कभी कभी हम लोगों की भी परतीत करनी चाहिये । आप देखेंगी, हरलाल आते ही बाबू को अच्छा कर देगा ।

वह कह कर वह वहां से चली गई ।

पांचवीं पंखड़ी ।

बासमती जाने के कुछही पीछे हरलाल को ले कर लौट आई । हरलाल छड़ी से टटोल टटोल कर पांव रखते हुए घर में आया । उसके आते ही पारबती और देवहूती वहां से हट कर कुछ आड़ में बैठ गईं, पर पड़ोस की दोनों स्त्रियां पहले ही बड़ी भांति लड़के की समझाल में लगी रहीं । हरलाल घर में आ कर सीधे लड़के की खाट के पास चला गया, पहले उसने उसकी नाड़ी देखी, पीछे सर और छाती को टटोला, नाक के छेदों के पास हाथ ले जा कर देखा, सांस कैसे चल रही है, आंखों को खेल कर उनके तारों को देखा, फिर सर में जो चोट आई थी, उसकी देख भाल की, और यह सब करके बहुत ही अतमना सा हो कर कहने लगा— बासमती ! तुम मुझको लिवा तो लाई हो, पर बाबू की दशा बहुत ही बिगड़ गई है, इनके सर से बहुत लहू निकल गया है, और अब तक निकल रहा है, इससे इनका प्राण इस घड़ी बड़ी जोखों में है । मैं क्या करूं क्या न करूं कुछ समझ में नहीं आता, जो चला जाऊं तो कलह सबको मुंह कैसे दिखाऊंगा, और जो जतन और उपाय करने लगूं तो जी को एक बड़ा भारी खटका होता है । पर दुर्गा माई जो करें, जो मैं आ गया तो बिना कुछ किये अब न जाऊंगा । हां ! यह बात मैं कहे देता हूं, मुझको बल भरोसा दुर्गा माता का है, जो कुछ मैं करूंगा उन्हींके भरोसे करूंगा, बिना उनका सुमिरन किये मैं कुछ नहीं कर सकता, विपत में उन्हींका नाम सहाय होता है, उन्हींका

नाम लेने से दुख कटता है, इस लिए अब मैं दुरगा माता का सुमिरन करूंगा, तू थोरा सा धूप, गूगुल ला दे ।

पारबती की इस घड़ी बुरी गति थी, बेटे की बुरी दशा देख सु । कर उसका कलेजा फट रहा था, आंखों से लहू गिर रहा था, रह रह कर जी यावला होना था । इसी बीच हरलाल ने अपना टंट घंट फैलाया । आया था बैदई करने, ओझाई करने पर उताऊ हुआ । यह देख कर पारबती के रोयें रोयें में आग लग गई, उसका जी जल भुन गया, पर वह करे तो क्या करे, चुपचाप सब कुछ सहना पड़ा । बिपत साम्हने खड़ी है, लड़का अचेत खाट पर पड़ा है, भांत भांत की बातें जी में उपज रहा हैं, न जाने कहां कहां जी जा रहा है, ऐसे बेले दुरगा माता का सुमिरन करने को कौन रोक सकता है । जी न होने पर भी पारबती ने घर में से धूप और गूगुल ला कर मालिन को दिया । धूप गूगुल को पाकर हरलाल के जी की अटक भी दूर हुई । उसने आग मंगा कर उसपर धूप और गूगुल जलाया, देखते ही देखते सारा घर महं कने लगा, और इसके थोड़े ही पीछे एक सुरीले गले का सुर चारों ओर फैल गया । हरलाल ने सुमिरन के बहाने गाया ।

गीत ।

दुरगा माता सीस नवाता हूं चरणों पर तेरे ।
मैं हूं दास तुम्हारा दया करो तुम ऊपर मेरे ॥
पाद नहीं पाता है कोई बकते हैं बहुतेरे ।
अपना भला देखता हूं जस गाकर सांझ सबेरे ॥
मुझमें नहिं ऐसी करनी है जो तू आवे नेरे ।
अपनी ओर देख कर माता तू मत आंखें फेरे ॥

कितने दुख कट जाते हैं जो तुम नेह से टेरे ।
 लिये तुम्हारा नाम बिपत भी रहती है नहिं घेरे ॥
 लाज आज जाती है जो हम करें उपाय घनेरे ।
 जन की पत रह जाती है पर तनिक तुम्हारे हेरे ॥
 यही आस मेरे जी में है क्या तू नहीं निबेरे ।
 जग में सब कुछ पाते हैं तेरे चरणों के चेरे ॥ १ ॥

सुमिरन करने पीछे हरलाल ने लड़के के सर और छातो पर हाथ फेरा, कुछ पढ़ कर दो तीन बार फूँका, फिर थोड़ी सी मत्तो हुई पत्तियां मालिन के हाथ में देकर कहा, इसको पीस कर अमी बाबू के घाव पर लगा दे । पत्तियां अमी पोसी जा रहो थीं, इसी बीच लड़के ने आंखें खोल दीं, और धीरे धीरे करवट भी ली । लड़के को आंखें खोलते और करवट लेते देख कर सब के जी में जी आया । पारबती के जी को भी बहुत कुछ ढाढ़स हुआ ।

हरलाल जब सुमिरन करने लगा, और उसका बहुत ही ऊँचा सुर घर में से निकल कर बाहर फैलने लगा उस घड़ी पारबती मर सी गई । उसने सोचा जो कोई इसको सुनता होगा, क्या कहता होगा, एक भलेमानस के घर में इननो रात गये यह कैसा गीत हो रहा है ? क्या यह विचार उसके जी को डबांडोल न करता होगा ? जो डबांडोल करता होगा, तो वह हम लोगों को क्या समझता होगा ? भले घर को बह बेटी तो कभी न समझता होगा, क्या इससे भी बढ़ कर और कोई दूसरी बात लाज की है ? क्या यह हमलोगों के लिए घरती में गड़ जाने की बात नहीं है ? पारबती जितना ही इन बातों को सोचने लगी, उतना ही दुखो होतो गई । उसका जो

कहता था अभी हरलाल को घर से बाहर निकाल दूं। पर एक तो उसका नेह के साथ दुरगा माता का सुमिरन कलेजे को पिघला रहा था, दूसरे लड़के की बुरी दशा ने उसको आपे में नहीं रक्खा था, इस लिये वह जैसा सोचती थी, कर नहीं सकती थी। जब सुमिरन के पूरा होते होते दो चार बार भाड़ फूंक करने ही से लड़के ने आंखें खोल दीं, उस बड़ी पारबती पहले को सब बातें भूल गई, और हरलाल की उसको बहुत कुछ परतीत हुई।

जब बासमती हरलाल को लेने गई, उस बेलें पड़ोस की दोनों स्त्रियों ने लड़के के सर को भली भाँत धो धाकर उसपर कपड़े की पट्टी बांध दी थीं। इस पट्टी को ठहर ठहर कर बे दोनों भिँगे रही थी। हरलाल ने आते ही यह सब देख लिया था, और नाक के छेद के पास हाथ ले जाकर और इसी भाँत की दूसरी जाँचों से उसने यह भी जान लिया था, लड़के को चेत अब हुआ ही चाहता है। वह अपना रंग जमाने के लिये ही आया था, इस लिये औषध से काम न निकाल कर उसने अपनी ओम्हाई को चमकाना चाहा, और ऐसा ही किया, पीछे उसने पत्तियां कुछ दी थीं, पर यह दिखलावा था, यह पत्तियां भी ऐसी ही वैसी थीं, कहने सुनने से लेता आया था, पर बात वही हुई, जो वह चाहता था, पत्तियां लगाई तक नहीं गईं, और लड़के ने आंखें खोल दीं। हरलाल की ओम्हाई ही पक्की रही।

लड़के को आंखें खोलते देख कर हरलाल की नस नस फड़क उठी, उसने समझा अब मैंने सबके ऊपर अपना रंग जमा लिया। इस लिये अब वह अपनी दूसरी चाल चला। सबके देखते ही देखते

वह हाथ पैर नचाने लगा, सर हिलाने लगा, आंखें निकाल लीं, मुंह को डरावना बना दिया और रह रह कर पेसा तड़पता था, जिसको सुनकर कलेजा बहल उठता । मालिन को छोड़ कर और जितनी स्त्रियां वहां थीं, उसका यह रंग दंग देख कर घबड़ा गईं । मालिन उसकी चाल को ताड़ गई । भीतर ही भीतर बहुत सुखी हुई । कुछ घड़ी अनजान सी बन कर उसका रंग दंग देखती रही, पीछे बोली—आप कौन हैं !

हरलाल । मैं काली हूं रे, काली, डीह के थानवाली काली !!!

बासमती ने धूप और गूगुल अथकी बार बहुत सा जला कर कहा, आप काली माता हैं ! कहां आई हो महारानी ?

हरलाल । कहां आई हूं रे, कहां आई हूं, इसी हरलालवा ने बुलाया है, इसीके मारे आई हूं, यह मुझे इसी भांत जहां तहां बुलाया करता है, यह नहीं जानता, इस लड़के ने अपनी करनी का बल पाया है, मैं इसे छोड़ थोड़े ही सकती हूं ।

बासमती आग पर धूप गिराते गिराते बोली—लड़का आप ही का है, इसे जो आप न छोड़ेंगे, तो हम लोग कैसे जीयेंगी । इस से जो चूक हुई होगी, अनजान में हुई होगी, और जो जान में भी कोई चूक हुई हो, तो उसको जो आप न छुमा करेंगी तो हम लोगों को दूसरा किसका भरोसा है ।

हरलाल । अनजान ! अनजान !! अनजान !!! अनजान रे अनजान ! जो अनजान में कोई बात हुई होती, तो मैं इतना बिगड़ती क्यों ? अब के छोकरे देवो देवता को कुछ समझते

ही नहीं । परसें यह जूता पहने मेरे मन्दिर के चौतरे पर बेधड़क चढ़ गया । तनिक भी न डरा । यह न समझा, कलयुग है तो क्या, अब भी देवी देवता में बहुत कुछ सकत है ।

बासमती । सकत है क्यों नहीं माता ! यह कौन कहता है सकत नहीं है !!! पर मैं पांव पड़ती हूं, नाक रगड़ती हूं, मट्या नवाती हूं, आप इस लड़के की चूक छुमा करें ! इस लड़के ने चूक तो बहुत बड़ी की है, पर आपको छुमा के आगे इसकी चूक कुछ नहीं है । जो आप इस लड़के की चूक छुमा न करेंगी, तो हम सब आपके मन्दिर में धरना दे कर मर जायेंगी, कभी न जीयेंगी ।

हरलाल । छुमा ! छुमा !! छुमा !!! ऐसे ही छुमा करें ?

बासमती । कैसे छुमा करोगी ? माता ! जो आप करने को कहेंगी, हमलोग जैसे होगा वह करेंगे, हमको छुमा मिलनी चाहिये ।

हरलाल । अच्छा, मैं छुमा कहूंगी, पर जो उपाय मैं बताती हूं, वह करना होगा, जो यह उपाय न होगा, तो मैं कभी इस लड़के को न छोड़ूंगी । मैंने हरलालबा के रोने गाने से इतना किया है, जो लड़के की आंखें खुब गईं, नहीं तो अब इसका आंखें न खुलतीं । मेरे ही कोप से आज यह उस भोड़ में उस टूटे हुए तारे पर गिरा, और इसका सर फूटा । जो मैं उपाय बताती हूं जो वह न होगा, तो यह कभी अच्छा न होगा । और जो उपाय होने लगेगा तो यह दिन दिन अच्छा होता जावेगा । क्यों, क्या कहती है ? बोल !!!

बासमती । मैं क्या कहूंगी माता ! जो आप कहेंगे वही होगा,

कभी कुछ दूसरा भी हो सकता है ! इस लड़के से बढ़ कर हम लोगों को क्या प्यारा है ?

हरलाल । अच्छा सुन रे सुन ! जो तुम करेगी तो मैं बताती हूँ । देवहूती के गुण पर मैं रीझी हुई हूँ, जो वह सौ अधखिला फूल अपने हाथों से तोड़ कर एक महीने तक मुझको नित चढ़ावे तब तो मैं उसके निहारे इस छाकरे को छोड़ूंगी, नहीं तो किसी भांत न मानूंगी । बोल ! क्या कहती है, ऐसा होगा ?

बासमतो । क्यों न होगा महारानी ! यह कौन बड़ा काम है, जो कोई बड़ा कठिन उपाय आप बतलातीं, तो इस लड़के के बचाने के लिये हम सब वह भी करतीं । इसमें क्या है ?

हरलाल । अच्छा, जो तू मेरी बात मानती है तो ते मैं जाती हूँ, पर जान ले जो मेरी बात न हुई तो छ ही सात दिन के भीतर यह लड़का ऐसी जोखों में पड़ेगा, जिससे फिर इसका छुटकारा न होगा ।

इतना कहने पीछे हरलाल का रङ्ग ढङ्ग फिर पहले का सा हो गया, न अब उसका हाथ पांव हिलता था, और न उसमें वह सब डरानेवाली बातें रह गई थीं । वह इस घड़ी बहुत ही धीरा पूरा जान पड़ता था, पर उसके मुंह पर थकावट रूखेपन के साथ झलक रही थी ।

पारवती हरलाल का अभुआना देख कर और उसकी बातें सुन कर बड़े भ्रम में पड़ गई, पहले हरलाल के ऊपर जो उसका विचार था, उसके सुमिरन का ढङ्ग देख कर और लड़के को कुछ समझता और चेत में आया पाकर, अब वह और भांत का हो गया

था । अब वह हरलाल को पाखण्डी न समझ कर भलामानस समझने लगी थी । इस लिये उसने उसकी बातों को धोखाधड़ी की बात न समझ कर निरी सच्ची बात समझा, और अपने लड़के की करनी पर बहुत दुखी हुई । पर सबसे भ्रमट की बात उसके लिये सौ अधखिले फूलों से एक महीने तक देवी की पूजा हुई । वह मन ही मन इन सब बातों को सोच रही थी । इसी बीच हरलाल ने फिर थोड़ी सी और कोई पत्नी मालिन के हाथ में देकर कहा, अब मैं जाता हूं, तुम इस पत्नी को दो चार बार और बाबू के घाव पर रगड़वा कर लगवाना, माई चाहेगी तो वह इसीसे अच्छे हो जावेंगे, अब कोई दूसरी औषध न करना पड़ेगी । मेरा बड़ा भाग है जो मेरे हाथों बाबू का कुछ भला हुआ, पर आज मैं बड़े जोखों में पड़ गया, ऐसा अचानक माता कभी मेरे ऊपर नहीं आई । बासमती ! जो तू न समझालती तो न जानें आज क्या हो जाता, देखना उनकी भेंट पूजा की बात न भूलना । इतना कह कर वह चला गया, जब वह जाने लगा था पारवती ने उसको बासमती के हाथ कुछ दिया था ।

छठी पंखड़ी ।

भोर के सूरज की सुनहली किरणें धीरे धीरे आकाश में फैल रही हैं, पेड़ों की पत्तियों को सुनहला बना रही हैं, और पास के पोखरे के जल में धीरे धीरे आकर उतर रही हैं। चारों ओर किरणों का ही जमघटा है, छतों पर, मुड़ेरों पर किरण ही किरण हैं। कामिनी-मोहन अपनी फुलवारी में टहल रहा है, और छिटिकती हुई किरणों को यह लीला देख रहा है। पर अनमना है। चिड़ियां चहकती हैं, फूल महक रहे हैं, ठंडी ठंडी पवन चल रही है, पर उसका मन इनमें नहीं है; कहीं गया हुआ है। बड़ी भर दिन आया, फुलवारी में बासमती ने पांव रक्खा, धीरे धीरे कामिनीमोहन के पास आकर खड़ी हुई। देखते ही कामिनीमोहन ने कहा, क्या अभी सो कर उठा हो ?

बासमती। हां ! अभी सो कर उठी हूं !!! यह तो आप न पूछेंगे ! क्या रात जागते ही बीती ?

कामिनीमोहन। क्या सचमुच बासमती तुम आज राज भर जगी हो ? जान पड़ता है इसीसे तुम्हारी आंखें लाल हो रही हैं।

बासमती। नहीं तो क्या अभी सो कर उठी हूं, इससे आंख लाल हैं !

कामिनीमोहन। मैं तुमको छेड़ता नहीं, बासमती ! मैं भी यही कहता था, रात भर तुम जगी हो, उसीसे अब तक क्या सोती रहा हो ! अच्छा, इन बातों को जाने दो। कहे, रात क्या किया ?

बासमती । मैंने रात सब कुछ किया, आपकी सब अड़चनें दूर हो गईं । मुझको जो कुछ करना था मैं कर चुकी, अब देखूं आप क्या करते हैं ।

कामिनीमोहन । वह क्या बासमती ?

बासमती । क्या आपने देवकिशोर बाबू की बात नहीं सुनी ।

कामिनीमोहन । हां ! इतना तो सुना है, वह रात टूटे हुए तारे के ऊपर गिर पड़ा, उसका सर फूट गया ।

बासमती । सर क्या फूट गया, यह कहिये थोड़ी चोट आ गई थी, पर बड़े लोगों की बातें ही बड़ी होती हैं और वह सुकुमार भी बहुत हैं, इसीसे थोड़ा सा लहू निकलते ही अचेत हो गये, नहीं तो कोई बात नहीं थी । दूसरा कोई होता तो उँह भी नहीं करता ।

कामिनीमोहन । तो फिर मुझको इससे क्या ?

बासमती । क्यों ? इससे ही तो आपका सुभीता हुआ ? इस काम हाने तो आपके पथ के सब कांटों को दूर कर दिया ।

कामिनीमोहन । कैसे ?

बासमती । आप जानते हैं हरलाल कैसे हथकंडे का है, आपके काम के लिये मैंने उसको बहुत दिनों से गांठ रक्खा था, पर यह सोचती थी, जब तक वह किसी मांति पारबती ठकुराइन के घर में बांध न रखेगा, काम न निकलेगा । जब मैंने देवकिशोर बाबू के गिरने और सर में चोट लगने की बात सुनी, उसी घड़ी मुझको एक बात सूझी, मैं उसको पूरा करने के लिये चट घर से उठी, और हरलाल के पास पहुँची, उसको ठीक ठाक करके, लगे बांध देव-

किशोर बाबू के घर गई। भाग्य से बैद महाराज भी कलह कहीं गये हुए थे, इस लिये मैंने बातों में फाँस कर पारबती ठकुराइन को अपने रङ्ग में ढाल लिया, और उन्हींके कहने से हरलाल को उनके घर लिवा गई। मैं जब हरलाल को लेने जाती थी पथ में आपसे भी मिलती गई थी, पर उस घड़ी आपसे कुछ कहा नहीं था, यह आप जानते हैं। हरलाल ने वहाँ पहुँच कर सब कुछ कर दिया।

कामिनीमोहन। क्या कर दिया ! कहा भी तो ?

बासमती। हरलाल ने वहाँ पहुँच कर देवकिशोर बाबू के सर की चोट को भली भाँति देखा, देख कर जाना, बहुत थोड़ी चोट है, गीला कपड़ा बांध कर जो रह रह कर पानी उसपर दिया जाता है, यही उसको अच्छा कर देगा। पर दिखलाने को वह झूठ मूठ जतन करने लगा। एक दिन उसने काली माई के चौरे पर देवकिशोर बाबू को जूता पहने चढ़ते देखा था, यह बात उसको भूली न थी, इसलिये इसी गहाने से उसने एक ऐसी नई ढपज निकाली, जिससे आपका काम भली भाँति निकल आया।

कामिनीमोहन। वह कैसे ?

बासमती ने हरलाल के अभुमान को सारी बातें ज्यों की त्यों कामिनीमोहन से कह सुनाई। पीछे कहा। हरलाल के चले जानें पर पारबती ठकुराइन ने देवकिशोर के पास जाकर पूछा, बेटा, तुम कभी काली माई के चौरे पर जूता पहने चढ़ गये थे ? लड़के ने कहा—हां, अम्मा मुझसे एक दिन रह चुक हो गई थी। इतना सुनते ही ठकुराइन के रोंगटे खड़े हो गये, हरलाल की उनको बहुत कुछ परतीत हुई। वह कुछ घड़ी चुपचाप न जानें क्या सोचती

रहीं, फिर बोलीं—बासमती ! हलाल ने सौ अधखिले फूल चढ़ाने को तो कहा, पर यह न बतलाया, किसका फूल ! मैंने कहा, क्या यह भी बतलाने की बात है ! कोन नहीं जानता, कालीमाई को अड़्डुल का फूल ही प्यारा है; इस लिये सौ अड़्डुल का अधखिला फूल ही एक महीने तक चढ़ाना होगा । उन्होंने कहा—इतने फूल मिलेंगे कहां ! मैंने कहा, कामिनीमोहन बाबू की फुलवारी में कौन फूल नहीं है ? निन सौ नहीं पांच सौ अधखिले फूल अड़्डुल के वहां मिल सकते हैं । मेरी इन बातों को सुन कर ठकुराइन फिर कुछ घड़ी चुप रहीं, बहुत सोच विचार करके पीछे बोलीं, क्या और कहीं नहीं मिल सकते ? मैंने कहा—इस गांव में और कहां इतने फूल मिलेंगे ? उन्होंने कहा—अच्छा, वहाँ से फूल आवेंगे, पर कब फूल तोड़े जावें जो वह अधखिले मिलें । मैंने कहा—जो सूरज डूबते फूल उतार लिये जावें तो वह अधखिले ही रहेंगे, पर उस बेले देवहूती को वहां जाकर फूल तोड़ लाना चाहिये, नहीं तो रात में फूल तोड़ा जाता नहीं और दिन निकलने पर फिर वह फूले हुए ही मिलेंगे । ठकुराइन ने कहा, यही तो कठिनाई है, पर कक' क्या, समझ नहीं सकती हूं, जैसा मैं आन दुबिधे में पड़ी हूं, वैसा दुबिधे में कभी नहीं पड़ी । मैंने मन में कहा, बासमती फिर क्या ऐसा फंदा डालती है, जो कोई उससे बाहर निकल जावे । जो ऐसा ही हाता तो कामिनीमोहन बाबू मेरी इतनी आवभगत क्यों करते । पर इस मन की बात को मन ही में रख कर उनसे बोली, क्या आपको किसी बात का खटका है, मेरे रहते आपको किसी काम में कठिनाई नहीं हो

सकती, मैं आप आकर देवहूती को लिवा जाऊंगी, और उनसे फूल तुड़वा लाया करूंगी। क्या मुझसे एक महीने तक इतना काम भी न हो सकेगा ? उन्होंने कहा, क्यों नहीं बासमती ! तुम सब कुछ कर सकती हो, मुझको तुम्हारा बड़ा भरोसा है। अच्छा, मैं तुम्हारे ही ऊपर इस काम को छोड़ती हूँ, जैसे बने बनाओ, पर ऐसी बात न होवे जिससे फिर देवाकशोर को कुछ भेलना पड़े। मैंने कहा, आप इन बातों को न घबरावें, भगवान सब अच्छा करेगा। इसके पीछे यह बात ठीक हो गई, मैं देवहूती के साथ साथ रह कर फूल तुड़वा लाया करूंगी, कलह से यह काम होने लगेगा। मैंने जतन करके देवहूती को आपकी फुलवारी तक पहुँचा दिया। अब भागे आपकी बारा है, देखूँ आप कैसे उस अलबेला को लुभाते हैं, आकाश का चाँद घर में आया है, उसको बश में कर रखना आपका काम है, मैं यही बात पहले कहती थी।

कामिनीमोहन बासमती की बातें सुन कर फूला न समाता था, आज उसके जी में यह बात ठन गई, अब ले लिया है। हँसते हँसते बोला, क्यों न हो बासमती ! तुम्हारा ही काम है, तुमने बहुत कुछ किया जो कुछ मुझसे हो सकेगा मैं भी करूँगा, पर सब कुछ करने का बीड़ा तुम्हींने बठाया है, इस लिये सब कुछ तुम्हींको करना होगा।

बासमती। यह नहीं हो सकता, अब आपको भी कुछ करना होगा। पवन का काम मैं करूँगी, पर आग आपको लगानी पड़ेगी।

कामिनीमोहन । क्या उसको जला कर मिट्टी में थोड़े ही मिलाना है ?

बासमती । क्या यह भी मैं कहूंगी, तब आप जानेंगे ! पर यह बातें काम की नहीं हैं । मैं नेह की आग लगाने को कहती हूँ, जिस को पवन बन कर मैं सुलगाऊंगी !

कामिनीमोहन । क्या उसका कलेजा ऐसा है, जो नेह का आग मैं वहाँ लगा सकूंगा ?

बासमती । क्यों ? क्या वह लोहे और पत्थर से थोड़े ही बना है ? फिर आग लगानेवाले तो लोहे और पत्थर में भी आग लगाते हैं । ढङ्ग चाहिये ।

कामिनीमोहन । लोहे और पत्थर में आग लगाना, काम रखता है । मैं समझता हूँ, बासमती ! देवहूतो का कलेजा सचमुच लोहे पत्थर का है । उसमें आग लगाना कठिन है ।

बासमती । आपको बातें ऐसी हो होती हैं, चाहते हैं बहुत कुछ, करते कुछ नहीं । उसका कलेजा मकखन से भी बड़ कर पिघलनेवाला है, आप इस बात को नहीं जानते, मैं जानती हूँ ! अब मैं जाती हूँ, आप अपनी सी करिये, जो न बनेगा, उस को मैं तो ठीक कर ही दूंगी । यह कह कर बासमती वहाँ से चली गई ।

—:~*~:—

सातवीं पंखड़ी ।

चमकता हुआ सूरज पश्चिम और आकाश में धीरे धीरे डूब रहा है। धीरे ही धीरे उसका चमकीला उजला रङ्ग लाल हो रहा है। नीले आकाश में हलके लाल बादल चारों ओर छूट रहे हैं। और पहाड़ की ऊंची उजली चोटियों पर एक फीकी लाल जोत सी फैल गई है। जो घर की मुँहरों के ऊपर उठती हुई धूप को पकड़ कर किसीने लाल रङ्ग में रंग दिया है, तो पेड़ों की हरी हरी पत्तियों पर भी लाली की वह झलक है, जो देखने से काम रखती है। लाल फूलों का लाल रङ्ग ही अवसर पा कर चटकीला नहीं हो गया। पीले, उजले और नीले फूलों में भी ललाई की छिंट सी पड़ गई है। धरती की हरी हरी दुबों, नदी, तालाब, पाखरों की बठती हुई छोटी छोटी लहरों, बेल बूटों और झाड़ियों की गोद में छिपी हुई एक एक पत्तियों तक में ललाई अपना रङ्ग दिखला रही है। जान पड़ता है सारे जग पर एक हलकी लाल चांदनी सी तन गई है।

एक बहुत ही बड़ी और सुहावनी फुलवारी है। उसके एक ओर बहुत से अड़्डुल के पौधे लगे हुए हैं। ये सब पौधे जी खोल कर फूले हैं—हरी हरी पत्तियों में इन फूले हुए अनगिनत फूलों की बड़ी छटा है—जान पड़ता है चारों ओर ललाई का ऐसा समां देख कर ही इन फूलों पर इतनी फबन है। इन्हीं बहुत से फूलों हुए फूलों में कुछ फूल अर्धाखिले से हैं, इन पौधों के पास खड़ी एक अर्धेई स्त्री इन अर्धाखिले फूलों को उंगली से बताती जाती है,

और एक बहुत ही सुघर और लजीली लड़की अपने लाल लाल हाथों से धीरे धीरे इन फूलों को तोड़ रही है। इसका मुँह डूबते हुए सूरज की ओर है, जिस लाली ने सारी धरती को अपने रंग में डूबा कर चारों ओर एक अनूठी छटा फैला रखी है वही लाली इस खिली चमेली सी लड़की की देह की छबि को भी दूना करके दिखला रही है। इस भोली भाली लड़की के गोरे गोरे गालों पर इस घड़ी जो अनूठी और निराली फबन है, कहते नहीं बनती, इसकी सहज लाली दूनो तिगुनी हो गई है, जिसका देख कर जी का भी जी नहीं भरता। पर उसको बिना भंस्त देखना आंखों के भाग में बदा नहीं है, लड़की ने सर के कपड़े को कुछ आगे को खींच रखा है, यही कपड़ा जा भर कर उस छबि को देखने नहीं देता। जब पवन धीरे धीरे आ कर उस कपड़े को हटाती है, उस घड़ी इसके कांच से सुथरे गालों की अनाखी लाली आंखों में रस की सोत सी बहा देती है।

इन अड़बुल-फूल के पौधों के ठीक सामने पश्चिम और थोड़ी ही दूर पर एक बहुत ही ऊँची अटारी है। अटारी में पूर्व और तीन बड़ी बड़ी खिड़कियां हैं, इन्हीं खिड़कियों में से बीचवाली खिड़की पर कोई छिया हुआ बैठा है—और छिपे ही छिपे, डूबते हुए सूरज की, फूली हुई फुलवारी की, चारों ओर फैली हुई लाली की, और उस सुन्दर सजीली लड़की की अनूठी छटा देख रहा है। डूबते हुए सूरज, चारों ओर फैली लाली, और भांति भांति के फूलोंवाली फुलवारी के देखने से इसके जी में जो रस की एक छोट्टी सी लहर उठती है, और इससे जो सुख इसके होता है,

किसी भांति बतलाया जा सकता है । पर उस सुन्दर और छवीली लड़की के देखने से उसके गोरे गोरे गालों की बड़ी दुर्र अनूठी लाली पर, किसी भांति डोठ डालने से, जो एक रस का धारा सी उसके कलेजे में बह जाती है, उसका सुख न किसी भांति बतलाया जा सकता, न लिखा जा सकता है । वह इस धारा में अपने आपेको खोकर धीरे धीरे आग भी बह रहा है—और साथ ही अपने सुध बुध को भी लुपचाग बहा रहा है ।

जिस घड़ी हमने लड़की को फूल तोड़ते देखा था, वह पिछली बारी थी—जितना फूल उसको तोड़ना चाहिये था वह तोड़ चुकी—इस लिये अब वह घर की ओर चली, पीछे पीछे वह अधेड़ मालिन भी चली । सांझ का समय, चिड़ियां चारों ओर मीठे मीठे सुरों में गा रही थीं, भांति भांति के फूल फूल रहे थे, ठंडी ठंडी पवन धीरे धीरे चल रही थी, भीनी भीनी मधुं क सब ओर फैली थी, जी मत-वाला हो रहा था । साथ की अधेड़ स्त्री समय पर चूकनेवाली न थी । अपनी गिट्टी जमाने का अवसर देख कर बोली—देवहूती ! देखो कैसा सुहावना समय है ! कैसी निराली शोभा है ! पर सांझ क्यों इतनी सुहावनी है ? उसमें क्यों इतनी छटा है ? क्या तुम इसका बतला सकती हो ? सांझ का समय बहुत थोड़ा है—पर इस थोड़े समय में भी जितना प्यार और आदर उसका हो जाता है—और समय का होते देखने में नहीं आया । पर क्या यह गुण उसमें यों ही है ? नहीं, यों ही नहीं है ! वह अपने समय को जैसा चाहिये उसी भांति काम में लाती है—इसीसे वह इतने ही

समय में अपना बहुत कुछ नाम कर जातो है । देखो, वह आते ही चांद से गने मिलती है—पवन का कलेजा ठण्डा करती है—फूलों को खिला देती है—चिड़ियों को मोठा सुर सिखलाती है—पेड़ों को हरा भरा बनाती है—आकाश को तारों से सजाती है—लोगों की दिन भर की थकावट दूर करती—और चारों ओर चहल पहल को धूम सी मचा देती है । सच है, समय रहते ही सब कुछ हो सकता है, समय निकल जाने पर कुछ नहीं होता । पर देखती हूं, देवहूती तुम्हारा समय योंही निकला जाता है, तुम्हारा यह रूप ! यह जोवन !! और कोई प्यार करनेवाला नहीं ! जैसा चाहिये वैसा आदर नहीं !!! क्या इससे बढ़ कर कोई और दुख की बात हो सकता है ?

देवहूती ने ठण्डी सांस भरी, उसकी आंखों में पानी आया, पर कुछ बेली नहीं, जो बहलाने के लिये इधर उधर देखने लगी । इसी समय सामने फूले हुए कई पेड़ों की भुरमुट्ट में एक बहुत ही सजीला जवान दिखलाई पड़ा । यह धीरे धीरे उन पेड़ों में टहल रहा था, और सांझ की धारे बहनेवाली पवन उसके सुनडुले दुपट्टे को इधर उधर उड़ा रही थी । इस जवान की दुहरी गठीली देह पर सुघर्राई फिसली पड़ती थी, गोरा रंग तपे सोने को लजाना था । बड़ी बड़ी रसोली आंखें जो को बेचैन करती थीं और ऊंचे चौड़े माथे पर टेढ़े टेढ़े बाल कुछ ऐसे अनूठेपन के साथ बिखरे थे, जिनके लिये आंखों को उद्भक्त में डाल देना कोई बड़ी बात न था । भौंहें घनी और आंखों के ऊपर ठीक धनुष की भांति बनी थीं; पर रह रह कर न जाने क्यों सिकुड़ती बहुत थीं । मुंह

का डौल बहुत ही अच्छा, बहुत ही अनूठा और बहुत ही लुभावना था, पर उसकी निखरी गोलाई में लाली के साथ पीलापन भी झलक रहा था। गन्ना गोल, छातो चौड़े और ऊंची, बाँहें भरी और लंबी, और उंगलियाँ बहुत ही सुडौल थीं। देह की गठन बनावट, लुनाई, सभी बाँकी और अनूठी थीं। देह के कपड़े हाथों की अंगूठियाँ, पाँव के जूते, सभी अनमोल और सुहावने थे। इस पर जो पेड़ों से उसके ऊपर फूलों की वर्षा हो रही थी समा बिखलाता थी। देवहूती को आंख जिस घड़ी उसके ऊपर पड़ी वह सब भूल गई, सुन्न सुन्न खो सी गई। पर थोड़े ही वेर में काया पलट हो गया। जिस घड़ी उसकी आंख इसकी और फिरी और चार आंखें हुईं, देवहूती चेत में आ गई। और आंखाँ को न चा कर लिया।

वह साथ की स्त्री जो बासमती छोड़ दूसरी नहीं है, यह सब देख कर मन ही मन फूल उठी, उस सजीले जवान का जी भी अघाखेली कली की भाँति खिल उठा, दोनोंने समझा रंग जैसा चाहिए वैसा जन गया। पर इस घड़ी देवहूती के जी को क्या दशा था, इसकी छान बिन ठीक ठीक न हो सकी। धीरे २ सुरज डूबा, और धीरे ही धीरे देवहूती बासमती के साथ फुलवारी से बाहर होकर घर आयी। पर उसका जी न जानें कैसा कर रहा है।

यह सजीला जवान कामिनोमोहन है, वह तो आप लोग जान ही गये होंगे। अठारो पर खिड़की में बैठा हुआ यही देवहूती की छटा देख रहा था—और उसकी छटा देख कर जो उस

पर बीतो आप लोगों से छिपा नहीं है । पर वहां बैठे बैठे देवहूती पर अपना बान न चला सका, इसी लिए जब देवहूती फूल तोड़ कर चली, तो वह भी चट कोठे से उतर कर पेड़ों की मुरमुट में आया, और टहलने लगा । यहां कुछ उसके मन की सी हो गयी, यह आप लोग जानते हैं ।



आठवां पंखड़ी ।

फूल तोड़ने के लिए देवहूती नित्य जाती, नित्य उसका जी-कामिनामोहन की ओर खींचने के लिए बासमती उपाय करती । कामिनीमोहन भी उसको अपनाने के लिए कोई जतन उठा न रखता, बनाव सिंगार, सज धज सबको काम में लाता । इस पर पेड़ों से लपटी फूली हुई धूलें, समय का सुहावनापन, हरीहरी डालियां, लहलही लताएं, छिपे छिपे अपना काम अलग करतीं । देवहूती लहू मांस से ही बनी है, जी उसको भी है, आंखें वह भी रखती है, कहां तक वह इन फंदों से बच सकती । धीरे धीरे उसका जी न जाने कैसा करने लगा, अनजान में ही उसके कलेजे में न जाने कैसी एककसक सी होने लगी । पर उसके जी में भीतर ही भीतर ये सब बातें ऐसा चुपचाप और ऐसा छिपे छिपे होने लगीं जो बासमती की ऐसी चतुर स्त्री को भी उलझन में डाल रही थीं ।

फूल तोड़ते चौबास दिन हो गये । इतने दिनों में काम कुछ न निकला, यह बात बासमती के जी में आठ पहर खटकने लगी । कामीमोहन भी बेचैन हो चला था, इसलिए वह भी कभी कभी बासमती को जली कटी सुनाता, इससे बासमती और घबरायी । आज वह चुपचाप देवहूती के घर आई, और सीधे उसकी कोठरी में चली गयी । वहां उसने देवहूती को सोया पाया, फिर क्या था, चटपट उसने अपना काम पूरा किया और वहां से चलती हुई ।

बारबती ने बासमती को आते जाते देख लिया था । बासमती क्यों आयी ? और क्यों लगे पाँव चली गयी ? इस बात का उसको बड़ा खटक़ा हुआ । वह कई दिनों से देवहूती का रंग ढंग देख रही थी, पर कोई बात जी में लाती न थी । क्यों जी में लाती नहीं थी ? इसके लिए इस घड़ी मैं इतना ही कहता हूँ । उसके जी में कोई खटक़ नहीं थी—पर बासमती की आज की चाल ने उसको चौंका दिया । वह सोचने लगी, हो न हो कोई बात है । बासमती घर की मालिन है—उसके लिए कोई रोक नहीं—वह बड़े अटक़ देवहूती के पास आ जा सकती है—मैंने कभी उसको देवहूती के पास उठने बैठने से नहीं रोका । फिर आज वह मेरी आंख बचा कर क्यों उसके पास गयी ? और क्यों बिना मुझसे कुछ कहे तुने यहां से चुपचाप चली गयी ? ये बातें ऐसी हैं जिस से पाया जाता है, उसके मन में कोई चोरी है ! चोर का जी आधा होता है, वह साह का सामना नहीं कर सकता । अपने मन की चोरी ही से वह इस घड़ी अपना मुंह मुझको न दिखला सकी । जिस काम को करने के लिए इस घड़ी वह यहां आयी थी, उस काम को करके वह मेरी ओर से बुरी थी, इसीसे मेरे सामने आने का बल उसमें नहीं था । नहीं तो मेरे जी में तो कोई बात न थी । जो बुरा काम करता है, वह बस भर छिपने का पथ भी ढूँढ़ता है ।

फिर सोचने लगी—देवहूती का रंग ढंग भी तो इन दिनों कुछ और हो गया है ! वह इतनी अनमनी क्यों रहती है ? मैं इन बातों पर डीठ नहीं डालती थी, समझती थी लड़की है, कोई बात

हांगी। पर यह कोई ऐसी वैसी बात नहीं है, कोई गहरी बात जान पड़ती है। नहीं तो, देवहूती को किस बात का दुख है? जो चाहती है, खाती है। जो चाहती है, पहनती है। मैं उसका मुंह देखती ही रहती हूँ। एक भाई है, वह भी कभी उसको आधी बात नहीं कहता, फिर वह इतनी अनमनी क्यों? हां, यह मैं कह सकती हूँ वह सयानी हो गयी है! उसके दूसरे दिन हैं! पर सयानी वह आज तो नहीं हुई है—एक बरस से भी ऊपर हो गया। जब इतना दिन हो गया—और हंसी खेल ही मैं वह लगी रही, तो इधर दस पांच दिन से—सयानी होने ही से वह अनमनी है - यह बात जी मैं नहीं समझती। फिर पड़ोस में नन्दकुमार, कामिनीकिशोर, नन्दकिशोर, देवमोहन, कामिनीमोहन सभी लड़के हैं - बात चलने पर देवहूती जैसे नन्दकुमार, नन्दकिशोर और देवमोहन का नाम लेती है—वैसा बेअटक कामिनीमोहन का नाम क्यों नहीं लेती? फिर मौसरे भाई कामिनीकिशोर को जब वह पुकारती है, तो क्या कारण है जो कामिनीमोहन का नाम उसके मुंह से निकल जाता है? और जो निकल जाता है, तो फिर अपने आप वह लजा क्यों जाती है? कोई टोकता भी तो नहीं। जब घर में कभी कोई बात कामिनीमोहन की उठती है, और देवहूती वहां बैठी रहती है—तो क्या कारण है जो वह इधर उधर करने लगती है? क्यों वह वहां से उठ जाना चाहती है? क्यों उसकी बातें सुनने में उसको लाज लगती है? कामिनीमोहन का साथ बहुत दिनों से हमलों का है, ऐसे ही सदा उसकी बातें घर में होती आयी हैं, पर पहले देवहूती की

ऐसी दशा तो कभी नहीं देखी गयी ! ! फिर थोड़े दिनों से उस के जी का ढंग ऐसा क्यों हो गया ?

अबकी बार पारबती का मुंह गंभीर हो गया, वह फिर सोचने लगी—देवहूती का ढंग था, वह चार लड़कियों को लेकर सदा खेला करती, किसीको सर गूँथना, किसीको बेलबूटे बनाना, किसीको गुड़िया बनाना सिखलाती—किसीको माला गूँथना, किसीको फूल के गहने बनाना, किसीको पोत पिराना बतलाती। किसीको छेड़ती—किसीको प्यार करती। पर आज कल ये सब बातें उसकी छूट सी गयी हैं—अकेले रहना उसको अच्छा लगता है—कोठे पर, कभी कभी अपनी कोठरी में चुपचाप बैठी न जानें वह क्या सोचा करतो है। दो चार दिन से तो उसको यह गत है—पास ही बैठ रहती है—और पुकारने पर कभी २ बोलती भी नहीं। सच्ची बात यह है—उसका जी किसी और खिंचा हुआ है—जब वहां से हटे तब तो दूसरी और लगे—किस और उसका जी खिंचा है—अब यह समझने को नहीं है—सब बात भली भांति समझ में आ गयी। पर इसमें चूक किसकी है ? हमारी ! जो अपने पति की बात नहीं मानती, उसका भला कभी नहीं होता। पति ने कहा था, जिस घर में ओम्हा का पांव पड़ा, वही घर चौपट हुआ। फिर मैं क्यों उनकी बात भूल गयी, क्यों अपने घर में ओम्हा को बुलाया, जो बुलाया, तो अब भुगतेंगे कौन ?

पारबती ने धीरे धीरे सब समझा, कुछ घबरायी, पीछे सम्हल गयी, सोचा घबरा कर क्या होगा, यह घबराने का समय नहीं है,

जैसा रंग ढंग देखने में आता है, उससे बात अभी बहुत बिगड़ी नहीं पायी जाती, अभी बिगड़ने के लच्छन ही देखे जाते हैं, इस लिए घबराने से बिगड़ती हुई बात के बनाने का जतन करना अच्छा है । पारबती ने सोच कर ठीक किया, चाहे जो हो अब, आज से देवहूती को फूल तोड़ने के लिए न जाने दूंगी, इतना करने ही से सब भंभट दूर होगा । स्त्री कितना हू जीवट करे, पर देवी देवता की बातों में उसका जीवट काम नहीं करता । देवकिशोर अब तक भली भांति अच्छा भी नहीं हुआ था, इस लिए ठीक करने को उसने ठीक तो किया, पर थोड़े ही पीछे उसका जी फिर चंचल हो गया, उसने सोचा, देवी की पूजा को अधूरा छोड़ना ठीक नहीं; जैसे हो छः दिन इस काम को और करना होगा । तो क्या बासमती भी पहले की भांति साथ रहेगी ? अब उसके जी में यह बात उठी । उसने सोच कर ठीक किया, हां ! बासमती भी साथ रहेगी, जो देखने में हित बनी है, उससे बिगाड़ क्यों किया जाय ! न जाने वह क्या सोचे, और क्या करे, यह समय उससे बिगाड़ करने का नहीं है । फिर सुधार क्या हुआ, वेही सब बातें तो हुईं—अब यह विचार उसको सताने लगा । पर इस घड़ी सर उसका चकरा रहा था, और जो अड़चनें सुधार में आन पड़ी थीं, वे सहज न थीं, इस लिए विचार के लिए दूसरा समय ठीक करके वह घर के दूसरे काम में लग गयी ।

—०—

नवीं पंखड़ी ।

कहा जाता है, दिन फल अपने हाथ नहीं, करम का लिखा हुआ अमिट है, हम अपने बस भर कोई बात उठा नहीं रखते, पर होता वही है, जो होना है, जतन उपाय व्योत सब ठीक है—पर उस खेलाड़ी के आगे किसीकी नहीं चलती, चुटकी बजाते ही वह सब कुछ करता है और पलक मारते ही सबको बिगाड़ कर रख देता है। हम मिट्टी के पुतले क्या हैं, जो उस की बातों में हाथ डालें। यह सूच है, यहां कौन जीभ हिला सकता है। पर हम यह कहेंगे—ये बातें उन्हींके लिए हैं—जो सचमुच जी से ऐसा मानते हैं—उन लोगों के लिए नहीं है, जिनके भीतर कुछ और बाहर कुछ और, जहां बस चलता है कोई काम बन जाता है, वहां तो सब करतूत उनकी है। और जहां बस नहीं चलता, काम बिगड़ने लगता है वहां सब होनहार करती है। ये दुरंगी बातें ठीक नहीं, पक्का एक ही रंग होता है। एक ही समय में दो नाव पर चढ़ने में बहुत कुछ डर रहता है—पार एक ही नाव करती है। जिसको धरती पर रह कर बहुत सा काम करना है, घरबारी बनना है, उस को जतन, व्योत उपाय का सहारा न छोड़ना चाहिए। उस खेलाड़ी को सब करने योग्य कामों में अपना सहाई समझ कर जो जतन व्योत और उपाय करता है, वही जग में कुछ कर पाता है। जो ऐसा नहीं कर सकता वह पास की पूंजी भा गंवा देता है !

हमारे हरमोहन पांडे इसी ढंग के लोग हैं—होनहार के भरोसे बाप का कमाया लाखों रुपया उड़ा चुके हैं। बीसों गांव पास थे, पर एक एक करके सब बिक चुके हैं। अब तक रहने का घर बचा था। आज उससे भी हाथ धोना चाहते हैं। बाहर बोली हो रही है, पर करम ठोक कर आप भीतर पलंग पर पड़े हैं। उनकी यह गत देख कर उनकी सीधी सच्ची घरनी उनके पास आयी। प्यार के साथ पास बैठ गयी। दोनोंमें इस भांत बात चीत होने लगी।

घरनी। घर बिक रहा है—बाहर बोली हो रही है, क्या आप उनको सुनते हैं ?

हरमोहन। सुनता हूं—जो भाग में लिखा है, होगा।

घरनी। मैं यह नहीं कहती, मैं यह कहती हूं—थोड़ी ही बेर में यह घर छोड़ना होगा—उस घड़ी हम लोग क्या करेंगे, कहां रहेंगे ?

हरमोहन। इस घर के पास जो हमारा खंडहर है, उसमें चल कर रहेंगे। भाग्य में तो खंडहर लिखा है, घर रहने को कहां मिलेगा ?

घरनी। खंडहर में दिन कैसे बीतेगा ? मेरा मुंह आज तक किसी पराये ने नहीं देखा, खंडहर में लाज क्योंकर रहेगी ?

हरमोहन। भगवान जिसकी लाज नहीं रखना चाहते, उसकी लाज कौन रखे ?

घरनी। अच्छा, मैं कुछ कहूं ? आप मानेंगे ?

हरमोहन । कहे, क्या कहती हो ?

घरनी । बंसनगर में मेरी बहिन रहती है, यह आप जानते हैं । जैसी भलमनसाहत उसमें है, वैसे हो देवता हमारे बहनोई भी हैं, यह बात भी आपसे छिपी नहीं है । इनके पास दो घर है—एकमें वह आप रहते हैं, एक यों ही पड़ा है । मेरी बहन ने हम लोगों का दुख सुना है—कुछ दिन हुए उसने कहला भेजा था—जो घर भी बिक जाय तो ये यहां आकर रहें । हमलोगों का अब यहां क्या रक्खा है—जो आप चाहें तो वहां चल सकते हैं । यहां से यहां अच्छी ही बीतेगा ।

हरमोहन । तुमने अच्छा कहा, चलो वहाँ चलें । हमारा सोलह सौ रुपया भी तो उनके यहां है ।

घरनी । रुपये की बात जाने दीजिये । दुख में उन लोगों ने हमलोगों को बहुत सम्हाला है । सोलह सौ का चौगीस जो दे चुके हैं ।

हरमोहन । अच्छा, जाने दो—हम रुपये की बात नहीं चलाते ।

इस बातचीत के दूसरे दिन अपनी घरनी, एक लड़के और एक लड़की के साथ हरमोहन ने अपने जनम के गांव देवनगर को छोड़ा । चौबीस घंटे चलकर बंसनगर पहुँचे, और वहीं रहने लगे । यहां कहने सुनने का वह कुछ काम भी करने लगे और इसीसे उनका दिन बीतने लगा, पर इन लोगों का सब भार उन्हीं लोगों पर था, जिनके बुलाने से ये लोग वहां

गये थे । उन लोगोंने इनके लड़के के पढ़ने लिखने की ओर भी पूरा ध्यान रक्खा ।

धीरे धीरे तीन बरस बीत गये, चौथे बरस इन लोगों ने एक ऐसी बात सुनी, जिससे इन लोगों का रहा सहा कलेजा और टूट गया । इन लोगों ने सुना इनका एक ही जमाई घरबार छोड़ कर किसी साधू के साथ कहीं चला गया, बहुत कुछ ढूँढ़ा गया, पर कहीं कुछ खोज न मिली ।

हरमोहन पांडे सीधे और सच्चे थे, अपने कामकाजियों और टहलुओं पर भरोसा बहुत रखते थे । आंख में शील इतनी थी, जो आजकल नहीं देखा जाता । जिसने आकर आंसू बहाकर कुछ मांगा, उसीने कुछ पाया । बिना कुछ लिखाये पढ़ाये सैकड़ों दे देते, जो कोई कुछ कहता, कहते जब उसको होगा देही जावेगा, ब्राह्मण का रुखा थोड़े ही मार लेगा । जो यहीं तक होता, बहुत बिगाड़ न होता ! हरमोहन में बड़ा भारी औगुन आलस था । आलस होने के कारण वह सब कामों में टाल टूल बहुत करते, कामकाजियों ने लाकर जो लेखा सामान रखा, उसीको सच माना, कभी यह भी न कहा, इतने छोटे काम में इतना रुपया कैसे लगाया, किसीने कभी कुछ कहा तो होनहार की दुहाई दे कर, भाग्य पर सब बातों का होना बतला कर उससे पीछा छुड़ाया । ऐसे लोगों का बेड़ा पार कब तक हो सकता है—इन सब बातों का बुरा फल हुआ, वह थोड़े ही दिनों में लुट गये । लोगों ने उनको सीधा पारर अपना घर भर लिया, और इधर कान पर जूँ तक न रेंगी । धीरे धीरे गांव घर सब

छोड़ना पड़ा । इन बातों को छोड़ हरमोहन में जितनी बातें थीं, बड़े काम की थीं, वह भूठ कभी नहीं कहते, छोटे बड़े सबसे प्यार से मिलते । पखंडियों से दूर भागते, और दीन दुखियों के तो मा बाप थे ।

ऐसे लोगों के लिए भी विपत है—विपत किसीको नहीं छोड़ती—जब आती है भलेही आती है । बापुरे हरमोहन का सब तो गया ही था, आज उसको अपने जमाई के लिए भी रोना पड़ा । जीना तो भारी होही रहा था, उसपर और रंग चढ़ गया । हरमोहन की स्त्री रुपया पैसा गहने कपड़े को कुछ नहीं समझती थी, वह हरमोहन का मुंह देख कर सब भूल जाती । इसीसे हरमोहन को विपत में भी बहुत कुछ सहारा रहता था । पर आज जो चोट हरमोहन को लगी है वही चोट दूनी हो कर उसकी स्त्री को लगी । इससे वह जहां पड़ी है वहीं विलख रही है, हरमोहन की सुध कौन ले । हरमोहन बहुत घबराये । कब किसके जी में कैसा उलट फेर होता है, इसको कोई क्या जान सकता है । आज भी हरमोहन को भाग्य और होनहार से काम लेना चाहिए था, पर बन नहीं पड़ा । वह घबराये हुए घर के बाहर निकले, और सीधी एक ओर चल खड़े हुए । गांव के बाहर एकने पूछा कहां जाते हो ? कहा, कहीं जाता नहीं । गांव के पूरब ओर एक वन था, उसीको दिखला कर कहा, इसी वन तक जाता हूँ । धीरे धीरे यह बात उनकी स्त्री के कानों तक पहुंची वह और घबरायी, लोग दौड़ाये, पर हरमोहन किसीको न मिले । एक एक करके दिन बीतने लगे, महीने हुए, दो बरस

बात गये, पर हरमोहन फिर न लौटे । लोगों ने उनको मराही समझा, क्योंकि न वह कहीं जा सकते थे, और न कुछ कर सकते थे । स्त्री का दिन अपने एक लड़के और एक लड़की के साथ बड़े दुख से बीतने लगा ।

यह स्त्री और हरमोहन कौन हैं ? यह तो आपलोग समझही गये होंगे । पर जो न समझे हों तो, मैं बतलाता हूँ । स्त्री पारवती है—लड़की देवहूती है—लड़का देवकिशोर है—और इन दोनोंका बाप हरमोहन है ।

हरमोहन को लोगों ने मरा समझा, हम क्या समझें ? जब पता नहीं लगा, तो हम और क्या समझेंगे, गांववालों का साथ म भो देते हैं ।



दसवीं पंखड़ी ।

चारों ओर आग बरस रही है—लू और लपट के [मारे मुंह निकालना दुभर है—सूरज बीच आकाश में खड़ा जलते अङ्गारे उगिल रहा है और चिलचिलाती धूप की चपेटों से पैंड़ तक का पिता पानी होता है। छुरों की भांत धूल के छोट्टे छोट्टे कण सब ओर छूट रहे हैं, धरती तत्ते तवे सी जल रही है—घर आगं हो रहे हैं और सब ओर एक पेसा सन्नाटा छाया हुआ है—जिससे जान पड़ता है—जेठ की दोपहर जग के सब जीवों को जला कर उनके साथ आप भी धूधू जल रही है। बवंडर उठते हैं, हा हा हा हा करती पछुवां बयार बड़े धूम से बह रही है।

देवहूती अपनी कोठरी में खाट पर लेटी है—लेटे ही लेटे न जाने क्या सोच रही है—कोठरी के किवाड़ लगे हैं—घर के दूसरे लोग अपनी अपनी ठौरों सोये हैं। आप लोगों ने अभी एक जेठ की दोपहर देखी है—ठीक वही गत देवहूती के जी की है। यहां भी लू लपट है, बवंडर है, जलता सूरज है, चिलचिलाती धूप है, कलेजे को तत्ता तवा, आवां जो कहिये सो सब ठीक है। देवहूती के हाथ में एक चीठी है, वह उस चीठी को पढ़ती है। पढ़ते ही उसके कलेजे में आग सी बलने लगती है—वह घबराती है, और उसको समेट कर रख देना चाहती है। पर फिर भी चैन नहीं पड़ता, न जाने कैसा एक बवंडर सा भीतर ही भीतर उठने लगता है—इस लिए वह उसको फिर खोलती है, फिर पढ़ती है और फिर पहले ही की

भांत अधोर होती है । कई बेर वह ऐसा कर चुकी है । अब की बेर उसने फिर उस चीठी को निकाला और पढ़ने लगी । चीठी यह थी ।

चीठी ।

बातें अपनी तुमैं सुनाते हैं ।
 कुछ किसी ढब से कहने आते हैं ॥
 जब से देखा है चांद सा मुखड़ा ।
 हम हुए तेरे ही दिखाते हैं ॥
 दिन कटा तो न रात कटती है ।
 हम घड़ी भर न चैन पाते हैं ॥
 भूल कर भी कहीं नहीं लगता ।
 अपने जी को जो हम लगाते हैं ॥
 जलता रहता है जल नहीं जाता ।
 यों किसीका भी जी जल ते हैं ॥
 बेबसी में पड़े तड़पते हैं ।
 हम कुछ ऐसी ही चोट खाते हैं ॥
 जी हमारा जला ही करता है ।
 आंसू कितना ही हम बहाते हैं ॥
 मर मिटेंगे तुम्हें न भूलेंगे ।
 नेम अपना सभी निभाते हैं ॥
 हम मरेंगे तो क्या मिलेगा तुम्हें ।
 जी जों के भी यों सताते हैं ॥
 है उन्हींका यहां भला होता ।
 जो भला और का मनाते हैं ॥

आप ही हैं बुरे वं बन जाते ।

जो बुरा और को बनाते हैं ॥

हा तुम्हारा भला फलो फूलो ।

अब चले हम यहां से जाते हैं ॥ (कामिनीमोहन) ॥

पढ़ते पढ़ते उसका जी भर आया, फिर वही गत हुई । वह सोचने लगी, कामिनीमोहन से मैं कभी बोली भी नहीं—कभी आंख बठा कर भली भांति उसकी ओर देखा तक नहीं—न कभी कोई बात उससे कही—फिर वह इतना मुझको क्यों चाहता है ? जान पड़ता है मैं जो थोड़ा थोड़ा उसकी ओर खिंचने लगी हूँ—मेरा जी जो उससे बोलने के लिए ललचने लगा है—मैं जो बसको देख कर सुख पाने लगी हूँ—येही बातें ऐसी हैं, जो उसकी यह गत है, नहीं तो उसकी यह दशा क्यों होती ? कामिनीमोहन मेरे लिए जलता है, आंसू बहाता है, उसको न रात को नींद आती है, न दिन को चैन पड़ता है, बेवसी से तड़पता है, जी उसका उचट गया है, जीना भी भारी है, पर मैं उससे बोलती तक नहीं, दो चार मीठी बातों से भी उसका जी नहीं बहलाती—क्या इससे बढ़ कर भी कोई फटोरपन है ? बोलने में क्या रक्खा है ! जो मेरी दो बातों से किसीका भला होता है, तो इन दो बातों के कहने में क्या बुराई है ।

बुराई कहते ही उसका कलेजा धक से हो गया, वह कुछ लज्जा सी गयी, उसको ऐसा जान पड़ा जैसे उसने कोई चोरी की है, वह घबरा कर इधर उधर देखने लगी । पर जैसा

सन्नाटा उसकी कोठरी में पहले था, अब भी था, किसीके पांव की चाप भी कहीं सुनायी नहीं देती थी। उसने भली भांति आंख पैला कर चारों ओर देखा। साम्हने भीत पर एक छिप-कली दूसरी छिपकली का पीछा कर रही थी, कोने में मकड़ी जाले में फंसी हुई एक मक्खी को लम्बी लम्बी टांगों से खींच कर निगलना चाहती थी। एक तितली घर भर में चक्कर लगा रही थी। बुढ़िया का सून सर पर उड़ रहा था। और कहीं कुछ न था। वह कुछ समझली, और फिर सोचने लगी। नहीं नहीं, बुराई क्यों नहीं है ! मा कहती हैं भले घर की बहू बेटी का यह काम नहीं है, जो पराये पुरुष से बोले, पराये पुरुष की ओर आंख उठा कर देखना भी पाप है। फिर मैं क्यों ऐसा सोचती थी ! क्या मैं भले घर की बहू बेटी नहीं हूं ? हां ! मैं अभागिन हूं, मेरे दिन पतले हैं, तीन बरस हुआ मेरे पति साधू हो गये। उनका पता भी नहीं मिलता। अब इस जन्म में उनसे भेंट होने का भी भरोसा नहीं। जो भेंट भी हो तो किस काम का। क्या वह फिर घरबारी होंगे ? और ये बातें ऐसी हैं, जिससे सब ओर मुझको अन्धेरा ही दिखलाता है। पर क्या इस अन्धेरे में उंजाला करने के लिए मुझको अपनी मरजाद छोड़नी चाहिए ? कामिनो-मोहन मेरे लिए आंसू बहाता है, तड़पता है, घबड़ाता है, मरने पर उतारू है। पर क्यों मेरे लिए उसकी यह दशा है ? मैं उस की कौन ? वह हमारा कौन ? जो इसको जी की लगावट कह, तो भी सोचना चाहिए था, मैं क्या करता हूं, यों जी लगाते फिरना, केसा ? और जो ऐसा ही जी लगाना है, तो आंसू बहाना,

घबराना, तड़फना, पड़ेहोगा, इसके लिए क्या मैं कर सकती हूँ ? क्या दूसरा कर सकता है ? रहा उसका रूप ! अबकी बार देवहूती फिर घबराई, कामिनीमोहन को छुवि उसकी आंखों के सामने फिर गयी । उसकी बड़ी बड़ी आंखें, निराली चितवन, उसका हंसी-भरा मुंह, चांद सा मुखड़ा, अनूठा ढङ्ग, सहज अलबेलापन—सब एक एक करके उसके जों में जागे । वह बहुत ही धीरे धीरे, अपने जी से भी छिपे २, कहने लगी, कामिनीमोहन, तुम क्यों इतने सुन्दर हो ? अब वह बहुत अनमनी हो गयी, जी न होने पर भी कहने लगी—कामिनीमोहन, क्या तुम सचमुच मेरे लिए मरने पर उतारू हो ? क्या सचमुच मेरे बिना तुम्हारा दिन कटता है तो रात नहीं, और रात कटती है तो दिन नहीं ? क्या सचमुच मेरे लिए तड़पते हो, और आंसू बहाते हो ? ये कैसी बातें हैं, मैं समझ नहीं सकती हूँ । इन बातों के सोचते सोचते देवहूती के जी में बड़ा भारी उलट फेर हुआ । उसका सिर घूम गया और वह सन्नाटे में हो गयी ।

धीरे धीरे करताल बजने लगा, धीरे ही धीरे एक बहुत ही रसीला सुर चारों ओर फैल गया । इस रुझी दुपहरी में यह सुर एक खुली खिड़की से देवहूती की कोठरी में घुसा । फिर धीरे धीरे उसके कानों तक पहुँचा । कानों के पथ से यह और आगे बढ़ा । और कलेजे में पहुँच कर ऐसा रङ्ग लाया जिसमें देवहूती सर से पाँव तक रंग गयी । यह सुर एक भिखारी बाम्हन के बहुत ही सुरीले गले से निकलता था, जो बड़ी सिध्दाई के साथ उसके घर के पास खड़ा यह लावनी गा रहा था ।

लावनी—पति हंदा नारि के लिए न और गती है ।

नारी का देवता जग में एक पती है ।
 जे: पति की सेवा नेह साथ करती हैं ॥
 जो पति गुन की ही ओर सदा ढरती हैं ।
 पति के दुख में भी जो धीरज धरती हैं ॥
 सपने में भी जो पति से न लरती हैं ॥
 उनके ऐसा धरती पर कौन जती है ।
 नारी का देवता जग में एक पती है ॥
 जिसका मन पती पराये पर नहिं आया ।
 पर पति की जिसने छूई तक नहिं छाया ॥
 पति ही जिसकी आंखों में रहे समाया ।
 पति बिना जगत जिसको सूना दिखलाया ॥
 वह भली नारियों की सिर-धरी सती है ।
 नारी का देवता जग में एक पती है ॥
 जो लाल आंख पति को है कभी दिखाती ।
 जो छुल करके पति से है पाप कमाती ॥
 जो झूठमूठ पति से है बात बनाती ।
 जो कभी पराये पति को है पतियाती ॥
 उसकी परतीत न यहां वहां रहती है ।
 नारी का देवता जग में एक पती है ॥
 परपति से अहल्या ने जो नेह बढ़ाया ।
 पत्थर हो कर सब अपना भरम गंवाया ॥

सीता साबित्री ने जो पतिगुन गाया ।
 अब तक उनका जस सब जग में है छाया ॥
 पुजनी पतिसेवा ही से पारबती है ।
 नारी का देवता जग में एक पती है ॥१॥

देवहूती जिस रंग में रंगी थी, वह बहुत पक्का था, अब यह रंग फीका पड़नेवाला न था, लावनी सुन कर उसका जी ही ठिकाने न हुआ । उसको अपनी आज की बातों पर एक ऐसी खिसिया-हट और घबराहट हुई, जिससे अपने आप वह धरती में गड़ी जानी थी । कोठरी में कोई था ही नहीं, पर मारे लाज के उस का सर ऊपर न उठता था । वह सोचने लगी—मुझको क्या हो गया था, जो आज मैं ऐसी बुरी बातों में उलझी रही । मा कहती हैं, जितने पल पराये पुरुष की बातों में बुरे ढंग से कोई स्त्री बिताती है उस एक एक पल के लिए उसको भगवान के सामने कान पकड़ना पड़ता है । फिर क्यों मैंने ऐसा किया ? इन सब बातों को सोच कर जी ही जी मैं वह बहुत डरी, चीठी को फाड़ कर दूर फेंका, और कोठरी के किवाड़ों को खोल जी चहलाने के लिए बाहर निकल आयी । पर यहां भी वैसा ही सन्नाटा था, घर में कहीं कोई चाल न करता था । देवहूती फिर अपनी कोठरी में लौटी और किवाड़ लगा कर सो रही ।

—:~:—

ग्यारहवीं पंखड़ी ।

देवहूती और उसकी मौसी के घर के ठीक पीछे भीतों से घिरी हुई एक छोटी सी फुलवारी है। भांत भांत के फूल के पौधे इसमें लगे हुए हैं, चारों ओर बड़ी बड़ी क्यारियां हैं, एक एक क्यारी में एक एक फूल है—फुलवारी का समां बहुत ही निराला है। जो बेलें पर अलबेलापन फिसला जाता है, तो चमेली की निराली छुबि कलेजे में ठंडक लाती है। नेवारी ने ही आंखों की काई नहीं निवारी है—जूही के लिए भी फुलवारी में तू ही तू की धूम है। कुन्द मुंह खोले हंस रहा है, सेवती फूली नहीं समाती। हरसिंगार की आनबान, केवड़े की पेंठ, सुरजमुखी की टेक, केतकी का निराला जोबन, मोगरे की फबन, चंपे की चटक, मोतिये की अनूठी महक—सब एकसे एक बढ़कर हैं। इन फूल के पेड़ों से दूर जहां क्यारियां निबटती हैं—फूलों के छोटे छोटे पौधे थे—इनके पीछे हरे भरे बेलों के पेड़ अकड़े खड़े थे, जिनके लम्बे लम्बे पत्ते बयार लगने से धीरे धीरे हिल रहे थे। इन सबके पीछे फुलवारी की भीत थी, और उसके नीचे एक बहुत ही लम्बी चौड़ी खाई थी, खाई में जल भरा हुआ था, कोई और कमल खिले हुए थे।

इस फुलवारी के बाच में एक पक्का चैतरा है, इसपर पारबती और देवहूती बैठी हुई हैं। भार हो गया है, सुरज की सुनहली किरणों चारों ओर छिटक रही हैं। एक भौंरा एक फूल पर गूंज रहा है। गूंजता गूंजता ठीक फूल की सीध में आता

है, ठिठकता है, सिकुड़े हुए पावों को फैला कर फूल की ओर झुकता है। फिर ठिठकता है। और पहले की भांत चक्कर लगा कर गूँजने लगता है। कितने क्षण यों ही गूँजता रहा, फिर पंख समेट कर उसपर बैठ गया। कुछ बेर चुपचाप उसका रस पीता रहा। फिर अथरुंध्रे गले से भन्न भन्न करने लगा। इस के पीछे गूँजता हुआ उसपर से उड़ गया। अब दूसरे फूल के पास गया, पहले इसके भी चारों ओर गूँजता रहा, फिर उसी भांत इसपर बैठा, रस लिया, भन्नभन्न बोला, फिर गूँजता हुआ इसपर से भी उड़ गया। पारबती और देवहूती के देखते देखते वह बीसियों फूल पर गया, पर इसका मन न भरा। धीरे धीरे वह और फूलों पर भी जा कर गूँजता और रस लेता रहा। पर जिस फूल पर से एक बार वह रस ले कर उड़ा उसके पास फिर न गया।

पारबती ने कहा—देवहूती ! इस भौरे को देखती हो ? जो गत इसकी है, ठोक वही कुन्नाली पुरुषों की है। वह अपने रस के लिए इधर उधर चक्कर लगाते फिरते हैं। भोली भोली स्त्रियों को झूठी झूठी बातें बना कर ठगते हैं। जब काम निकल जाता है फिर उनकी ओर आंख उठा कर नहीं देखते।

मीठे सुर से हमी लोग नहीं रीझते। चिट्ठियां ही इसको सुन कर नहीं मतवाली बनतीं। कीड़े मकोड़े ही पर इसका रंग नहीं जमता। यह पेड़ों तक को मोह लेता है। जो अच्छा बजा मीठे सुर से बजता हो और पास ही कोई फूल का पौधा रक्खा हो, तो देखोगे उसकी पत्तियां सगबगा उठीं। उसका

हरा रंग और गहरा हो गया। फूल खिल गये और उसपर जोबन छा गया। इसी लिए भौंटा आते ही फूल पर नहीं बैठ जाता। कुछ घड़ी फूल के आस पास गूँजता है। या अपनी मीठी गूँज से उसके रस को उमाड़ता है। और तब उसपर रस लेने के लिए बैठता है।

एक छोटा सा कीड़ा जो अपना काम निकालने के लिए इतना कुछ कर सकता है—रस पाने के लिए जो वह ऐसी दूर की चाल चल सकता है, तो अपना काम निकालने के लिए मनुष्य क्या नहीं कर सकता। जिस स्त्री को वह फंसाना चाहता है, उसका सामना होने पर वह कहता है, तुम मेरी आँखों की पुतली हो, मेरे प्राणों की प्यारी हो, तुमको देख कर मेरे कलेजे में ठंडक होती है, जी में आनन्द की धारा बहती है। तुम्हींसे मेरा जीना है। तुम्हींसे मेरे अन्धेरे जी में उजाला है। जब तक आँखों के सामने रहती हो, समझता हूँ स्वर्ग में बैठा हूँ। आँखों से ओझल होते ही मुझपर धिजली सी टूट पड़ती है। जब उसके पास चीठी भेजता है, लिखता है—तुम्हारे बिना मेरा कलेजा जल रहा है। अनजान में ही न जाने कैसी एक पीर सी हो रही है। खाना पीना कुछ नहीं अच्छा लगता। दिन रात का कटना पड़ा हो गया है। चारों ओर सूना लगता है। जी को न जानें कैसा एक चोट सी लग गयी है, हम सच कहते हैं जो तुम न मिलोगी हम कभी न जीयेंगे। तुम्हारे बिना हमारा है कौन? हम जानते हैं तुम्हींको, नाम जपते हैं तुम्हारा ही, जग में जहाँ देखते हैं, तुम्हीं को देखते हैं। खाते पीते उठते बैठते

सुरत तुम्हारी हा रहती है । हम रहते हैं कहीं, पर मन हमारा तुम्हारे ही पास रहता है । उसकी सिखायी पढ़ायी कुदनियाँ आती हैं, तो कहती हैं—बह तुम्हारा कलेजा न जाने कैसा है, पत्थर भी पसीजता है । पर कितनाहू कहो, तुम नहीं मानतो हो । वह तुम्हारे लिए मर रहे हैं, पड़े पड़े तड़पते हैं, आठ आठ आँसू रोते हैं, खानापीना तक छूट गया है, पर तुम्हारे कान पर जूँ तक नहीं रेंगती । भला इतना भी किसीको सताते हैं ! जी की लगावट अपने हाथ नहीं, जो किसी भाँत तुमपर उनका जो आ गया, तो तुमको इतना कठोर न होना चाहिए । सबका सब दिन एक ही सा नहीं बीतता । क्या वह जोबन सदा ऐसा ही रहेगा ? फिर थोड़े दिनों के लिए इतना क्यों इतराती हो ? प्यासे ही को पानी पिलाया जाता है । भूखे ही को दो मूठी अन्न दिया जाता है । फिर न जानें, क्यों तुम इन बातों को नहीं समझती हो । इतना ही नहीं, गहने कपड़े रुपये पैसे की अलग लालच दी जाती है । कभी कभी हाथ जोड़ने और नाक रगड़ने से भी काम लिया जाता है । तलवे की धूल तक सर पर रख ली जाती है । पर ये सब धोखेधड़ीकी बातें हैं । झूल और कपट इन बातों में कूट कूट कर भरा रहता है । सचाई और भलमनसाहत की इनमें गंध तक नहीं होती ।

जिसकी हम भगवान के घर से हैं, जिसके लिए हम बनी हैं, जो हमारा जनम-संघाती है, आँखों की पुतली हम हैं तो उसीकी, प्राणों की प्यारी हैं तो उसीकी । हमारे लिए तड़प सकता है, आँसू बहा सकता है, खाना पीना छोड़ सकता है,

जी सकता है, मर सकता है तो वही । जो ये सब गुण उसमें न हों, तो भी जो कुछ है हमारा वही है । कहां तक वह हमारे काम न आवेगा । जो वह हमको छोड़ दे, जो ऐसा संयोग आन पड़े जिससे जन्म भर फिर उसके मिलने की आस न हो ; तो भी उसीके नाम के सहारे हमको अपना दिन काट देना चाहिए । ऐसा होने पर यहां वहां हमारी और जैजैकार होगी । दूसरा हमारा कौन है ? जिसकी परछाहीं पड़ते ही हमारा जनम बिगड़ता है, लोगों का मुंह दिखाना कठिन होता है, उससे हम को किस भलाई की आस हो सकती है ? गहने कपड़े, रुपये पैसे देह और हाथ के मैल हैं ! इनके पलटे क्या सतीपन ऐसा रतन मिट्टी में मिलाया जा सकता है !!! गहने कपड़े, रुपये पैसे फिर मिल सकते हैं, पर जब स्त्री का सतीपन एक बेर बिगड़ जाता है, तो वह इस जनम में फिर कभी हाथ नहीं आता । ऐसी दशा में क्या कोई भलेमानस स्त्री, क्या कोई अच्छे घर की बहू बेटी, गहने कपड़े, रुपये पैसे के लालच से अपना सतीपन गंवा सकती है ?

हमने देखा है बहुत सी भोलीभाली स्त्रियां कुचाली पुरुषों के फंदे में फँस गयी हैं और उनका जनम बिगड़ गया है । ऐसे पुरुषों के हाथ जो स्त्रियां पड़ीं अपने पति के साथ फिर उनका अच्छा बरताव नहीं होता । यह एक मोटी बात है । जब अच्छा बरताव न होगा, पति का भी वह नेह उस स्त्री में न रह जावेगा । जब ये बातें हुईं, फूट की नींव पड़ी । जब फूट की नींव पड़ी, घर नरक हुआ, फिर सुख से दिन नहीं कट सकता,

जिससे बढ़ कर दुख की बात कोई हो नहीं सकती । तो क्या थोड़े से सुख के लिए एक अनजान नीब, खोटे और कुचाली पुरुष के लिए अपना घर यों बिगाड़ देना चाहिए ? और जो कहीं कोई रोग लग गया, क्योंकि ऐसे पुरुष रोग से भरे रहते हैं, तो सब सत्यानाश हुआ । रोग ने देह में घर किया, लड़के-बालों से मुँह मोड़ना पड़ा । जो लड़के बाले हुए भी, तो पहले तो जीते नहीं, जो जीये तो वह भी जनम भर भीँखते रहे । कहीं किसी ने देख सुन लिया तो भी वही बात हुई । जग में नीचा अलग देखना पड़ता है और आँख तो किसीके सामने ऊँची हो ही नहीं सकती । ये तो यहां की बातें हुईं । वहां जो भगवान इस बुरे काम का पलटा देंगे उसकी सुरत करने से भी रोंगटे खड़े होते हैं ।

पारवती इतना कह कर चुप हो गयी और देवहूती के मुँह की ओर देखने लगी । उसने देखा, उसके मुखड़े पर एक अनूठी लल्लाई झलक रही है, आँखों से जोत फूट रही है और वह बहुत ही धीरी पूरी जान पड़ती है । पारवती यह देख कर मन ही मन बहुत सुखी हुई । इसके पीछे दोनों वहां से उठ कर चली गयीं ।

बारहवीं पंखड़ी ।

देवहूती मा के साथ फुलवारी से घर आयी। कुछ घड़ी घर का काम-काज करती रही। पीछे अपनी कोठी में आकर चुपचाप बैठी। इस घड़ी कुछ काम इसके पास नहीं था; पर मन के लिए कुछ काम चाहिए, मन बिना काम नहीं बैठ सकता। जब सुनसान रात में हम गहरी नींदों सोते हैं, जिस घड़ी हमारे हाथ पांव नाक कान आंख मुंह किसीके लिए कोई काम नहीं रहता, मन उस घड़ी भी अपनी रूई-सूत में उलझा रहता है। जो बातें हम दिन में देखते सुनते हैं, जो काम हम जागते में करते हैं, उन्हींको उलट पलट कर वह उस समय ऐसी मूर्ते गढ़ता है, ऐसे ऐसे दिखलावे दिखलाता है, जो सोच विचार में भी नहीं आ सकते। इसी का नाम सपना है। देवहूती का मन भी इस घड़ी एक काम में लगा। यह सोचने लगी—इस धरती पर भी कैसे कैसे लोग हैं! दूसरे को छलने के लिये कैसी कैसी बातें बनाते हैं! कामिनोमोहन की चीठी को पढ़ कर मैंने उसका एक एक अक्षर सच समझा था, पर आज उसका भंडा फूटा। मा की बातों को सुन कर मैंने समझा ऊपर से वह जैसा भला और अच्छा है भीतर से वह वैसा ही बुरा और टेढ़ा है। राम ऐसे लोगों से काम न डालें। वह इन सब बातों को सोच ही रही थी, इतने में फूल तोड़ने का समय हुआ जान कर बासमती वहां आयी और उदास मन से देवहूती के पास बैठ गयी। देवहूती ने देख कर पूछा, बासमती आज इतनी उदास क्यों हो?

बासमती । बेटो ! मैं उदास क्यों हूँ, मैं इसको क्या बताऊँ ? न जाने मेरा जी कैसा है, जो दूसरे का दुःख देख ही नहीं सकता । और न जाने तुमने मुझपर क्या कर दिया है, जो दिन रात तुम मेरे चित्त से उतरतो ही नहीं हो । जब मैं तुम्हारी बातें सोचती हूँ तभी मेरा जी भर आता है । इस घड़ी मैं यही सोच रही थी । इसीसे उदास जान पड़ती हूँ—नहीं, तो और कोई दूसरी बात तो नहीं है ।

देवहूती । क्यों ? है क्या ?

बासमती । क्या यह भी बताना होगा ? बेटो ! तू बड़ी भोली है । तेरा यह भोलापन ही तो मुझे और मार डालता है । न जाने तेरा दिन कैसे बीतेगा !

देवहूती । दिन तो सभी बीतते जाते हैं, क्या अब तक कोई नहीं बीता है ?

बासमती । बेटो, तुम इन बातों को क्या समझोगी ?—हम लोगों ने इसी में बाल पकाये हैं । समय का फेरफार देखा है । हमी लोग इन बातों को समझती हैं । यह हम भी जानती हैं—सभी दिन बीत जाते हैं । कोई बीतने से नहीं रहता । पर क्या जैसे तुम्हारा दिन बीत रहा है, इसको इसी भाँत बीतना चाहिए ? तुम्हारे येही दिन हंसने बोलने और रंगरलियाँ मनाने के हैं । तुम्हारे येही दिन बनाव सिंगार और सजधज के हैं । येही दिन हैं जो आँख किसी चाँद से मुखड़े की ऐसी मतवाली होती हैं, जो एक पल का ओढ़ भी नहीं सह सकतीं । कान किसी मिसरी से भी मीठी बातों के ऐसे प्यासे होते हैं, जो रात दिन

इसका रस पीने पर भी प्यास नहीं उतरती। येही दिन हैं, जो घर में स्वर्ग की बयार चलती है, हाथों में चांद आता है। यल में कमल फूलता है और पास ही कोकिल बोलता है; पर तुम्हारा दिन ऐसे कहां बीतता है? चमेली खिल गयी है, भंवर कहां है? तारों से सज कर रात की छबि दूनी हो गयी है, पर उसका मुंह डजला करनेवाला चांद कहां है? तुम्हारा जोबन बन का फूल हो रहा है, जो सुनसान बन में खिलता है और वहां कुम्हिला जाता है।

देवहूतो। तो क्या दूसरेका खंदुर देख कर तिलार फोड़ना होगा ?

देवहूतो ने इस बात को इस ढङ्ग से कहा, और कहने के समय उसके मुखड़े पर कुछ ऐसा तेज दिखलायी पड़ा, जिसको देख कर बासमती कांप उठी। वह देवहूती को मा से बहुत डरती, इस लिए चट बात पलट कर बोली—

बासमती। नहीं नहीं, बेटी ! मैं यह नहीं कहती। मैं यह कहती हूं जो आज बाबू साधू न हो गये होते, तो तुम्हारी यह दशा कहीं होती ! मैं तुम्हारा दुख देख कर ही रोती हूं। और क्या मैं कोई दूसरी बात कहती हूं ?

देवहूता। यह सच है, पर क्या तुमको ऐसी बातें मुझसे कहनी चाहिए, जिन बातों को सुन कर मेरे जी को गहरी चोट लगे ? तुमको तो ऐसी बातें करनी चाहिए, जिससे मैं अपना दुख कुछ घड़ी भूल जाऊं—मेरा जी कुछ बहले।

बासमती । बेटे ! मैं बहुत सीधी हूँ—काट छांट नहीं जानती । तुमको देख कर जो दुख मुझको होता है—वसको मैं तुमसे कह देती हूँ—पेट में नहीं रखतो ।

देवहूती । मैं यह नहीं कहती—पर वैसी बातों को सुन कर मेरे जी को बहुत बड़ी चोट लगती थी—इसी लिए मैंने तुमसे आज ये बातें कहीं—नहीं तो क्या काम था । देखो, बासमती ! इस धरती पर हँसने, बोलने, रङ्गरलियां मनाने, अच्छे गहने कपड़े पहनने, प्यार करने और कराने ही में सुख नहीं है, और बातों में भी सुख है । जिसका सुहाग बना है, जिसका जोड़ा नहीं बिछुड़ा है—जिसका पति आँखों में बसता है—कलेजे का हार है, वह रङ्गरलियां मनावे, हँसे, बोले, अच्छे गहने कपड़े पहने, तो उसके लिए सब सजता है—जो वह ऐसा न करे तभी बुरा है । जो जो बातें एक दूसरेके सुख के लिए भगवान ने बनायी हैं—अपनी और अपने पाँत की भलाई के लिए उनके काम में न लाना भगवान की चलाई हुई बातों के मिटाने का जतन करना है । हमारे यहां पौधियों में लिखा है, “पति स्त्री का देवता है ।” सच है—जो जिसका देवता है—वही उसका सब कुछ है—स्त्री का पति ही सब कुछ है—जैसे बने उसीकी हो कर रहना चाहिए—इसीमें सब सुख है । पर जिसका भाग फूट गया है—जिसका जोड़ा बिछुड़ गया है—जिसके सर का सेहरा उतर गया है—उसको इन बातों में सुख नहीं है—इन बातों को जी में लाना भी उसके लिए पाप है—उसके लिए सुख की दूसरी ही बातें हैं । इस धरती पर कितने बच्चे ऐसे हैं जिनकी मा नहीं,

कितने बाप हैं जिनको बेटी नहीं, कितने भाई हैं जिनको बहन नहीं, कितने रोगी हैं जिसकी कोई सेवा करनेवाला नहीं—कितने दुखिया हैं जिनका कोई आंसू पोछनेवाला नहीं—कितने भूखे, कंगाल हैं जिनको कोई सहारा देनेवाला नहीं । क्या बिना मा के बच्चों को पालने में, क्या बिना बेटी और बहन के बाप-भाई को धर्म की बेटी और बहन बनाने में, क्या रोगियों की सेवा करने में, दुखियों का आंसू पोछने में, भूखे और कंगालों को सहारा देने में, सुख नहीं है ? बहुत बड़ा सुख है, और इसी सुख की खोज ऐसी स्त्रियों को करनी चाहिए । घर ही में कोई झगड़ालू है, किसीमें पेंठ बहुत है, किली का अपनी ही पड़ी रहती है, कोई दूसरेकी नहीं देख सकता, कोई थोड़े ही में बिगड़ जाता है, कोई मनाने पर भी नहीं मानता—कहीं कोई स्त्री पति से रुठ कर मुंह लपेटे पड़ी है—कहीं कोई बच्चा अपनी कड़वां मा के थपेड़े को खा कर पड़ा रो रहा है—कहीं भाई २ लड़ रहे हैं—कहीं बाप बेटे में चल रही है—कहीं सास पतोह में उलझी है—कहीं देवरानी जेठानी तड़प रही हैं—कहीं ननद भौजाई में तू तू में में हो रही है । इन सबसे एक रस बरतने में—समय समय पर सबकी समझाल करने में—उलझते को सुलझाने में—बिगड़ते को बनाने में—क्या सुख नहीं है ? और क्या हम सी स्त्रियों के लिए इस सुख से बढ़ कर कोई और सुख हो सकता है ? यह सुख ऐसा वैसा सुख नहीं है—इस सुख के मिलने पर—ऊसर में गंगा बहती है—अंधेरी रात में चांद उठता है—जलती दीपहर में ठंडी पवन चलती है—घूर पर पारस मिलता है—उकठा हुआ काठ हरा होता है—और रेतेली धरती पर वर्षा होती है । में

इसी सुख का खोज में हूँ, इस धरती पर अब मेरे लिए कोई दूसरा सुख नहीं है ।

पतिवाली स्त्रियों के पास बड़ा भ्रंशट होता है, सबसे पहले उसको पति की सेवा टहल और सम्हाल करनी होती है, क्योंकि सबसे बड़ा धर्म उसका यही है, इस लिए वह जैसा चाहिए वैसा इस सुख को नहीं पा सकती । हमारी हा ऐसी स्त्रियां इस सुख को ठीक ठीक पा सकती हैं । पति के संग स्त्रियों का कुछ स्वार्थ भी रहता है, इसीसे उनके सुख में कभी कभी दुख की झलक भी पायी जाती है । पर जिस सुख की बात हमने कही है, मा कहती हैं इसमें स्वार्थ की छूत नहीं रहती । इस लिए इसमें दुख का लेश भी नहीं रहता । इसी ढंग का सुख कोई कोई पतिवाली स्त्री भी पाती हैं, पर वेही जो सब स्वार्थों से मुंह मोड़ कर पति की सेवा टहल करती हैं ।

बासमती देवहूती की बातों को सुन कर भैचक बन गयी और उसका मुंह तकने छोड़ उससे फिर कुछ कहते न बना । इसके पीछे दोनों फूल तोड़ने के लिए चली गयीं ।

—:~:—

तेरहवीं पंखड़ी ।

पहाड़ों में जा कर नदियों को देखो, दूर तक कहीं उनका कुछ चिह्न नहीं मिलता । आगे बढ़ने पर थोड़ा सा पानी सोते की भांति झिर झिर झिर झिर बहता हुआ रख पड़ता है और आगे बढ़ने पर इसी को हम एक पतली धार पाते हैं । यही पतली धार कुछ और आगे बढ़ कर और कई एक दूसरे पहाड़ी सोतों से मिल कर एक छोटी नदी बन जाती है । कलकल कलकल बहती है । लहरें उठाती है । कहीं पत्थर की चट्टानों से टकरा कर छींटें ड़ाती है । फिर बड़ी नदी बनती है और बड़े बेग से समुद्र की ओर बहती है । हमारी चाहों का भी यही ढंग है, पहले जो मैं इसका कुछ चिह्न नहीं होता । पीछे धीरे धीरे उसकी एक झलक सी इसमें दिखलाई देती है । कुछ दिन और बीतने पर उसकी एक धार सी भीतर ही भीतर फूटने लगती है । पीछे यही धार फैल कर जो मैं घड़ी घड़ी लहरें उठाती है । झठखेलियां करती है । अड़चनों से टकरा लगती है और अपने चाहने की ओर बड़े बेग से चल निकलती है ।

देवहूनी के लिए कामिनीमोहन की चाह भी अब यही पिछले ढंग की चाह है । वह उसीमें डूब रहा है । उसीकी भंवरो में पड़ कर चक्कर खा रहा है । लाख हाथ पांव मारता है, पर कहीं थल बेड़ा नहीं मिलता । वह अपनी बैठक में पलङ्ग पर लेटा है, उस की आंखें कड़ियों से लगी हैं, भौंहे' कुछ ऊपर को खिंच गयी हैं और वह चुपचाप देवहूनी की छुबि मन ही मन खींच रहा है ।

उसने चंपे के फूलों से बना कर एक मूर्ति खड़ी की। कमल की पंखड़ियों से आंखें बनार्यो—तिल के फूल से नाक संवारी—दुप-हरिया के फूल से हाँठ बनाया—हाथ और पांव में भी कमल की पंखड़ियों को लगाना चाहा, पर चंपे के फूल से यहां भी काम लिया। हां ! उंगलियां बनाने में फूल से काम न चला, इस लिए वहां कलियां लगायीं। और सब जैसा का तैसा रहने दिया। भौरों की पातियों को पकड़ कर बाल बनाना चाहा, पर ये सब ठहरते न थे, इस लिए चुनी हुई पतली पतली सुथरी सेवारों से काम लिया—तब भी यह बनाघट बहुत ही बांकी रही। बेले का फूल बहुत ही उजला होता है, नेवारी और जूही का फूल भी वैसा ही होता है, चमेली का फूल इन सबोंके इतना उजला नहीं होता, पर उसमें कुछ लाली होती है, कामिनीमोहन ने जो साड़ी इस मूर्ति को पहनायी वह इन फूलों के रंग की न थी। हां। चमेली के फूल में से लाली निकाल ली जावे, तो इस साड़ी का रंग ठीक उसके फूल का सा होगा। पर साड़ी के आंचल का एक कोना पेसा न था, इसका रंग ठीक सरसों के फूल का सा था, जिससे जान पड़ता है, उतनी साड़ी हलदी में रंगी हुई थी, साड़ी के नीचे कामिनीमोहन ने भूले के भांति का एक और कपड़ा पहनाया, यह भी उजला ही था, जैसा हरसिंगार के फूल की पंखड़ी होता है। गहनों में, कानों में दो चार बालियां हाथों में पांच चार चूड़ियों के साथ सोने का कड़ा, उंगलियों में दो एक ऐसे बैसे छल्ले, और पांव में चांदी के कड़े थे। पर अनकार किलीमें न थी।

यह सब करके कामिनीमोहन ने उसमें जो डाला, जो डालते ही इस मूर्ति के मुखड़े पर न जाने कैसी एक जोत दिपने लगी, न जाने कैसी एक छटा उसके ऊपर छलकने लगी । सहज लजीला मुखड़ा होने से उसकी ललाई जो कुछ गहरी हो गयी थी, बहुत ही अनूठी थी भोलापन इन सबोंसे निराला था । भोर के तड़के चंपे की पंखड़ी को सूरज की सुनहली किरणों से चमकते देखा है—चांद की प्यारी किरणों से धीरे धीरे काई के फूल को खिलते देखा है—लजालू का हरी हरी पत्तियों को कुछ छू जाने पर लाज के बस में पड़ते देखा है—पर वह बात कहां ! वह अनूठापन कहां ! ! !

जो डाल कर कामिनीमोहन ने अपने आपेको खो दिया, बड़ी उलझन में पड़ा, उसे उसके सर की साड़ी को खसका कर कुछ नीचा करना पड़ा, ज्यों ज्यों वह सर की साड़ी नीची करने लगा, उसकी उलझन बढ़ने लगी ! वह सोचने लगा, जो देवहूती में लाज न होती तो क्या अच्छा होता, फिर सोचा, नहीं नहीं, लाज ही तो उसकी चाह जी में और बढ़ा देती है ! लाज ही से तो वह और प्यारी लगती है ! ! ! खुले मुंह की स्त्रियां कितनी देखी हैं—पर क्या घूंघटवाली के ऐसा उनका भी आदर है ? कपड़ों में लिपटी किवाड़ों की ओट में खड़ी स्त्री जितना जी को चंचल करती है—क्या द्वार पर आ कर अकड़ी खड़ी हुई स्त्री के लिए भी जी उतना ही चंचल होता है ! सीधी चितवन कितनी ही देखी है—पर क्या वह तिरछी चितवन के इतनी ही काट करती है ? खिलखिला कर हंसना जी की कली खिलाता

है—पर क्या होठों तक आ कर लौट गयी हुई हंसी के इतना ही ? और क्या वह सब लाज के ही दथकंडे नहीं हैं ? जो कुछ हो, पर क्या अच्छा होता देवहूती, जो तुम्हारा मुखचंद एक बार मैं बिना बावलों के देखने पाता ! इस घड़ी कामिनी-मोहन की सब मुद्र खो गयी थी, वह बावलो की भांति कहने लगा, क्या न देखने दोगी, देवहूती ? मान जाओ, एक बार तो देखने दो । पर फिर अचानक वह चौंक उठा, उसने सूना, जैसे कोई कहता है—आप क्यों अपने पांवों में अपने आप कुल्हाड़ी मार रहे हैं ? कामिनीमोहन ने सुधि में आ कर देखा—साम्हने बासमती खड़ी है । उसको देख कर वह कुछ लजाया, पर छूटते ही पूछा, क्यों बासमती ? क्या मैं अने आप अपने पांव में कुल्हाड़ी मार रहा हूँ ?

बासमती । और नहीं तो क्या ? एक ऐसी बेसी छेाकरी के लिए इतना आपे से बाहर होना, क्या अपने आप अने पांव में कुल्हाड़ी मारना नहीं है ?

कामिनी मो० । क्या करूं, बासमती जी नहीं मानता, जो देवहूती दो चार दिन के भीतर मुझसे न मिली, तो मुझको बावला हुआ ही समझो ।

बासमती । क्यों ? देवहूती में कौन सी ऐसी बात है ? देवहूती से बढ़ कर कितनी ही आपके लिए मर रही हैं, कितनी ही आप पर निष्ठावर हो चुकी हैं, फिर देवहूती में क्या रक्खा है, जो आप उसके लिए बावले होंगे ?

कामिनी मो०। इसको मेरे जी से पूछो बासमती ! मैं बातों से नहीं बतला सकता ।

बासमती। यह आपकी बहुत बड़ी कच्चाई है, घबड़ाने से कुछ नहीं होता, धीरे धीरे सभी बातें ठीक हो जाती हैं। आप की कच्चाई और घबराहट ही सब बातें बिगाड़ती हैं। आप जितना ही उसके लिए चंचल होते हैं वह उतना ही पेंठती है। मैं कहती थी आप उसके पास कोई चीठी न लिखिये, पर आप ने न माना, अब वह इतना तन गयी है, जो पुट्टे पर हाथ तक नहीं रखने देती !

कामिनी मो०। तुम सदा ऐसी ही बातें कहा करती हो, कुछ होता जाता तो है नहीं, डलते सब बातों को मेरे ही सर मढ़ती हो। क्या मेरी चीठी भेजने से पहले उसके ये ढंग न थे ?

बासमती ! जी नहीं, ये ढंग नहीं थे। क्या देवकिशोर भी कभी फूल तोड़ने समय वहां आता था, पर जिस दिन से आप की चीठी गयी है, उसी दिन से ज्यों फूल तोड़ने के लिए देवहूती फुलवारी में आती है, त्यों किसी और से देवकिशोर भी किसी बहाने आ घमकता है। और जब तक देवहूती फुलवारी से नहीं जाती—वह वहां से टलता तक नहीं।

कामिनी मो०। इसमें भी तुम्हीं से कोई भूल हुई है, नहीं तो देवकिशोर इन बातों को क्या जानता ?

बासमती। मुझसे कोई भूल नहीं हुई है, मैं तुम्हारी चीठी को ऐसा चुपचाप देवहूती के पास रख आया...जो वह भी इस

बात को न जान सकी। मैं ऐसे इस काम के लिए उसके घर में आयी गयी—जैसे छुलावा—किसीने देखा तक नहीं।

कामिनी मो०। ये तुम्हारी बातें हैं, पारबती की डीठ कौन बचा सकता है। फूल तोड़ने के समय देवकिशोर का फुलवारी में आना उसीकी चाल है।

बासमती कुछ खिसियानी सी हो कर अपने आप सोचने लगी बात तो ठीक है, मैंने भी कुछ ऐसा ही सुना है, पर जी की बात जी ही में रख कर बोली—आप कहेंगे क्या, मैं पहले से ही जानती हूं। जितनी चूक है—सब मेरी चूक है। जहां कोई बात बिगड़ी, उसमें मेरा ही दोष है। मैं आपकी लौड़ी हूं, जो आप ऐसी बातें कहते हैं तो मैं बुरा नहीं मानती, बात दिनों दिन बिगड़ रही है, दुख इसीका है। आपका काम हो जावे, मैं कनौड़ी बन कर ही रहूंगी।

कामिनी मो०। अब मैंने समझा, जान पड़ता है कलह जब तू मेरे कहने से उसके यहां गयी, उस घड़ी वह तेरे हाथ न चढ़ी। इसीसे आज इतना रंग पलटा हुआ है। नहीं, तू तो स्वर्ग की अप्सरा को धरती पर उतार लाने को कहती थी।

बासमती। अब भी मैं यही कहती हूं—क्या अब जो अड़चने बढ़ गयी हैं—इससे मैं हार मानूंगी? नहीं नहीं, ऐसा आप मत सोचिये, बासमती ऐसी मिट्टी से नहीं बनी है, मैं अपना काम करके ही दिखाऊंगी, पर इतना कहती हूं—काम अब इधर नहीं निकल सकता।

कामिनी मो०। आज तीसरा दिन है, फूल तोड़ते एक महीना

हो गया, कलह से देवहूती मेरी फुलधारी में फूल तोड़ने न आवेगी । जो आज काम न निकला, तो फिर कब निकलेगा, जैसे हो बासमती आज काम पूरा करना चाहिए ।

बासमती । आप फिर उतावली करते हैं, मेरी बात मान कर आप उतावले न हों, आज कल उसके रंग ढंग ठीक नहीं हैं । आज उसके अपने रंग में ढालना टेढ़ी खीर है ।

कामिनी मो० । बासमती तुम भूलती हो, जो आज कुछ न हुआ, फिर कुछ न होगा । मैं तुम्हारी भांति जी का कच्चा नहीं हूँ । जो कुछ मैंने सोच रक्खा है, आज उसको कर दिखाऊंगा । मैं तुम्हें इस घड़ी देख रहा था तुम कितनी हो, नहीं तो इन बातों से कुछ काम न था ।

बासमती । राम करें, आपने जो सोचा है, वह पूरा उतरे, मैं कच्ची हूँ कि पक्की, यह आप भली भाँति जानते हैं—आज भी जानेंगे । मैं कितनी हूँ यह भी आपने बहुत दिनों से समझ रक्खा है—आज भी समझेंगे, पर आपका जी इस घड़ी कहां है, कुछ समझ में नहीं आता । आप उतावले हो कर ऐसी बातें कह रहे हैं, इसीसे मुझको डर है । उतावलापन अच्छा नहीं । पर जब आप नहीं मानते हैं, तो मैं अपना मुँह पीट डालूँ तो क्या ? मैं जाती हूँ—आप जो कुछ कीजियेगा, बहुत चौकसी से कीजियेगा । आप चाहे इस घड़ी न मानें पर मैं कहे जाती हूँ, जहाँ तक हो सकेगा, मेरे योग्य जो काम होगा, मैं उसमें नचूँगी ।

बासमती के चलते चलते कामिनीमोहन ने कहा—बासमती ! कुछ कहना है—बासमती पास आयी । फिर न जानें दोनों में क्या चुपचाप बातें हुईं—इसके पीछे दोनों वहाँ से चले गये ।

चौदहवीं पंखड़ी ।

कामिनीमोहन की फुलवारी के चारों ओर जो पक्की भीत है उसमें से बत्तरवाली भीत में एक छोटी सी खिड़की है । यह खिड़की बाहर की ओर ठीक धरती से मिली हुई है, पर भीतर की ओर फुलवारी की धरती से कुछ उंचाई पर है । खिड़की से फुलवारी की धरती तक नीचे उतरने को बारह सीढ़ियाँ हैं । इस घड़ी इन्हीं सीढ़ियों से हो कर बासमती और देवहूती फुलवारी में उतर रही हैं । पर जिस झोंक से देवहूती का पांव उतरने के लिए उठ रहा है, बासमती का पांव वैसे नहीं बैठता । वह कुछ ठहर ठहर कर नीचे उतर रही है । देवहूती सीढ़ियों से जब फुलवारी में उतरी, बासमती चार सीढ़ी ऊपर थी, देवहूती फुलवारी में उतर कर दो डेग आगे बढ़ी थी—स्योंही उसका पांव नीचे की ओर धरती में धंसने लगा । देवहूती बहुत घबड़ायी, उसने बहुत चाहा, कुछ पकड़ कर ऊपर ही रह जावे, पर चाह पूरी न हुई—उसके औसान जाते रहे । देखते ही देखते देवहूती धरती में लोप हुई । जब उसका पांव नीचे की धरती से लगा, उसकी आंखें खुलीं । आंखें खुलते ही उसने देखा, जिस छींके में वह ऊपर से नीचे आयी थी, और धरती पर पांव लगते ही जिससे खट से अलग हो गयी थी, वह अब बड़े वेग से ऊपर को उठ रहा था । ज्यों ज्यों वह ऊपर उठ रहा था, ऊपर का वह बढ़ा छेद जिसमें हो कर देवहूती नीचे आयी थी मुंद रहा था । देखते ही देखते छेद मुंद गया, और छींका उसी छेद के

ऊपर छत में जा लगा—जो अब देखने में छत का बेल बूटा जान पड़ता था ।

देवहूती इस घड़ी एक बहुत ही सजी हुई कोठरी में थी, सजने के लिए जो जो चाहिए, वह सब इसमें था । इस कोठरी की भीतों की बनावट भी निराली थी, ऐसे ऐसे नग इसमें लगे थे, जिससे सारा घर जगमगा रहा था । कोठरी के सामने एक छोटा सा आंगन था, आंगन के चारों ओर पहाड़ सी ऊंची ऊंची भोतें थीं । बाहर निकलने का कहीं कोई पथ न था । देवहूती ने यह सब देखा, और सोचने लगी, अब मैं क्या करूं । कामिनीमोहन की ही यह चाल है, यह बात उसने जी में भली भाँत जंच गयी, पर अब छुटकारा कैसे हो—यही वह सोच रही थी । इतने में ऐसा जान पड़ा, जैसे सामने की भोत को पोछे से कोई ठोक रहा है, एक एक करके तीन बार ऐसा हुआ, चौथी बार खटके के साथ भोत के भीतर छिपी हुई एक खिड़की खुल गयी—और इसी पथ से कामिनीमोहन ने बड़े ठाट से कोठरी के भीतर पांव रक्खा । कामिनीमोहन के कोठरी में आते ही फिर भोत जैसी की तैसी हुई—अब कहीं खिड़की का चिह्न न था ।

पुरुषों के विचलाने के लिए उस खेलाड़ी ने स्त्रियों को बहुत से हथियार दिये हैं, कौन हथियार कब काम में लाना चाहिए, इसको वे भली भाँत जानती हैं । देवहूती भी स्त्री है, वह इस बात को नहीं जानती थी, यह नहीं कहा जा सकता । हाँ ! इतना हो सकता है, सब स्त्रियाँ अपने हथियारों को एक ही ढंग से काम में नहीं ला सकतीं, जैसे भाला बरछी चलाने में कोई बहुत ही चौकस होता

है—कोई कुछ उससे घट कर—कोई उससे भी घट कर। उसी भांत अपना हथियार चलाने में स्त्रियों की गत है—देवहूती किस ढंग की थी हम नहीं बतला सकते—पर जिस घड़ी देवहूती और कामिनीमोहन की चार आंखें हुईं—देवहूती ने अपनी आंखों से बहुत सा बिष उसके ऊपर उगल दिया। इन घड़ी उसके सर का कपड़ा मांग से भी कुछ पीछे था, बिखरे हुए बाल दोनों गालों पर बड़े अनूठेपन के साथ हिलते थे, होठ अनोखे ढंग से खुले थे, जिस के भीतर मीठी मुसकिराहट झलक रही थी। भाँहें कुछ टेढ़ी थीं, आंखों में लाल डोरे पड़ रहे थे, और मुखड़े का ढंग बहुत ही निराला था। वह झुकी हुई अपने बालों में उलझी कान की बालियों को सुलझा रही थी, बीच बाँच में उसके हाथों की चूड़ियां बहुत ही मीठेपन से बजती थीं। यह सब देख सुन कर कामिनीमोहन का अपने आपे में न रहना कोई बड़ी बात नहीं है—सचमुच इस घड़ी वह अपने आपे में नहीं था—और सब भांत देवहूती के हाथों का खेलौना हो गया था। कुछ घड़ी हक्का बक्का बना वह उसको देखता रहा, पीछे जी सम्हाल कर बोला, देवहूती तुम जितनी सुन्दर हो उतनी ही कठोर हो।

देवहूती। कठोर पुरुष लोग होते हैं, इन्हींका कलेजा पत्थर का होता है, हम स्त्रियां कठोर होना क्या जानें।

कामिनी मो०। हम महीनों से तुम्हारे लिए मर रहे हैं, आंसू बहा रहे हैं, पर तुमने कभी हमारी ओर आँख उठा कर देखा तक नहीं, उल्टे कहती हो, पुरुषों का ही कलेजा पत्थर का होता है।

देवहूती। तुम हमारे जी की क्या जानते हो ! जो तुम मेरे लिए मर रहे हो—तो मैं तुम्हारे लिए मर चुकी हूँ—जीती क्योंकर हूँ यह नहीं समझ में आता। तुम मेरे लिए आंसू बहा रहे हो, तो तुम्हारे लिए मेरा कलेजा जल कर राख हो गया है, उस में एक बूंद लहू नहीं जो आंसू निकले। हाँ, यह सच है, मैंने तुम्हारी ओर कभी आंख उठा कर नहीं देखा, पर तुमने कभी भले घर की बहू बेटी को किसीके किसीके सामने आंख उठा कर देखते देखा है ? मैं कब अकेली रही जो तुम्हारी ओर आंख उठा कर देखती। बासमती के सामने मुझसे ऐसा काम नहीं हो सकता।

कामिनी मो०। क्या बासमती कोई और है ?

देवहूती। और क्यों नहीं है ! जो बात हमारे तुम्हारे बीच की है, उसको तुम जानो, मैं जानूँ—तीसरे को जनाना मैं नहीं चाहती। इसी लिए मैंने तुम्हारी चीठी के पल्लटे में कोई चीठी भी नहीं भेजी—किसके हाथ भेजती। पर मेरा सब किया कराया आज मिट्टी हुआ, आज बासमती ने सब जाना, मेरा यही उलाहना है—और कुछ नहीं।

कामिनी मो०। यह चूक तो हुई। पर तुम्हारे फांसने के लिए ही मैंने ऐसा किया, तुम्हारे जी की बात मैं नहीं जानता था, नहीं तो कभी ऐसा न करता।

देवहूती। तुम्हारा रूप, तुम्हारी मतवाली करनेवाली आंखें, तुम्हारी जी उलझानेवाली लटें, तुम्हारी रसभरी मुसफिराहट, जिसको न फांसेगी—तुम्हारी यह चाल उसको नहीं फांस सकती।

इस निराश्री कोठरी में भी तुम उसका कुछ नहीं कर सकते । पर मैं तो योंही तुम्हारे ऊपर मर रही हूँ—चाहे यों फाँसो चाहे वों—

कामिनी मो० । यह कौन जानता था, आज जो कुछ मैंने किया उसमें बासमती ही आंखों की किरकिरी है, नहीं तो क्या तुम्हारे जी की बात मैं किसी भाँत जान सकता था ?

देवहूती । तुम यह क्या कहते हो, जिस दिन मेरी आंख तुम्हारे ऊपर पड़ी, उसी दिन तुमको समझ लेना चाहिए था, मैं तुम्हारी हो चुकी । वह कौन स्त्री है जो तुमको देख कर तुम्हारे ऊपर निछावर न होगी ।

कामिनी मो० । यह बात दूसरी स्त्री कहे तो कहे, पर तुम मत कहो, देवहूती । मैं आप तुम पर निछावर हूँ, मैं ही नहीं, मेरा धन, प्राण, सब तुम पर निछावर है, मेरे घर की लक्ष्मी तुम्हीं हो, मैं तुम्हारे लिए सब छोड़ सकता हूँ—पर तुमको नहीं छोड़ सकता । जिस दिन तुम आंख भर कर मुझको देखोगी, जिस दिन अपनी फूल ऐसी बांहों को फैला कर मुझसे मिलोगी उस दिन मैं अपना बड़ा भाग समझूँगा ।

देवहूती । मुझको धन संपत्ति से कुछ काम नहीं, मैं तुम्हारे रूप गुण की मिखारिनी हूँ—वही मुझको चाहिए । तुम्हारे संग उजाड़ में भी रहना हो तो वही स्वर्ग है । मुझको अब किसका आसरा है, जो मैं हाथ लगे सेने से भी मुँह मोड़ूँगी । पर बात इतनी है—मैं आज कल देवी की पूजा कर रही हूँ—कलह पूजा पूरी होगी—फिर मैं आपसे बाहर नहीं । देवी देवते की बात मैं सदा डरना चाहिए, पीछे कुछ हुआ तो जनम भर पछतावा रहेगा ।

मेरे दिन खोटे हैं, इससे मैं फूंक फूंक कर पांव रखती हूं। थोड़ा सा आज बासमती का भी खटका लगा है—दूसरे दिन यह खटका भी न रहेगा। जितनी घड़ियां यहां बीत रही हैं, मैं लाजों मर रही हूं, न जाने बासमती क्या सोचती होगी।

कामिनी मो०। मैं तुम्हारा दास हूं—जो तुम कहती हो मैं उससे बाहर नहीं हो सकता। मैं तुमको अभी फुलवारी में पहुँचाऊंगा—पर फिर मैं कैसे तुमसे मिलूंगा—यह बात मेरी समझ में नहीं आती।

देवहूती। मैं जिला घर में रहती हूं—उसमें दक्खिन और एक बड़ा कोठा है, कोठे में दो खिड़कियां हैं, एक बड़ी और एक छोटी। बड़ी पर मैं बहुत बैठा करती हूं—तुम भी उस और बहुत आते जाते हो, परसों मैं तुमको जाते देख कर उसपर से एक चीठी गिराऊंगी, उस चीठी में जो लिखा हो, वही करना, क्या जाने मेरे दिन फिर पलटें।

कामिनी मो०। अच्छा देवहूती, जाओ, मुझमें इतना बल नहीं, जो मैं तुम्हारी बात न मानूं, पर इस दास को न भूलना।

इतना कह कर कामिनोमोहन ने देवहूता के पीछेवाली भीत को पहले ही की भांत तीन बार ठोका, चौथी बार ठोकने पर इस भीत में भी एक खिड़की दिखलायी पड़ी। देवहूती चट उसी में से हो कर बाहर हुई, भीत फिर जैसी की तैसी हुई। जाते जाते देवहूती कह गयी, मैं सब भूल सकती हूं—पर तुमको भूल नहीं सकती।

पन्द्रहवीं पंखड़ी ।

बड़ी गाढ़ी अंधियाली छायो है, ज्यों ज्यों आकाश में बादलों का जमघट बढ़ता है, अंधियाली और गाढ़ी होती है। गाढ़ापन बढ़ते बढ़ते ठीक काजल के रङ्ग का हुआ, गाढ़ी अंधियाली और गहरी हुई। इसपर अमावस, आधी रात और सावन का महोना। पहरों से झड़ी लगी है; बड़ी धूम से वर्षा हो रही है, बादल जी खोज कर पानी उगल रहे हैं। कभी कभी कौंध होती है—पर बहुत थोड़ी—बिजली झलक भर जाती है। मुँह निकालना उसको भी दूभर है। गरज बादलों के भीतर ही घूम रही है, पानी पड़ने की घोर चिंगाड़ सुन कर नीचे आते बसका कलेजा भी दहलता है। बूँदें धड़ाके के साथ गिर रही हैं, ओलती से मुट्ठियों मोटी धार पड़ रही है और चारों ओर पानी बहने की हर हर हर हर बहुत ही डरावनी धुन फेली हुई है। यह सब बहुत ही छिपे छिपे घोर अंधियाली की गोद में होता है। आँखें फाड़ फाड़ कर देखने पर भी कहीं बूँद और पानी की झलक तक नहीं दिखलाती। हाँ, बूँदों के गिरने, पानी के धूम से पड़ने और बहने की मिली हुई कठोर धुन इस अंधियाली के कलेजे को भी भेद कर कानों तक पहुँचती है, और रात के गहरे सन्नाटे को भा तोड़ रही है, पर घोर अंधियाली ने इसको भी अपने रङ्ग में रंग कर बहुत ही डरावनी बना रक्खा है।

इसी बेले एक गली में घुटनों पानी हेलते हुए तीन जन घुस रहे हैं। यह तीनों बीच गली में जा कर ठहरे। गली की पश्चिम ओर एक ऊँचा कोठा है, उसकी एक बड़ी खिड़की खुली हुई है। ऐसी घोर अंधियाली में इस खिड़की के भीतर उँजाला है, खिड़की से गली की धरती तक एक रस्सी की सीढ़ी लगी हुई है, इन तीनों में से एकने टटोल कर इस रस्सी की सीढ़ी को पाया और बहुत फुर्ती से उसके सहारे खिड़की तक पहुँच कर वह कोठे के भीतर पैठ गया। वहाँ उसने कोठे को सूना पाया, केवल एक चौदह पन्द्रह वर्ष की बहुत ही सुन्दर लड़की एक पलंग पर अलबेलेपन के साथ अचेत सो रही थी। एक चटाई पलंग के पास ही धरती पर बिछी हुई थी। एक मिट्टी का दिया टिमटिमाता हुआ जल रहा था, और कहीं कोई न था। कोठे पर चढ़नेवाला बहुत ही चुपचाप पहले कोठे की सीढ़ी के पास गया, वहाँ जो द्वार था उसको उसने बाहर की ओर से लगाया। धीरे धीरे बिल्लाई के कांटों को पकड़ कर किवाड़ों को आगे की ओर खींचा पर वह न खुले, जी को पूरा ढाढ़स हुआ। उसने भीतर से भी बिल्लाई लगा दी। इस द्वार के दक्खिन ओर एक बड़ी खिड़की थी, वह अब इसके पास आया, धीरे धीरे इसके किवाड़ों को भी देखा, यह भी बाहर से लगे हुए थे, इसके कीलकांटों को भी भली भाँत देख कर पीछे इस की बिल्लाई भी उसने भीतर से लगा दी। यह सब करके वह निश्चिन्त हुआ—एक ऊँची साँस भीतर से निकल कर बाहर आयी। कलेजा धक धक करने लगा—पर वह जी को थाम कर धीरे धीरे

पलंग की ओर बढ़ा । पलंग के पास पहुँचा ही था, इतने में जिस खिड़की से वह आया था, उसी खिड़की से उसने एक दूसरे जन को कोठे के भीतर पैठते देखा, कोठे के दीये की जोत ठीक इस पैठनेवाले के मुँह पर पड़ती थी, उसी धुंधली जोत में उसने देखा, पैठनेवाला उन्नीस बीस बरस का लम्बा गठीला जवान है । हाथ पाँव बहुत ही कड़े हैं, सारे अङ्ग खुले हुए हैं, केवल एक कसा हुआ लंगोटा देह पर है । सर के कंठे हुए छोटे छोटे बालों से पानी की अलगिनत बूँदें टपक रही हैं, मुँह उसका बहुत गंभीर है—जिसपर बेडरी और भलमनसाहत एक साथ भलक रही है ।

इस पिछले जन को इस भांत अचानक आया हुआ देख कर उस पहले जन के पेट में खलबली पड़ गयी, औस्तान जाते रहे और कलेजा बल्लियों उछलने लगा । जिस घड़ी उस पहले जन की आंख इस पिछले जन पर पड़ी थी, उसी घड़ी उसने ठीक कर लिया था, यह मेरे साथवाले दो जनों में से कोई एक नहीं है, यह इस गांव का लोग भी नहीं जान पड़ता, क्योंकि इस गांव का ऐसा कौन है जिसको मैं नहीं जानता, पर इसको तो आज तक मैंने कभी नहीं देखा । इस लिए फिर यह है कौन ? उसने उसी घड़ी उसी हड़बड़ी में सोचा, यह हो न हो कोई चोर है ! और जो चोर नहीं है तो देवदूती का छैल है ! जो इसी भांत छिप कर नित इसके पास आता है । ये दोनों बातें ऐसी थीं, जिनके जी में समाते ही वह जल भुन गया, उसके ऊपर उसको कुछ रोष भी हुआ, जिससे घबराहट दूर हुई, और जी कुछ कड़ा हुआ, इस लिए उसने कोठे में उसके

पाँच रखते ही उससे कुछ अक्खड़पन के साथ पूछा, क्यों रे, तू कौन है ?

पिछला जन । मैं तेरा यम हूँ।

पहला जन । हाँ, तू मेरा यम है ! देख मुंह समझाल कर बातें कर, छोटा मुंह बड़ी बात अच्छी नहीं होती।

पिछला जन । मैं ही तो इस अंधियाली रात में छिप कर दूसरेके घर में घुस आया हूँ। मैं ही तो एक परायी स्त्री का सत इस भांत कपट करके बिगाड़ना चाहता हूँ—इसीसे मुझको बड़ा डर है।

पहला जन । मैं तो दूसरेके घर में छिप कर परायी स्त्री का सत बिगाड़ने आया हूँ ! पर यह तो बतला—तू यहां क्या आया है ? क्या तू चोर नहीं है ?

पिछला जन । मैं चोर हूँ या साह, तुझे आप जान पड़ेगा, कुछ घड़ी में तू यह भी जानेगा, मैं किस लिए यहां आया हूँ।

पहला जन । मैं कुछ घड़ी में क्या जानूंगा, अभी जानता हूँ तू मरने के लिए यहां आया है। चोटी को पंख निकलता है, तो अपने आप वह आग पर जाकर जल मरती है।

पिछला जन । ठीक बात है ! मैं मरने के लिए ही यहां आया हूँ, पर यह जान ले तुझे मार कर मरूंगा, बिना तुझे मारे मैं कभी न मरूंगा।

पहला जन । तू किस बूते इतनी हैकड़ी बघारता है ? तू नहीं जानता मैं कौन हूँ ?

पिछला जन । मैं जानता हूँ—तू देश का नीच, कुचाली और नटकाट है।

पहला जन । चुप रह ! जो गाली बकेगा तो जीभ पकड़ कर खँच लूंगा ।

पिछला जन । आ, देखूँ तो कैसे तू मेरी जीभ खँचता है ! एक ही भापड़ में तो अंधा होकर धरती पर गिर पड़ेगा ।

पहला जन । मुन्ना ! मुन्ना !! ओ मुन्ना !!! बघेल ! बघेल ! ओ बघेल !!! अबकी बार चिल्ला कर कहा —ओ मुन्ना और बघेल ! अभी कोठे पर चढ़ आओ ।

पिछला जन । मुन्ना और बघेल के भरोसे ही यह सीटी पटाक थी, तो तेरी देखी गयी । पापी नीच ! जा । अब तू भी वहीं जा जहाँ मुन्ना और बघेल गये हैं ।

इतना कह कर कड़फ कर पिछला जन पहले जन की ओर झपटा, धन जन और जवानी के मद से मतवाले पहले जन से भी यह न सहा गया, वह भी छुरी निकाल कर इसकी ओर दौड़ा, पर पिछले जन ने बहुत ही फुनी से उसके हाथ से छुरी छीन ली, और गला पकड़ कर एक ही झटके में उसको पछाड़ कर उसके ऊपर चढ़ बैठा ।

इस झपटा झपटी और कड़का कड़की में उस पलँग पर सोयी हुई लड़की की नींद टूट गयी—वह घबड़ा कर पलँग पर उठ बैठी, आंख मलने २ बोली, भगमानी ! भगमानी !! यह कैसी घमा चौकड़ा है !!! उसकी बोली उस सुनसान कोठे में गूँज उठी, पर किसी दूसरेका बोल न सुनाई पड़ा । उसने हड़बड़ी में आंखें खोल दीं, पास की चटाई पर किसीको न पाया, पर उससे थोड़ीही दूर पर उसने कामिनीमोहन को धरती पर गिरा और उसके ऊपर

एक अनजान को बैठे देखा । इस अनसोची और अनहोनी बात को अचानक देख कर वह कांप उठी—उसकी बिगड़ी बंध गयी और वह चक्कर में आ गयी । अभी वह समझती नहीं थी, इतने ही में उस पिछले जन ने जिसको अब हम देवस्वरूप नाम से पुकारेंगे, कहा—क्यों रे ! राक्षसी !! भले घर की बहू-बेटी का क्या यही काम है ?

लड़की ने कहा, आप क्या कहने हैं, मैं समझ नहीं सकती हूं । पर जिस भले घर की बहू-बेटी के ऐसे निराले कोठे में, ऐसी अंधियाली रात में, इस भांति दो अनजान पुरुष धमाचौकड़ी करते हों, वह भले घर की बहू-बेटी काहेको हैं । आप मुझको भले घर की बहू-बेटी न कहिये । मुझको अब इस धरती पर रहना भी भारी है । अब मैं यही चाहता हूं धरती माता फट जावे और मैं उसमें समा जाऊं ।

देवस्वरूप ने कहा, तुम मत दुखी हो, मैंने तुम्हारा जी देखने के लिए ही वह बात कही थी, अब मुझको तुमसे कुछ नहीं कहना है । मैं कामिनोमोहन से दो चार बातें करना चाहता हूं । यह कह कर वह कामिनोमोहन की ओर फिरा, उसको कड़ी आंखों से देख कर बोला, देखो कामिनीमोहन ! मैं तुम्हारे ऊपर चढ़ कर बैठा हूं, तुम्हारी छुरी यह मेरे हाथ में है, मैं इसको तुम्हारे कलेजे में घुसेड़ दूँ—या तुम्हारे गले में चुभा दूँ, तो तुम अभी तड़प कर मर जाओगे, इस घड़ी तुम्हारा मरना जीना मेरे हाथ में है । पर सच बात यह है—मैं तुमको जी से मारने के लिए यहां नहीं आया हूं—मैं इस लड़की का धर्म बचाने के लिए यहां आया था, राम

की दबा से वह बात पूरी हुई—मैं तुम्हारा जी ले कर क्या करूँगा । मैं तुमको अब छोड़ दे सकता हूँ । पर यों न छोड़ूँगा । तुम दो बातों के लिए मुझसे शपथ करो, तभी छोड़ूँगा, क्या शपथ करोगे ?

कामिनीमोहन ने बहुत धीरे से कहा, आप क्या कहते हैं ?

देवस्वरूप ने कहा, मैं यही कहना हूँ—एक तो आजसे किसी पराधी स्त्री को तुम छुल कपट करके मत फाँसो और न किसी भाँत उसका सत बिगाड़ो—दूसरे आज की जितनी बातें हैं, इनको अपने तक रखना, भूल कर भी किसीसे न कहना ।

कामिनीमोहन ने एक लम्बी साँस ली—बिष की सी घूंट घोंट कर देवस्वरूप की कही हुई बातों के लिए भगवान को बीच देकर शपथ किया, और एक आह भर कर कहा, आप अब मुझको छोड़ दीजिये, मेरा जी निकल रहा है ।

अच्छा, जा छोड़ दिया, पर मेरी बात का भूलना मत, बुरा मान कर तुम मेरा कुछ नहीं कर सकते, मैं ऐसा बैसा मनुष्य नहीं हूँ—धर्म की रक्षा के लिए जो लोग कभी कभी मनुष्य के रूप में दिखलायी पड़ते हैं—मैं वही हूँ, तुम सचेत हो जाओ, धर्म के पथ पर चलोगे, तो आगे को तुम्हारे लिए बहुत अच्छा होगा । यह कह कर देवस्वरूप ने कहा, अच्छा, कामिनीमोहन अब तू इस कोठे से उतर, मैं भी तेरे साथ नीचे चलता हूँ ।

इतनी बातचीत होने पीछे बारी बारी दोनों इसी रस्सी की सीढ़ी से नीचे उतरे । नीचे उतर कर देवस्वरूप ने उस रस्सी की

सीढ़ी को खिड़की से खींच कर टुकड़े टुकड़े कर डाला । देवहूतो चुपचाप बह सब लीला देखती रही, पर कोई बात उसकी समझ में नहीं आयी । वह खिड़की के किवाड़ लगा कर फिर अपने पलंग पर सो गयी । पर इसका जी रह रह कर बहुत घबड़ाता था ।

अब भी बर्षा का वही ढंग था, अंधियाली भी वैसी ही गहरी थी, इसी अंधियाली और बर्षा में देवस्वरूप कामिनीमोहन की आंखों के ओझल हुआ । कामिनीमोहन ने अपने दोनों साथियों को इधर उधर बहुत खोजा, पर उनको कहीं न पाया, चुपचाप मन मारे वह घर आया, आज उसकी रात बहुत ही बेचैनी से कटी ।

सोलहवीं पंखड़ी ।

“ देखो ! चाल की बात अच्छी नहीं होती । ”

अपनी फुलचारी में टहलते हुए कामिनीमोहन ने पास खड़ी हुई बासमती से कहा --

बासमती । क्या मैंने कोई आपके साथ चाल की बात की है ? आपके होठों पर आज वह हंसी नहीं है, आंखें डबडबायी हुई हैं, मुंह बहुत ही उतरा हुआ है—यही सब देख कर मैंने जो पूछा—आपका जी कैसा है ?—तो यह मेरी चाल की बात है ?

कामिनी मो० । चाल की बात न है, और क्या है ! तुम क्या नहीं जानती हो ?—फिर सब बातें जान बूझ कर पूछने का ढंकर निकालना चाल की बात नहीं है, तो क्या है ?

बासमती । मैं क्या जानती हूं ? जितनी बातें मैं जानती हूं उनमें एक बात भी ऐसी नहीं है, जिससे आप इतने उदास हों, मैं आपको हंसता खेलता देखने आयी थी, पर उलटे मुरझाया हुआ पाती हूं—अब मैं क्या जानती हूं बीच में क्या गड़बड़ हुई ।

कामिनी मो० । चुप रहो, बासमती ! क्यों बहुत बात बनाती हो ? तुम सब जानती हो और सब तुम्हारा ही बिगाड़ा बिगड़ता है । मुझसे काम बनाने के बहाने अलग ऐंठती हो, और वहां देवदूती की मा को सब भेद बतला कर अलग कमाती हो, अब मैंने तुम्हारा मरम समझा है । पहले मैं तुमको ऐसा नहीं समझता था ।

बासमती । राम ! राम !! यह आप क्या कहते हैं, जो मैं आपसे छुल कपट करती होऊँ, तो मेरी आंख फूट जावे, मेरे तन में ढोले पड़े मेरा एक पूत मेरे काम न आवे । मेरा कोई गला काट डाले, तोभी मैं आपकी बात दूसरेको नहीं बतला सकती, रुपया पैसा क्या है जो उसके लालच से मैं ऐसा करूँगी ।

कामिनी मो० । जो ऐसा नहीं है, तो फिर ऐसी घोर अंधियाली में, ऐसी कठोर वर्षा में, खड़ी आधी रात को एक अनजान पुरुष मेरा काम बिगाड़ने के लिए वहां कैसे पहुँच गया ।

बासमती । इसको राम जानें—मैं कुछ नहीं जानती, मैं जो भूठ कहूँ तो मेरी जीभ गल जावे । मैं आपकी लौड़ी हूँ, काम लगने पर आपके लिए अपना कलेजा निकाल कर सामने रख सकती हूँ—आप इस भांत मुझको दोष न लगाया करें ।

कामिनी मो० । क्या कहूँ बासमती रात की बात कुछ समझ में नहीं आती, सौ ठौर जी जाता है, तुम्हारा मन बूझने के लिए ही मैंने ये बातें कहीं, नहीं तो मैं जानता हूँ तुम ऐसी नहीं हो, मेरी इन बातों को तुम बुरा न मानना ।

बासमती । आपने क्या कहा जो मैं बुरा मानूँगी, जिसपर बस चलता है, जो अपना होता है, उसीपर भांझ निकाली जाती है । आप बिगड़ेगे तो हम लोगों पर बिगड़ेगे और किसपर बिगड़ेगे ?

बासमती की बातों से कामिनीमोहन का दुख कुछ हलका हुआ, उसने अपने जी का बोझ और हलका करने के लिए धीरे धीरे रात की सब बातें बासमती से कहीं, पीछे एक लम्बी सांस भर कर कहा, बड़ा पछुतावा यह है बासमती ! मैं रात देवहूती से दो बातें भी न कर सका ।

बासमती । जो सौ रुपये भगमानी को और एचास साठ रुपये देवहूती के घर के दूसरे कामकाजियों को दिये गये थे, मैं उसीके लिए मर रही थी, यह बात तो आपने ऐसी सुनायी, जो मुझपर विजली टूट पड़ी ।

कामिनी मो० । भगमानी को जो सौ रुपये दिये गये उसका क्या पछुतावा है, उसने अपना सब काम ठीक ठीक किया था, घर के भीतर की और से फ़िवाड़ियां लगा ली थी, कोठे की बड़ी खिड़की खोल कर उसपर रस्सी की सीढ़ी लगा दी थी, आप भी कोठा छोड़ कर कहीं चलो गये थी । काम पढ़ने पर उसके घर के दूसरे कामकाजी भी सर न उठाते — पर इन दोनों ने बड़ा धोखा दिया ।

बासमती । धोखा नहीं दिया, सर काट लेने का काम किया, पर मैं क्या कहूं, मुझसे तो आज कुछ कहते ही नहीं बनता ।

कामिनी मो० । जाने दो बासमती ! मुझको इन बातों की इतनी खोज नहीं है; पर देवहूती को हाथ से न जाने देना चाहिए ।

बासमती । मैं कब देवहूती को छोड़नेवाली हूं, पर दुःख इतना ही है कि काम बिगड़ता जाता है । मैंने आपसे अभी नहीं कहा, आज पारबती ने अपने यहां के सब कामकाजियों को निकाल दिया । भगमानी बीसों बरस की पुरानी दहलुनी थी, आज उसको भी छोड़ा दिया । वे सब मेरे यहां रोते आये थे— इन सबसे मेरा बड़ा काम चलता था ।

कामिनी मो० । पारबती कैसी चाल की है, कुछ समझ में नहीं आता । पर वह कामकाजी लावेगी कहां से—रखेगी तो यहां हो के लोग ! यहां कौन ऐसा है जो मेरा दबाव नहीं मानता, बासमती ! पारबती को जो तुमने न पछाड़ा, तो कुछ न किया ।

बासमती । अपने चलते तो मैं चूकती नहीं, पर होनी को क्या करूं ! मैं भी यही कहती हूं—जो पारबती ने मुंह का न खाया तो कुछ न हुआ ।

कामिनी मो० । अब की कोई बड़ी गहरी चाल चलनी चाहिए ।

बासमती । मैंने समझा, अच्छा, अब मैं इसी सोच में जाती हूं ।

यह कह कर वह चली गयी ।

सत्रहवीं पंखड़ी ।

आज भादों सुदी तीज है, दिन का चौथा पहर बीत रहा है, स्त्रियों के मुंह में अब तक न एक दाना अन्न गया, न एक बूंद पानी पड़ा, पर वह वैसी ही फुरतीली हैं, काम काज करने में उनका वही खाव है, दूसरे दिन कुछ ढिलाई भी होती, पर आज उसके नाम से भी नाक भौं चढ़ती है, घर घर में, चहल पहल है, बच्चों तक में उमंग भरी है। धीरे धीरे घड़ी भर दिन और रहा, बनी ठनी स्त्रियां घर घर से निकलने लगीं; थोड़ी ही बेर में गांव के बाहर ठौर ठौर चलती फिरती फुलवारियां दिखालाई पड़ीं। बिछिया और पैजनियों की छमाछम, कड़े छड़े और घुंघुआओं की झनकार से, सोती हुई दिशाएँ भी जाग उठीं—पवन में बीन बजने लगी। भूण्ड की भूण्ड स्त्रियां दक्खिन से उत्तर का जा रही थीं, उनके कोयल के मतवाले करनेवाले कंठ स जा गाना हो रहा था, उसको सुन कर योगियों के भी छक्के छूटते थे। स्त्रियों के भूण्ड में कभी कभी हटो बचो की धुन भी सुनाई देती थी, और देखते ही देखते कहार पालकियां लिये बहुत ही फूर्ती से इनके बीच में हो कर निकल जाते थे। इन पालकियों में गांव की थोड़े दिन की आयी हुई धनियों की पतोहें और किसी २ बड़े धनी के घर की स्त्रियां जाती थीं।

बंसनगर गांव के उत्तर ओर सरजू नदी अटखेलियां करती हुई बह रही है, स्त्रियों का भूण्ड धीरे धीरे आगे बढ़ कर

इसी नदी के तीर पर पहुँचा, बंसनगर गांव के ठीक सामने उस पार चांदपुर गांव था । सरजू का ढंग है—सदा अपनी धारों को पलटती रहती है, पर इन दोनों गांवों के पास की धरती कंकरीली थी, इस लिए इन दोनों गांवों के बीच वह सदा एक रस बहती—ये दोनों गांव व्यापार की मंडी थे । इस पार और उस पार बड़े अच्छे अच्छे घाट थे । आज दोनों और घाट पर स्त्रियों की बड़ी भीड़ है । सरजू नदी कल कल बह रही है, सूरज की किरणें उसमें पड़ कर जगमगा रही हैं, लहर पर लहर उठती है—सूरज की किरणों में चमकती है—और फिर सरजू की बहती हुई धार में मिल जाती है । पानी के तल पर मगर, घड़ियाल उतरा और डूब रहे हैं, पाल से उड़ती हुई नाव आ जा रही हैं, छोटी मोटी डोंगियां लहरों में डगमगा रही हैं, और दूसरी बहुत सी नाव घाट के एक ओर पांती बांधे चुपचाप खड़ी हैं, जब कभी लहरें उठ कर घाट से टकराती हैं, एक एक बार रह रह कर ये नावें धीरे धीरे हिल उठती हैं । सरजू तीर पर दोनों पार बहुत से मन्दिर और शिवालय थे, उनमें से बहुतों पर ध्वजा लगी हुई थी, बहुतों पर कलस थे, तीर पर भांत भांत के फूले फले पेड़ थे, और इन सबकी छाया जल में पड़ रही थी । धीरे धीरे तीर की स्त्रियों की छाया भी जल में पड़ी । जब कभी जल थिर रहता, उस घड़ी दोनों पार पानी के भीतर एक बहुत ही अच्छी बसी हुई बस्ती दिखलाई पड़ती, और जब लहरें उठतीं, पानी के हिलने पर उसमें सिलघट्टे पड़तीं, उस घड़ी टुकड़े टुकड़े हो कर गांव उजड़ता दिखलायी देता,

और धीरे धीरे जल में लोप हो जाता । जल में यही सब लीला हो रही है—स्त्रियां नहा धो रही हैं—और उनके गीतों पर सरजू का जल लहरों के बहाने हाथ उठा उठा कर नाच रहा है—और सारा गांव सरजू पर खड़ा हो कर यह सब लीला देख रहा है ।

सरजू के तीर पर पचास स्त्रियों के साथ बासमती खड़ी है, उसके साथ की बहुत सी स्त्रियां नहा धो चुकी हैं, बहुत सी नहा धो रही हैं, इसी बीच देवहूती अपनी मौसी और पड़ोस की दूसरी दो स्त्रियों के साथ वहां आयी । आते ही न जाने क्या बात हुई जो देवहूती की मौसी और बासमती में बातचीत होने लगी, बासमती के साथ की दो चार स्त्रियां इनको घेर कर खड़ी हो गयीं । देवहूती के साथवाली पड़ोस की दो स्त्रियों को भी बासमती के साथ की दूसरी दो स्त्रियों ने बातों में फांसा, और इनमें से भी एक एकको घेर कर बासमती के साथ की पांच पांच चार चार स्त्रियां खड़ी हो गयीं । देवहूती आगे बढ़ गयी, ज्यों वह पानी के पास पहुँची, त्यों उसको भी घेर कर बासमती के साथ की बीस पचीस स्त्रियां खड़ी हो गयीं । उनमें से एक जो देवहूती के जान पहचान वाली थी, उससे बोली, देवहूती देखो यह कैसा अच्छा फूल है ।

देवहूती । हां, बहुत अच्छा फूल है, क्या तुमने बनाया है सरला ! इसकी पंखड़ियां बहुत ठीक उतरी हैं, मैंने पहले इसकी बेलें का फूल ही समझा था ।

सरला । क्या मैं ऐसा फूल बना सकती हूँ—भाभी ने बनाया है । तभी आज इनको पालकी पर चढ़ा कर लिवा लायी हूँ । सब से बड़ी बात इसकी महक है—देखो न ! यह फूल कैसा महकता है !

देवहूती । क्या इसमें महक भी है ? फूल तो बहुतों को बनाते देखा है, पर उसमें महक भी वैसा ही बना देना, निरर् नयी बात है !

सरला । देखो न ! हाथ कंगन को आरसी क्या ?

देवहूती ने हाथ में लेकर फूल संघा, संघते ही वह अचेत हो गयी, उसके हाथ के कपड़े सरजू में गिर पड़े जो आगे को बह निकले, और इसी बीच अचानक कहारों ने एक पालकी उठायी जिसको ले कर वे सब वहां से बड़े बेग से चलते बने । कहारों के पालकी उठाने ही उन्हीं स्त्रिया में से एक स्त्री दूसरी कई एक स्त्रियों के साथ उन्हीं बहते हुए कपड़ों को दिखला कर कहने लगी—हाय ! हाय !! यह क्या हुआ, नहाते नहाते देवहूती कहां चली गयी, अरे यह बिना बादलों त्रिजली कैसे टूट पड़ी ! उन सबोंका रोना चिल्लाना सुन कर बासमती ने दूर ही से पूछा—क्या है ! क्या है ! तुम सब रोती क्यों हो ? उन्हींमें से एकने कहा, अभी नहाने के लिए देवहूती जल में पैठी थी, इसी बीच न जाने कौन जीव उसको पानी में खींच ले गया । यह सुनते ही देवहूती की मौसी और उसके पड़ोस की दोनों स्त्रियां हाय, हाय, करते वहां दौड़ आयीं । उन्हीं स्त्रियों में से कई एकने देवहूती के पानी में उतराते हुए कपड़ों को

दिखला कर कहा, इन्हीं कपड़ों को फोंचने के लिए देवहूती पानी में पैठी थी, अभी नहाने और कपड़ा फोंचने भी नहीं पायी थी, इसी बीच घड़ियाल जान पड़ता है, उसको पकड़ ले गया। उस की बातों को सुन कर सब चिल्ला उठों, देवहूती की मौसी की बुरी गत हुई। वह पछाड़ खा कर धरती पर गिरी, और कहने लगी, मैं वहन से जाकर क्या कहूँगो, बाममनी उसकी यह गत देख कर भीतर ही भीतर बहुत सुखी हुई, पर ऊपर से दिखलाने के लिए, उसको समझाने बुझाने लगी। उन सबको रोते चिल्लाते सुन कर दो चार नावें दौड़ो, कुछ लोग भी पानी में कूदे, सबों ने समझा कोई डूब गया है—पर जब यह सुना किसीको घड़ियाल उठा ले गया, उस घड़ी सब हाथ मल कर पछुताने लगे—किसीसे कुछ न करते बना।

थोड़ी ही बेर में घाट भर में यह बात फैल गयी—देवहूती को घड़ियाल उठा ले गया। बड़ी कठिनाई से उगते डरते नहा धो कर देवहूती की मौसी दूसरी स्त्रियों के साथ घर आयी। देवहूती का घड़ियाल के मुँह में पड़ना सुन कर पारबती की जो गत हुई, उसको हम लिख कर नहीं बतला सकते।

अठारहवीं पंखड़ी ।

एक बहुत ही घना बन है, आकाश से बातें करनेवाले ऊंचे ऊंचे पड़ चारों ओर लगे हैं—दूर तक डालियों से डालियाँ और पत्तियों से पत्तियाँ मिलती हुई चली गयी हैं। जब पवन चलती है, और पत्तियाँ हिलने लगती हैं, उस घड़ी एक बहुत ही बड़ा हरा समुद्र लहराता हुआ सामने आता है। बड़, साल और पीपल के पेड़ों की बहुतायत है, पर बीच बीच में दूसरे पेड़ भी इतने हैं जिससे सारा बन पेड़ों से कसा हुआ है। इसपर बेल, बूटे और झाड़ियों की भरमार, सूरज की किरणें कठिनई से धरती तक पहुँचती थीं—कहीं कहीं तो उनका पहुँचना भी कठिन था—वहाँ सदा अन्धेरा रहता। एक चौड़ी खोर ठीक बन के बीच से होकर पच्छिम से पूरब को निकली थी, जहाँ पहुँच कर यह खोर लोप होती—वहाँ कुछ दूर तक बन बहुत घना न था। एक घड़ी दिन और है, बन में सर सर छट पट की धुन हो रही है, बरसाऊँ बादल आकाश में फैले हुए हैं, पत्तों को खड़खड़ाती हुई बषार चल रही है—धीरे धीरे सहज डरावना बन और भी डरावना हो रहा है।

जिस खोर की बात हमने ऊपर कही है, उसी खोर से घोड़े पर चढ़ा हुआ एक जन पश्चिम से पूर्व को जा रहा है। मुखड़े पर उमंग झलक रही है, आँखों से जोत निकल रही है, पर माथे में सिलवटें पड़ रही है, जिससे जान पड़ता है वह अपने आप

कुछ सोच रहा है । घोड़ा बहुत ही धीमी चाल से चल रहा है—
 पर कान उसके खड़े हैं कभी कभी वह चौंक भी उठता है, उस
 घड़ी उसकी हिनहिनाहट उस सुनसान बन के सन्नाटे को तोड़ देती
 है और एक एक बार उसी हिनहिनाहट से सारा बन गूँज उठता
 है । धीरे धीरे तानपूरे का मीठा सुर चारों ओर फैलने लगा—
 साथ ही एक बहुत ही सुरीले गले से गीत गाया जाने लगा ।
 पीछे तानपूरे का मीठा सुर और सुरीले गले की तान मिल कर एक
 हुई और एक बहुत ही सुहावनी और जी को बेचैन करनेवाली धुन
 सारे बन में गूँजने लगी । यह धुन धीरे धीरे ऊपर बयार में उठी,
 पीछे खेहर पर जानेवाले के कानों तक पहुँची—वह चुपचाप
 गीत सुनने लगा—गीत यह था—

लाव ी ।

जग का कुछ ऐसा ही है ढंग दिखाता ।
 एक रंग किसीका कभी नहीं दिन जाता ॥
 जिससे पौधों ने समा निराला पाया ।
 जिसने वरबस था आंखों को अपनाया ॥
 जिसके ऊपर था जी से भौर लुभाया ।
 बहती बयार को भी जिसने मंहुकाया ॥
 वह खिला सजीला फूल भी है कुम्हलता ।
 एक रंग किसीका कभी नहीं दिन जाता ॥ १ ॥
 देखा जिसको जग बीच ध्वजा फहराते ।
 राजे जिस के पावों पर शीश नवाते ॥
 सुन करके जिसका नाम बीर घबराते ।

जिसकी, कीरत सब श्राग सभी थे गाते ॥
 कल पड़ा हुआ वह धूल में है बिललाता ।
 एक रंग किसीका कभी नहीं दिन जाता ॥ २ ॥
 पड़ते थे जिसके तीन लोक में डरे ।
 यम भी डरता था आते जिसके नेरे ॥
 थे और देवते जितने जिसके चेरे ।
 कांपता स्वर्ग जिसके आंखों के फेरे ॥
 उस रावण को था गीध नेच कर खाता ।
 एक रंग किसीका कभी नहीं दिन जाता ॥ ३ ॥
 कब तक कितनी हम ऐसी कहें कहानी ।
 अपने जी में तू समझ सोच रे प्रानी ॥
 क्यों धरम छोड़ कर करता है मनमानी ।
 तू क्यों बिगाड़ता है अपना पत पानी ॥
 है पल भर में धन जोवन सभी बिलाता ।
 एक रंग किसीका कभी नहीं दिन जाता ॥ ४ ॥

घोड़े पर चढ़ा हुआ कौन जा रहा है, क्या यह बतलाना होगा ? ऊपर के गीत को सुन कर आप लोग आप समझ गये होंगे, वह कौन है ? जो न समझे हों तो मैं बतलाता हूं, वह कामिनीमोहन है । ऐसे घने वन में जहां सूरज की किरनें भी कठिनाई से जाती हैं, इस भांत अचानक गीत होता हुआ सुन कर वह सन्नाटे में हो गया, फिर गीत भी ऐसा जो उसके दोनों कानों को भली भांत मल रहा था—जो वह सोच रहा था, मानों उसीके लिए उसको जली कटी सुना रहा था । कामिनी-

मोहन बहुत घबराया, सोचने लगा, बात क्या है ! हो न हो दाल में कुछ काना है, पर कोई बान उसकी समझ में न आयी । सोचते सोचते उसने देखा, बन में पेड़ एक ओर बहुत घने नहीं हैं, गाने की धुन उसी ओर से आ रही थी, गीत अब तक गाया जा रहा था । वह धीरे धीरे घोड़े पर से उतरा, घोड़े को पेड़ से बांधा, और चुप चाप पांव दबाये उसी ओर चला । ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ने लगा, गीत का गाया जाना रुकने लगा । पथ में एक बहुत ही लम्बा चौड़ा बड़ का पेड़ था, डालियां इस की बहुत दूर तक फैली हुई थीं । और कई सौ जटाएँ डालियों से निकल कर धरती तक आयी थीं । इस पेड़ तक पहुँचते पहुँचते गीत का गाया जाना रुक गया, सोने पर जान पड़ा इसी पेड़ के नीचे गीत हो रहा था । कामिनीमोहन यहां पहुँच कर बड़ के चारों ओर घूमा, बहुत सी चिड़ियां झाड़ियों में से निकल कर ऊपर उड़ गयीं—छोटे छोटे बन के जीव इधर उधर भागते दिखाई पड़े, पर और कोई कहीं न दिखलायी दिया । कामिनीमोहन का जीवट आप लोग जानते हैं, वह चाहता था, पेड़ पर भी चढ़ कर देखें, पर कुछ समझ बूझ कर न चढ़ा । उसके हाथ में एक तुपक थी, उसने डर दिलाने के लिए आकाश में उसको चलाया, सन्नाटे में उसकी धुन सारे बन में गूंज गयी—कां कां करते बहुत से कैवे पेड़ पर से उड़ गये—पर और कुछ न हुआ । कामिनीमोहन कुछ घड़ी यहां खड़ा न जानें क्या सोचता रहा—पीछे खोर की ओर फिरा ।

खोर पर पहुँच कर वह घोड़े पर चढ़ा ही था, इसी बीच उसने फिर तानपुरे की धुन और गाना सुना, अबकी बार तानपुरा बड़ी उमंग से बज रहा था, गाना भी बहुत ऊँचे सुर में हो रहा था, गीत ये थे—

गीत ।

कितने ही घर हैं पाप ने घाले ।
कितने ही के किये हैं मुंह काले ॥
पाप की वान है नहीं अच्छी ।
ओ न पापों से कांपनेवाले ॥
सोते हो तेज कान में डाले ।
धर्म के हैं तुम्हें पड़े लाले ॥
नाव डूबेगी बीच धार तेरी ।
ओ धरम के न पालनेवाले ॥

फिर इस भांत गाना होते सुन कर कामिनीमोहन बहुत चकराया, वह कुछ डरा भी, जी में आया, फिर उस पेड़ तक चलूँ, और उस पर चढ़ कर देखूँ क्या बात है, वह घोड़े पर से उतरा भी, पर इसी बीच उसको एक पालकी सामने से आती हुई दिखलाई पड़ी, कहार सब बड़े बेग से पालकी चला रहे थे, पाँच लठधर पालकी के पीछे थे । पालकी के देखते ही कामिनीमोहन का जी उस ओर गया । उसने कहारों से तो कहा ले चलो ! ले चलो !! पर जो पाँच लठधर पीछे दौड़ रहे थे, उनमें से एकको पास बुलाया, जो चार रह गये थे, वे सीधे पालकी के साथ गये ।

जिसको कामिनीमोहन ने पास बुलाया था, जब वह पास आया, तो उसने कहा, कपूर काम तो तुमने बढ़ा किया ?

कपूर । मैंने कौन काम किया, जो कुछ किया सो बासमती ने किया, आज वह बड़ी चाल चली ।

कामिनीमोहन । हां, कहो तो, कैसे क्या क्या हुआ ?

कपूर । आप घोड़े पर चढ़ कर धीरे धीरे चलिये, मैं भी कहता चलता हूँ, नहीं तो कहार सब बहुत आगे बढ़ जावेंगे ।

कामिनीमोहन घोड़े पर चढ़ा, धीरे धीरे आगे बढ़ा, ल्योंही बन में तानपूर के साथ गीत होता हुआ उसको फिर सुनायी पड़ा, अब की बार पूरी पूरी दीप लग रही थी, पवन में तान की लहर सी फैल रही थी । गीत यह था—

गीत ।

फिर रहे हो बने जो मतवाले ।

तो किसीके पड़ेगे तुम पाले ॥

जो कसर काढ़ लेगा सब दिन की ।

ओ किसीकी न माननेवाले k

इस गीत को कपूर भी सुन रहा था । उसने कहा ! बाबू, बन में यह आज गाना कैसा हो रहा है ? इस ओर मैं बहुत आया गया हूँ, पर इस भांत गाना होते कभी नहीं सुना । कामिनीमोहन ने कहा—जान पड़ता है यह जागती हुई धरती है, तभी यहां ऐसा गाना सुनाई दे रहा है, नहीं तो और कोई बात तो समझ में नहीं आती—जाने दो इन पचड़ों को, बन ही है—तुम अपनी बात कहो ।

कपूर । आपके कहने से जिस भांत दस दस पांच पांच दे कर गांव की पचास स्त्रियों को बातमती ने आपके काम के लिए गांठा था, आप जानते हैं । बेले के बने हुए फूल में जो अचेत करनेवाली औषध लगायी गयी थी, उसका भेद भी आपसे छिपा नहीं है । इन्हीं पचास स्त्रियों और बने हुए बेले के फूल ने आपका सब काम कर दिया ।

यह कह कर कपूर ने सारी बातें कह सुनायीं, पीछे कहा फूल को संध कर ज्यों देवहूती अचेत हुई ज्यों पास की पांच छः स्त्रियों ने उसको पकड़ कर एक पालकी में सुला दिया, इसी पालकी में सरला की भोजाई घाट पर आई थी । कहार सब भी साट में थे । ज्यों देवहूती पालकी में सुलायी गयी, ज्यों उन सबोंने पालकी उठा दी । पहले ये सब सीधे सरला की भावज के द्वारपर आये, वहां कुछ घड़ी पालकी उतारी, पीछे पालकी को उठा कर कुछ दूर उसको इस भांत ले चले, जैसे कोई रीती पालकी ले चलता है, गांव के बाहर आकर वे सब पवन से बातें करने लगे—और अब तक उसी ढंग से चले आ रहे हैं ।

कामिनोमोहन । यह तो हुआ, पर क्या इस बात को उसकी मौसी ने नहीं जाना ?

कपूर । वह कैसे जानती ! अब कहार सब पालकी उठा कर चल दिये, उन्हीं स्त्रियों में से दो एकने देवहूती के हाथ से गिर कर पानी में बहते हुए कपड़ा को दिखलाकर ऐसी बातें कहीं, जिससे उसकी मौसी के जी में उसके घड़ियाल के मुख में

पड़ने की बात ठीक जंच गयी—इस घड़ी सारे गांव में यह बात फैल गयी है, देवहूती को घड़ियाल उठा ले गया ।

कामिनीमोहन । बासमती अच्छी चाल चली—पारबती का कान काट लिया ।

कपूर । बात सच है, पर यह स्त्रियों के बीच की बात है, बहुत दिन न छिपेगी ।

कामिनीमोहन । न छिपे, काम निकल जाने पर कोई जान कर ही क्या करेगा । मैं देवहूती से ही ऐसी बातें कहलाऊंगा जिस को सुन कर सभी हाथ मलते रह जावेंगे ।

कपूर । राम ऐसा ही करे । पर इस घड़ी जो करना है, उस को कीजिये, देखिये पालकी खोर तक पहुँच गयी ।

कामिनीमोहन । कहारों से कहे पालकी रख दें ।

कपूर ने पुकार कर कहा, कहारों ने पालकी रख दी, और घर की ओर फिरे । अब जो चार लठधर पीछे थे, वे पालकी लेकर बन में घंसे, कपूर ने इन चारों की आंखों पर पट्टी बांध दी थी । दूर तक वे सब इसी भाँत पालकी लेकर चले—कपूर आगे आगे था । पीछे इन सबोंसे भी पालकी रखा ली गयी । कपूर साथ साथ आकर इन सबोंको खोर तक पहुँचा गया । यहां पहुँचने पर इनकी पट्टी खोल दी गयी—पट्टी खुलने पर ये चारों भी घर फिर आये । कपूर फिर बन में चला गया ।

उन्नीसवीं पंखड़ी ।

बन में जहां जा कर खोर लोप होती थी, वहां के पेड़ बहुत घने नहीं थे। डालियों के बहुतायत से फैले रहने कारण, देखने में पथ अपैठ जान पड़ता, पर थोड़ा सा हाथ पांव हिला कर चलने से बन के भीतर सभी घुस सकता। पथ यहां भूल-भुलाइयां की भांति का था, भूल-भुलाइयां से बच कर आध कोस तक सीधे उत्तर मुंह चलने पर कई एक खंडहर दिखलाये पड़ते—इन खंडहरों के तीन और बहुत ही घना बन था। इन खंडहरों में एक बहुत बड़ा खंडहर था, यह बाहर से देखने पर सब और गिरा पड़ा जान पड़ता। पर इसके भीतर एक बहुत ही अच्छा घर था, जिसको हम गुदड़ी का लाल कहेंगे। इस घर का आँगन बहुत ही सुथरा था। कोठे कोठरियां बहुत ही चिकनी और बढ़िया थीं, बाहर और भीतर के सब द्वारों में अच्छी अच्छी किवाड़ियां लगी थीं। इस घर के बाहर पांच बड़े मोटे मोटे और काले भोल पहरा दे रहे थे। इसी घर को एक छोटी कोठरी में, जिसमें एक छोटा सा द्वार लगा है—देवइत्ती मन मारे चुपचाप एक चढाई पर बैठा है, पास ही एक बढ़िया चौकी पर कामिनीमोहन बैठा है। दो घड़ी रात बीत गयी है, एक पीतल की दीबट पर एक पीतल का चौकोर बीया जल रहा है—शिये में चारों ओर चार मोटी मोटी बलियां लगी हैं।

कामिनोमोहन ने देव हूती को चुप देख कर कहा, क्या तुम न मानोगी, देवहूती ?

देवहूती । मैं न मानूंगी, तुम मेरा क्या करोगे ?

कामिनोमोहन तुमको मेरी बात माननी पड़ेगी, मैं तुम्हारा सब कुछ कर सकता हूँ । क्या तुम इतना भी नहीं समझती हो, मैंने आज क्या किया ! अब तुम्हारी पेंठ नहीं निबह सकती । इस घड़ी मैं जो चाहूँ करूँ, तुम्हारा किया कुछ नहीं हो सकता । पर इस में मैं बिष नहीं घोलना चाहता ।

देवहूती । क्या देवी देवते झूठ हैं ! क्या परमेश्वर सो गया !! क्या धर्म रसातल को चला गया !! क्या बन-देबियां मर गयीं !!! जो तुम ऐसा कहते हो । कभी तुमने किसी सती स्त्री का सस इस भांति बिगाड़ा है, कामिनीमोहन ऐसी बात न कहो—नहीं अभी अन्ध होगा ।

कामिनीमोहन । हां ! ऐसा !!! यह जीवट उस दिन कहा था—जिस दिन तू पहली बार मेरे हाथों पड़ी । उस दिन मुझको बातों में फाँस कर तू निकल गयी—पर अब वह दिन दूर गये । ऐसी भाँस मैंने बहुत देखी है ।

देवहूती । उस दिन मैं जो थी, आज भी मैं वही हूँ । उस दिन जो तुम थे, आज भी वही हो । न तुम उस दिन कुछ कर सके—न आज कुछ कर सकोगे । उस दिन तुम्हारे हाथों से बचने के लिए मुझ से जो कस्ते बन पड़ा, मैंने किया, आज जो करते बनेगा, फिर करूँगी । इस पर मुझको धर्म का बल है ! देवतों का भरोसा है !! भगवान का सहारा है !!! फिर तुम मुझको क्या धमकाते

हो । मुझको मरना होगा, मैं मरूंगी, पर तुम्हारी बात मान कर अपना धर्म न खोऊंगी ।

कामिनीमोहन । देवहूती, मैं अपने जी को बहुत समझलता हूँ । तुम्हारी इन लगती बातों का ध्यान नहीं करता । पर इतना न बढ़ो । नहीं अभी तुमको जान पड़ेगा—मैं क्या कर सकता हूँ ।

देवहूती । कामिनीमोहन, तुम मेरा जी न जलाओ, देखो मेरे पास यह बहुत ही कड़ा बिष है—तुम मेरी ओर दो डग बढ़े नहीं और मैं इसको खा कर मरी नहीं - मुझ मरने का तुम क्या कर सकते हो । उस दिन जो मेरे पास बिष होता, मैं तेरे सामने रडियों का सा स्वांग न लाती । तुम्हारी उस दिन की चाल ही ने मुझको अपने पास बिष रखना सिखला दिया है ।

कामिनीमोहन देवहूती का जीवट देख कर चकर में आ गया । उसने ऊपर बहुत कड़ाई करना अच्छा न समझ कर बोला—देवहूती ! तुम क्यों मरने के लिए इतना उतारू हो ? क्या तुमको अपना जी प्यारा नहीं है ? मरने में क्या रक्खा है, मरनेवाले के लिए चारों ओर अंधेरा है ।

देवहूती । जो पाप करके मरते हैं, उन्हींके लिए चारों ओर अंधेरा है । जो धर्म के लिए मरते हैं, उनके लिए सब ओर वह उजाला है, जिसपर सूरज की आंख भी नहीं ठहरती । मुझको धर्म प्यारा है, अपना जी प्यारा नहीं है । धर्म के लिए मैं जी को निछावर कर सकती हूँ ।

कामिनीमोहन ने देव हूती को चुप देख कर कहा, क्या तुम न मानोगी, देवहूती ?

देवहूती । मैं न मानूंगी, तुम मेरा क्या करोगे ?

कामिनीमोहन तुमको मेरी बात माननी पड़ेगी, मैं तुम्हारा सब कुछ कर सकता हूँ । क्या तुम इतना भी नहीं समझती हो, मैंने आज क्या किया ! अब तुम्हारी पेंठ नहीं निबह सकती । इस घड़ी मैं जो चाहूँ करूँ, तुम्हारा किया कुछ नहीं हो सकता । पर इस में मैं बिष नहीं घोलना चाहता ।

देवहूती । क्या देवी देवते झूठ हैं ! क्या परमेश्वर सो गया !! क्या धर्म रसातल को चला गया !! क्या बन-देबियां मर गयीं !!! जो तुम ऐसा कहते हो । कभी तुमने किसी सती स्त्री का सस इस भांति बिगाड़ा है, कामिनीमोहन ऐसी बात न कहो—नहीं अभी अन्त्य होगा ।

कामिनीमोहन । हां ! ऐसा !!! यह जीवट उस दिन कहा था—जिस दिन तू पहली बार मेरे हाथों पड़ी । उस दिन मुझको बातों में म्मांस कर तू निकल गयी—पर अब वह दिन दूर गये । ऐसी म्मांस मैंने बहुत देखी है ।

देवहूती । उस दिन मैं जो थी, आज भी मैं वही हूँ । उस दिन जो तुम थे, आज भी वही हो । न तुम उस दिन कुछ कर सके—न आज कुछ कर सकोगे । उस दिन तुम्हारे हाथों से बचने के लिए मुझ से जो कस्ते बन पड़ा, मैंने किया, आज जो करते बनेगा, फिर करूँगे । इस पर मुझको धर्म का बल है ! देवतों का भरोसा है !! भगवान का सहारा है !!! फिर तुम मुझको क्या धमकाते

हो । मुझको मरना होगा, मैं मरूंगी, पर तुम्हारी बात मान कर अपना धर्म न खोऊंगी ।

कामिनीमोहन । देवहूती, मैं अपने जी को बहुत समझालता हूँ । तुम्हारी इन लगती बातों का ध्यान नहीं करता । पर इतना न बढ़ो । नहीं अभी तुमको जान पड़ेगा—मैं क्या कर सकता हूँ ।

देवहूती । कामिनीमोहन, तुम मेरा जी न जलाओ, देखो मेरे पास यह बहुत ही कड़ा बिष है—तुम मेरी ओर दो डग बढ़े नहीं और मैं इसको खा कर मरी नहीं - मुझ मरने का तुम क्या कर सकते हो । उस दिन जो मेरे पास बिष होता, मैं तेरे सामने रडियों का सा स्वांग न लाती । तुम्हारी उस दिन की चाल ही ने मुझको अपने पास बिष रखना सिखला दिया है ।

कामिनीमोहन देवहूती का जीवट देख कर चक्र में आ गया । उसके ऊपर बहुत कड़ाई करना अच्छा न समझ कर बोला—देवहूती ! तुम क्यों मरने के लिए इतना उतारू हो ? क्या तुमको अपना जी प्यारा नहीं है ? मरने में क्या रक्खा है, मरनेवाले के लिए चारों ओर अंधेरा है ।

देवहूती । जो पाप करके मरते हैं, उन्हींके लिए चारों ओर अंधेरा है । जो धर्म के लिए मरते हैं, उनके लिए सब ओर वह उजाला है, जिसपर सूरज को आँख भी नहीं ठहरती । मुझको धर्म प्यारा है, अपना जी प्यारा नहीं है । धर्म के लिए मैं जी को निछावर कर सकती हूँ ।

कामिनीमोहन । देवहूती ! तुम सब बातों में धर्म की दुहाई देती हो, पर क्या यह जानती हो धर्म किसे कहते हैं ? काया के कसने में धर्म नहीं है—खाने, पीने सुख भोगने में धर्म है—जिस से जी का बहुत कुछ बोध होता है ।

देवहूती । तुम्हारे लिए यही धर्म होगा, पर मैं तो उसीके धर्म समझती हूँ, जिसको हमारे यहां की पोथियों ने धर्म बतलाया है, जिसको हमारे बड़े बूढ़े धर्म मानते आये हैं । तुम्हारा धर्म ऐसा है, तभी न वह काम करते फिरते हो, जिसको चोर और डाकू भी नहीं कर सकते ।

कामिनीमोहन । तुम्हारे फूल ऐसे होठों से इतनी कड़वी बातें अच्छी नहीं लगतीं देवहूती ! अब मैं चोर और डाकू से भी बुरा ठहरा !!!

देवहूती । तुम्हीं सोचो ! चोर किसीका धन हर लेते हैं—तेरे वह धन उसको फिर मिलता है । पर स्त्रियों का जो धन तुम हरते हो, वह उसको फिर इस जनम में कभी नहीं मिलता । डाकू बहुत करते हैं, किसीका जी लेते हैं; पर तुम स्त्रियों का धर्म लेते हो, जो जी से कहीं बढ़ कर है । फिर क्या बुरा कहा !!!

कामिनीमोहन । जी की लगावट बुरी होती है ! मैं कोई ऐसी बात नहीं कहना चाहता, जिससे तुम्हारा जी दुखे ; पर तुम जो भला बुरा मुँह में आता है, कह डालती हो । तुम्हारा जो भी किसी पर आया है तो तुमको हमारी पीर होती । जिसको कांटों चुभा रहता है, वही पाँव सम्हाल सम्हाल कर रखता है !

देवहूती । यह तुम कैसे जानते हो । मुझको तुम्हारी पीर नहीं है ! ! तुम बड़े बड़े पापों के करने में भी नहीं हिचकते—तुम ने न जाने कितनी भोली भाली स्त्रियों का सत बिगाड़ा है ! न जाने कितने घर में फूट का बोझ बोया है । न जाने कितने भलेमानसों को मिट्टी में मिलाया है—तो क्या यह सब करके तुम योंही छुटोगे । नहीं इन सब पापों के पलटे तुमको नरक में बड़ा दुख भोगना पड़ेगा । यही सब समझ कर मैं तुमको पापों से बचाना चाहती हूँ—ऐसी बातें कहती हूँ जिससे फिर तुम पाप करने की ओर पांव न उठाओ । जो मुझको तुम्हारी पीर न होती मैं ऐसी बात क्यों कहती ।

कामिनीमोहन । नरक स्वर्ग कहीं कुछ नहीं है ! परमेश्वर भी एक धोखे की टट्टी है ! ! तुम्हारा न मिलना ही मेरे लिए नरक है । तुम्हारे मिलने पर मैं इसी देह से स्वर्ग में पहुँच जाऊँगा ।

जिस घड़ी कामिनीमोहन ने ये बातें कहीं, उस घड़ी सब घरों के साथ—देवहूती की चटार्ह—कामिनीमोहन का चौकी—घर में और जो कुछ था वे सब—अचानक हिल डटे, और चौथाई घड़ी तक हिलते रहे । यह देख कर देवहूती ने कहा, देखो कामिनीमोहन ! तुम्हारी बातें धरती माता से भी न सही गयीं—वह भी कांप उठीं । पहले लोगों ने बहुत ठीक कहा है, जब पाप का भार बढ़ जाता है सभी भूचाल आता है ।

कामिनीमोहन । ऐसी ही ऐसी बेजब बातें तुम्हारे जी में समायी हैं, तभी तो तुम किसीकी नहीं सुनती हो । पाप का भार बढ़ने ही से भूचाल नहीं आता, इस धरती के नीचे आग है, जब वह कुछ जलनेवाली वस्तु पाती है, तो उसमें लहर फूटती है । यह लहर

ऊपर निषलना चाहती है, पर धरती की कड़ाई से ऊपर नहीं निकल सकती। उस समय उसका एक धक्का सा धरती के ऊपर लगता है। इसी धक्के से धरती हिल जाती है—और इसी को भूचाल कहते हैं। पर तुम तो मेरी बात मानती नहीं हो, मैं कहूँ तो क्या कहूँ।

देवहूती। अब मानूँगी। देखिये बहुत मन गढ़ंत अच्छी नहीं होता। अभी धरती कांपी है ! अबकी बार छुत टूट पड़ेगी।

कामनीमोहन। भला हो, छुत टूट पड़े, तुम्हारे संग मरने में भी सुख है ;

देवहूती। जो ऐसे ही मरना है तो किसी भले काम के लिए मरो। इस भांति मर कर पड़ुंचने में नरक में भी खलबली पड़ेगी।

कामनीमोहन। अब इसी भांति मरूंगा, देवहूती ! नित्य के जलने से एक दिन किसी भांति मर जाना अच्छा है। देखो ! मेरे पास लाखों की संपत्ति है—बीसों गांव हैं—पचासों टहलुवे हैं—भांति भांति की फुलधारियां हैं—रंग रंग की चिड़ियां हैं—अच्छे अच्छे खेलौने हैं—सजे सजाये हाथी हैं—पवन से बातें करनेवाले घोड़े हैं—खिली चभेली सी घरनी है—सारे गांव पर डांट है—पर मेरा जी इनमें से किसीमें नहीं लगता। रात दिन सोते जागते तुम्हारी ही सूरत रहती है। घड़ी भर भी चैन नहीं पड़ता—फिर मैं इन सबको लेकर क्या करूंगा। मैं इन सबको तुम्हारे ऊपर निछावर करता हूं, आप भी तुमपर निछावर होता हूं, पर तुम मुझसे जी खोल कर मिलो। जो न मिलेगी देवहूती तो अब किसी भांति मरना ही अच्छा है।

देवहूती । लाख, करोड़ की संपत्ति क्या है ! राज मिलने पर भी धर्म नहीं गंवाया जा सकता । महाभारत में भीष्म की कथा पढ़ो, रामायण में जानकी माता को देखो । जहां की मिट्टी पवन पानी से ये लोग बने थे, वहाँ की मिट्टी पवन पानी से मैं भी बनी हूँ । फिर तुम मुझसे धन संपत्ति की लालच क्या दिखलाते हो ! रहा मरना जीना यह तुम्हारे हाथ नहीं, जब तुम्हारा दिन पूरा होगा, तुम आप मरोगे । इसके लिए मैं क्या कर सकती हूँ ।

कामिनीमोहन । तुमारा जी बड़ा कठोर है देवहूती ! मैंने ऐसी रूखी बातें कभी नहीं सुनी, पर जैसे हो मैं तुमको मनाऊंगा । तुम भी यह सोच लो, अब दूध छोड़ने ही में अच्छा है, यहां से तुम किसी भांति बाहर नहीं निकल सकती हो, न वहां कोई किसी भांति आ सकता है । सब भांति तुम मेरे हाथ में हो, कितने दिन तुम्हारी यह टेक रहेगी; द्वार कर तुमको मेरा होना ही पड़ेगा । पर आज तुम सारे दिन ब्रत रही हो, अब तक भूखी हो, इसपर पहर भर पीछे अभी तुमको चेत हुआ है, जो तुम्हारा भुंक्लाया हुआ है, इससे कोई बात तुम्हारे मुँह से सीधी नहीं निकलती । लो अब इस घड़ी मैं जाता हूँ, यह पलङ्ग बिछा हुआ है, तुम इसपर सोओ, कलह मैं फिर मिलूंगा, पर मैं जो कहे जाता हूँ उसको भली भांति सोचना ।

जिस घड़ी कामिनीमोहन ने देवहूती से ये बातें कहीं, उसी समय उसको बन के भीतर फिर पहले की भांति मीठे गले से गीत होता हुआ सुनाई दिया । साथ ही तानपूरा भी वैसे ही मीठे सुर से बज रहा था । गीत यह था—

गीत ।

मन की जहां चौकड़ी न आती ।
 सूरज की किरण जहां न जाती ॥
 है पौन जहां नहीं समाती ।
 घुसने जहां डीठ भी न पाती ॥
 वह ईश वहां भी है दिखाता ।
 बिगड़ी सब है वही बनाता ॥

देवद्वती ने इस गीत को सुना, सुन कर बहुत सुखी हुई । और गीत के पूरा होते ही कहा, सुना ! कामिनीमोहन !

कामिनीमोहन । हां ! सुना क्यों नहीं, पर यह बन है, यहां ऐसी लीला बहुत हुआ करती है. चाहे तुम कुछ समझो, पर इन बातों से तुम्हारा कुछ भला नहीं हो सकता ।

यह कह कर कामिनीमोहन चट कोठरी के बाहर हुआ । और बाहर आकर बन के भोलों से कहा, आज बन में रह रह कर वह गीत कैसा हो रहा है । भोलों ने कहा—बाबू हम लोगों की समझ में भी कोई बात न आती । अच्छा हम दो जन जाते हैं, खोज लगाते हैं । यह कह कर दो भोज बन के भीतर घुस गये—और विचार में डूबा हुआ कामिनीमोहन घर के भीतर आया ।

—:~::~:—

बीसवीं पंखड़ी ।

धीरे धीरे रात बीती, भोर हुआ, बादलों में मुंह छिगाये हुए पूर्व ओर सूरज निकला—किरण फूटी । पर न तो सूरज ने अपना मुंह किसीको दिखलाया, न किरण धरती पर आयी । कल की बातें जान पड़ता है, इनको भी खल रही थीं । काले काले बादलों की ओट में चुपचाप दिन चढ़ने लगा, धीरे धीरे पहर भर दिन आया । देवहूती जिस छोटो कोठरी में रात बैठी थी—अब तक उसमें बैठी है । कल दिन रात भूखी रही—आज भोर ही नहा धो कर कुछ खाना पीना चाहिए था । पर उसने अभी मुंह तक नहीं धोया । रात भी उसकी जागते ही बीती, आंखें चढ़ी हैं—मुखड़ा खिंचा हुआ है—पर घबराहट का उसपर नाम तक नहीं था—वह जैसा गंभीर पहले रहती—अब भी थी । बासमती देवहूती के पास सब ठौर पहुँचा करती—आज यहां भी पहुँचो । देवहूती को चुपचाप गैटे देख कर बोली बेटी ! तुम कब तक इस भांति बैठी रहोगी ? कल का दिन व्रत में बीता, आज अभी तुमने मुंह तक नहीं धोया, जो होना होगा, होगा, तुम अब धारो क्या छेड़ती हो ?

देवहूती । अभी एक बार धोखा खा चुकी हूँ—और उसका फल भी भुगत रही हूँ—क्या अबकी बार फिर किसी दूसरे फंदे में फँसाना है—जो तुम ऐसी चिकनी चुपड़ी बातें कहती हो जिसका फूल सूँघ कर मेरी सुन्न बुन्न खो गयी, उसका अन्न पाना

खा पी कर न जाने' कौन गत होगी !!! बासमती ! तुम क्यों इस भांति मेरे पीछे पड़ी हो ?

बासमती । बेटी ! तू मेरी आंखों की पुतली है, मैं तेरे पीछे क्यों पड़ूंगी । तेरा दुख मुझसे देखा नहीं जाता, तेरी आंखों से आंसू गिरते देख कर मेरा कलेजा फटता है—तब मैं इस भांति दौड़ कर तेरे पास आती हूँ; नहीं तो मुझको इन पचड़ों से क्या काम था । पर मेरा भाग्य बड़ा खोटा है । मैं जिसके लिए चोरी करती हूँ—वही मुझको चोर कहता है ।

देवहूती । मैं तुमको भली भांति जानती हूँ बासमती ! बहुत लक्ष्मी पत्तो अच्छा नहीं होता, तुम अपना काम करो, मेरे भाग्य में जो होना होगा—होगा । मैं तुम्हारी कोई नहीं हूँ—पर तुम मुझपर इतना प्यार जतलाती हो, जितना कोई अपनी बेटी बेटे का भी नहीं करता, तुम्हारी ये बातें ऐसी हैं, जो तुम्हारे पेट का भेद बतलाये देती हैं ।

बासमती । बेटी ! तुम कहोगी क्या ! कलयुग है न !!! अब के लड़के लड़कियाँ ऐसी ही हैं । हम लोग तो बड़ी सीधी हैं ! गाँव के लड़के लड़की को अपना समझती हैं—दूसरेके लड़की को अपने लड़के से भी बढ़ कर प्यार करती हैं । हम लोगों का जैसा भीतर है, वैसा ही बाहर है, हम लोग कपट करना क्या जाने ।

देवहूती । ठीक है ! दूसरेके घर की बहू बेटी को बिगाड़ना, भोली भाली स्त्रियों को ठग कर कुचाली पुरुषों के हाथ में डाल देना, तुम ऐसी सीधी सतयुग की स्त्रियों का काम थोड़े हो है—यह तो कलयुग की स्त्रियों का काम है । बासमती ! मेरा बड़ा भाग्य

है—जो आज मैं यह जान गयी—नहीं तो मेरा मन तुम्हारे ऊपर न जाने कितना कुढ़ता था ।

बासमती । बेटी ! तुम अभी कल की लड़की हो—बहुत मन उड़े । तुम्हारा मन मेरे ऊपर कड़ता है—कुढ़े, पर मेरा मन तो तुम से नहीं कुढ़ता ! मैं वही बात कहती हूँ, जिसमें तुम्हारा भला हो, पर उसको मानना तुम्हारे हाथ है ।

देवहूती । मेरा बड़ा अभाग्य है ! जो मैं इस बात को नहीं समझती हूँ । सच है बासमती ! तुमसे बढ़ कर मेरा भला चाहने-वाला कौन होगा !!!

बासमती । तुम्हारी ऐंठने की बान है—इससे तुम सब बातों में ऐंठती हो । मेरी अच्छी बात भी तुमको खोटी जान पड़ती है । पर सचमुच तुम्हारा बड़ा अभाग्य है, जो तुम इस भांति सोने को पांव दिखलाती हो, कामिनीमोहन ऐसा चाहनेवाला भाग्य से मिलता है । डुबकी बहुत लोग लगाते हैं—पर मोती कोई पाता है । कामिनीमोहन पर कितनी स्त्रियां निछावर हुईं, पर कामिनीमोहन तुमपर आप निछावर है । इसपर लाखों की संपत्ति आगे रखता है—सदा के लिए तुम्हारा दास बनता है—क्या ये बातें ऐसी हैं—जिनपर तुम डीठ न डालो । पर मिठाई खाने के लिए भी मुंह चाहिए । भील वी स्त्रियां घुंघुची का ही आदर करती हैं—वे लाल का मरम क्या जानें ॥

देवहूती । सच कहा, बासमती ! बनरी के गले में मोती की माका नहीं सोहती !!! पर कठिनाई तो यह है—इसपर भी मेरा जी नहीं छूटना ।

बासमती । मुंह मत चिढ़ाओ बेटी ! मेरी बातों को अपने जी में सोचो । क्या तुम्हारा यह जोवन सदा ऐसा ही रहेगा ? क्या आंखें ऐसी ही रसीली रहेंगी ? क्या गोरे गोरे मुखड़े पर ऐसी ही छटा रहेगी ? क्या देह ऐसी ही चिकनी चुपड़ी रहेगी ? क्या चितवन में सदा ऐसा ही टोना रहेगा ? कभी नहीं ! ! ! कुछ ही दिनों में, जोवन ढल जावेगा, आंखों में काली लग जायेंगी, गालों में गड़हे पड़ेगे, मोती ऐसे दांत मिट्टी में मिलेंगे, देह पर भुर्रियां पड़ जायेंगी, और तुम्हारी सब पे'ठ धूल में मिल जावेगी । आज एक राजाओं सा धनी, देवतों सा सुघर और सजीला, तुम्हारी सीधी चितवन का मिखारी है । पर कुछ दिनों पीछे तुम्हारी और एक गया बीता भी आंख उठा कर न देखेगा—जो धोखे से किसीकी आंख पड़ भी जावेगी—तो वह नाक भौंह सिकोड़ने लगेगा । तुम्हारे ये दिन सब कुछ हैं—आगे क्या है—पर तुम इन्हीं दिनों बिष खाने बैठी हो—बलिहारी है इस समझ की ।

देवहूती । ठीक कहती हो बासमती ! जो मैं इन्हीं दिनों कुछ कमा घमा न लूंगी, तो आगे फिर कौन पूछेगा ! ! ! अब तक रूप और जोवन बेचते रंडियों ही को सुना था । पर आज जाना, भले घर की घड़ बेटियां—भली स्त्रियां—भी अपना रूप जोवन बेचती हैं । भल मारते हैं लोग जो रंडियों को बुरा समझते हैं ।

बासमती । बहुत न बढ़ो ! बहुत सी भले घर की बहू बेटियां देखी हैं । वह कौन स्त्री है जो कामिनीमोहन जैसे अलबेले जवान को देख कर उसकी नहीं होती । जिनको लाखों की संपत्ति है, जिनका काम ऐसा सुन्दर पति है, मैं उनकी बातें कहती हूं ।

जो तुम्हारी ऐसी हैं—वे किस गिनती में हैं । तुम्हारे पास न तो जैसे चाहिए वैसे गहने कपड़े हैं—न पूरा पूरा धन है—न तुम्हारे पति का ही कहीं ठौर ठिकाना है । पर तुम इन बातों को न समझ कर उलटे मुझीसे इठलाती हो—भाग्य का फेर इसीको कहते हैं ।

देवहूती । अब समझूंगी बासमती ! भला तुम्हारे ऐसी समझानेवाली कहाँ मिलेगी ! पर तुम भी समझो, जो सचमुच भले घर की बहू बेटा हैं ! जो कहने सुनने को भली स्त्री नहीं है ! जो पहनने को उसके पास कपड़ा तक न हो—हाथ में चूड़ी तक न हो—खाने को दो दो दिन पीछे मिलता हो—पति भी निकम्मा और निखट्टू हो—तो भी वह अपनी मरजाद नहीं गंवा सकती—अपना सत नहीं बिगाड़ सकती—और अपना धर्म नहीं खो सकती । जिसको रत्ती भर समझ होगी—वह थोड़े से सुख के लिए सदा नरक की आग में जलना अच्छा न समझेगी । तुम कहती हो, यह जोबन सदा ऐसा ही न रहेगा, जोबन ढल जाने पर कोई सीधे आँख उठा कर न देखेगा—इस से पाया जाता है, जबतक जोबन है, तभी तक पूछ है, पीछे घोर अंधियाला है । तो क्या येही बातें ऐसी हैं—जिससे जोबन के दिनों में जी खोल कर मनमानी करनी चाहिए ? आँख मूँद कर पाप पुण्य का बिचार छोड़ देना चाहिए ? ये बातें तो ऐसी नहीं हैं !!! ये बातें तो हमको और डरानी हैं, डंका बजा कर कहती हैं, चार दिन के जोबन पर मत भूलो, पाप मत कमाओ, यह जोबन बाढ़ के पानी की भाँति देखते देखते निकल जावेगा, फिर पड़ताना ही हाथ रहेगा । इससे पहले ही समझ दृक्कर

चलो, जो रङ्ग इतना कच्चा है, उसके भरोसे पाप करना अच्छा नहीं !

बासमती । जान पड़ा बेटो ! तुम नरक स्वर्ग का भेद भली भाँति समझती हो, धर्म का मरम भी जानती हो, पर यह तो बल्लाओ—अपनेको आप मार देना किस पोथी में पुण्य लिखा है ? क्या बिष खाकर मर जाना पाप नहीं है ?

देवहूती । जो मैं ऐसा न समझती, बिष खा कर कभी मर गयी होती ; मुझको जीना भी भारी है, पर मैं जो अब तक बिष खा कर नहीं मरी, क्या उसका दूसरा कारण है ? नहीं दूसरा कारण नहीं है ! मैं जानती हूँ, मेरी यहां की पोथियों में ऐसा करना बड़ा पाप लिखा है, तभी मैं आज तक ऐसा न कर सकी । पर धर्म की रक्षा के लिए किसी काम का करना पाप नहीं है । जब मैं देखूंगी मेरा धर्म जाता है—पापी के हाथ से अब छुटकारा नहीं मिलता, उस दिन के लिए बिष मेरे पास है । उस घड़ी मैं बिष खाऊंगी, और बिष खा कर अपने धर्म की रक्षा करूंगी ।

बासमती । यह तो बिष का पचड़ा हुआ—पर अन्न पानी छोड़ कर जी को कलपा कलपा कर मारना क्या है ? यह कोई पुण्य होगा ?

देवहूती । नहीं, यह भी पाप है ! पर अन्न पानी कौन छोड़ता है । यहां दो चार दिन मैं अन्न पानी न खाऊंगी तो क्या अब मैं अन्न पानी खाऊंगी ही नहीं ? ऐसा तुम समझ सकती हो—मेरा यह विचार नहीं है । मुझको यहाँ अन्न पानी खाने पीने में

भी कोई अटक नहीं है, पर क्या करूं, अब तुम लोगो की परतीत नहीं रही ।

बासमती । जो जी में आवे करो, जब तुमको अपनी ही बात रखनी है, तो मैं कहां तक कहूं । पर बहुत हठ अच्छा नहीं होता, यहां से तुम्हारा छुटकारा अब कभी नहीं हो सकता—दो चार दिन नहीं, दो चार बरस में भी यहां कोई नहीं पहुँच सकता । पर मुझसे रहा नहीं जाता, एक बात मैं फिर कहती हूँ । जो तुम यहां का अन्न पानी काम में नहीं ला सकती हो, तो क्या बनफल और झरनों का पानी भी खा पी नहीं सकती हो ?

देवहूती । जो मेरे जी में आवेगा, मैं करूँगी । अपना प्राण सब को प्यारा होता है—पर तुम किसी भाँति मेरी आंखों के सामने से दूर हो ।

बासमती । बेटी ! जितनी तुम टेढ़ी हो, मैं उतनी टेढ़ी नहीं हूँ । जो तुमको मेरा यहां रहना अच्छा नहीं लगता तो मैं जाती हूँ । मैं पहरों के भीलों से कहे जाती हूँ—वह तुमको बन में जाने से न रोकेंगे । तुम बन में जा कर अपनी भूख प्यास बुझा आओ । पर भागना मत चाहना, नहीं तो भीलों के हाथ से दुख बढाओगी । यह कह कर बासमती चली गयी ।

इक्कीसवीं पंखड़ी ।

बासमती के चले जाने पर देवहूती अपनी कोठरी में से निकली, कुछ घड़ी आँगन में टहलती रहो, फिर ज्योढ़ी में आयी। वहाँ पहुँच कर उसने देखा, बासमती पहरे के भीलों से बातचीत कर रही है। यह देख कर वह किवाड़ों तक आयी—और बहुत फुर्ती के साथ किवाड़ों को लगा कर—फिर भीतर लौट गयी। जब देवहूती अपनी कोठरी के पास पहुँची—देखा उस कोठरी में से एक जन आँगन की ओर निकला आ रहा है। यह देख कर वह भौचक बन गयी—सोचा राम राम करके अभी बासमती से पीछा छूटा है—फिर यह विपत कहाँ से आयी। बड़ा अचरज उसको इस बात का था—यह कोठरी में आया तो कैसे आया ? उसमें तो कहीं से कोई पथ नहीं जान पड़ता ! ! ! देवहूती घबराने को तो बहुत घबरायी—पर उसके जी को कुछ ढाढ़स भी हुआ। उसने पहचाना यह वही जन है—जिसने उस अंधियाली रात में उसके कोठे पर कामिनीमोहन से उसका सत बचाया था। देवहूती यह सब जान बूझ कर कुछ सोच रही थी, इसी बीच उसने पास आकर कुछ दूर से पूछा, देवहूती ! मुझको पहचानती हो ?

देवहूती ने सर नीचे करके कहा—क्यों नहीं पहचानती हूँ ! जिसने प्राण से भी प्यारे मेरे धर्म की रक्षा की, क्या मैं उस को भूल सकती हूँ !

आये हुए जन का नाम देवस्वरूप है, यह आप लोग अब समझ गये होंगे। देवहूती की बातों को सुन कर उसने कहा— मैं तुमसे कुछ बातचीत करने के लिए यहां आया हूँ—मुझ से बात चीन करने में तुमको कुछ आनाकानी तो नहीं है? मैं नहीं चाहता बिना पूछे तुमसे सारी बातें कहने लगूँ।

देवहूती। मुझको चेत है—आपने उस दिन कहा था, जो लोग धर्म की रक्षा के लिए कभी कभी इस धरता पर दिखलाई देते हैं—मैं वही हूँ। जो सचमुच आप वही हैं तो आपसे बातचीत करने में मुझको कुछ आनाकानी नहीं है। पर बात इतनी है, इस भांति आपसे बातचीत करते मुझको इस सुनसान घर में जो कोई देख लेगा—तो न जाने क्या समझेगा। जो कोई न देखे तो धर्म के विचार से भी किसी सुनसान घर में किसी पराई स्त्री का पराये पुरुष के साथ रहना और बातचीत करना अच्छा नहीं है। आप बड़े लोग हैं, इन बातों का सोच कर जो अच्छा जान पड़े कीजिये, मैं आपसे बहुत कुछ नहीं कह सकती।

देवस्वरूप। मैं यह जानता हूँ बासमती यहां आयी हुई है—दूसरी बातें जो तुम कहती हो मुझको भी उनका वैसा ही विचार है। मैं कभी यहां न आता, पर एक तो मैंने देखा, बिना अन्न पानी तुम मर जाना चाहता हो। दूसरे आज अभी एक ऐसी बात हुई है, जिससे तुम्हारी सारी बिपत कट गयी। मुझको यह बात तुमको सुनानी थी, इसी लिए मुझको यहां आना पड़ा।

देवहूती। वह कौन सी बात है जिससे मेरी सारी बिपत कट गयी? आप दया करके उसको बतला सकते हैं?

देवस्वरूप । कामिनीमोहन कलह रात ही में बासमतो को यहां छोड़ कर घर चला गया था । आज दिन निकले वह गांव से इस बन की ओर घोड़े को सरपट फेंकता हुआ आ रहा था । इसी बीच एक गीदड़ एक भाड़ी से दूसरी भाड़ी में ठोक घोड़े के सामने से हो कर दौड़ता हुआ निकल गया । घोड़ा अचानक चौंक पड़ा—और उसपर से थड़ाम से कामिनीमोहन नीचे गिर पड़ा । गिरते हो उसका सर फट गया—और वह अचेत हो गया । उसके लोग जो पीछे आ रहे थे—घड़ी भर हुआ उसको उठा कर घर ले गये । जैसी चोट उसका आयी है—इससे अब उसके बचने का कुछ भरोसा नहीं है—मैं इसीसे कहता था तुम्हारी सारी बिपत कट गयी ।

देवहूतो । कामिनीमोहन ने अपनी करनो का फल पाया है, और मैं क्या कहूं !!! पर सचमुच क्या आप कोई देवता हैं, जो इस भांति बिना किसी स्वार्थ के दूसरोंका दुख दूर करते फिरते हैं !

देवस्वरूप । मैं देवता नहीं हूं—एक बहुत ही छोटा जीव हूं । उस दिन मैंने यह बात इस लिए कही थी—जिसमें कामिनीमोहन डर कर पाप करना छोड़ देवे ।

देवहूती । अभी आपको मुझसे कुछ और कहना है ?

देवस्वरूप । दो बातें कहनी हैं । एक तो तुम कुछ खाओ पीओ—दूसरे यहां का रहना छोड़ कर घर चलो । तुम्हारी मा की तुम्हारे बिना बुरी गत है—इनकी दशा देख कर पत्थर का कलेजा भी फटता है ।

देवहूती। आपका कहना सर आंखों पर—आपमें बड़ी दया है। पर आप जानते हैं स्त्रियों का धर्म बड़ा कठिन है! आपने मेरी बहुत बड़ी भलाई की है—मेरा रोआं रोआं आपका ऋणी है। पर इतना सब होने पर भी आप निरं अनजान हैं—आप जैसे अनजान और बिना जान पहचान के पुरुष के साथ मैं कहीं आ जा नहीं सकती। दूसरे जो दो दिन पीछे मैं इस भांत अचानक घर चली चलूं तो मा न जाने क्या समझेंगी। अभी तो उन्होंने यही सुना है—मैं डूब कर मर गयी—रो कल्प कर उनका मन मान हो जावेगा। पर जो कहीं उनके मन में मेरी ओर से कोई बुरी बात समायी—तो अनर्थ होगा—मेरा उन का दोनोंका जीना भारी होगा। रहा कुछ खाना पीना, इसके लिए अब आप कुछ न कहें। मैं समझ वृथ्वा कर जो करना होगा करूंगी।

देवस्वरूप। बात तुम बहुत ठीक कहती हो—मैंने तुम्हारी इन बातों को सुन कर बहुत सुख माना। पर इतना मुझको और कहना है—इस बन से तुम्हारा छुटकारा बिना मेरी परतीत किये नहीं हो सकता।

देवहूती। क्या मैं आपकी परतीत नहीं करती हूं—यह आप न कहें। मेरा धर्म क्या है, इस बात को आप सोचिये! और बतलाइये मुझको क्या करना चाहिए। इस जग में सैकड़ों बातें लोग पेसी करते हैं—जिनमें ऊपर से देखने में उनका कोई अर्थ नहीं होता—पर समय पा कर उन्हीं बातों में उनकी बड़ी दूर की चाल पायी जाती है। आज जिसको किसीकी भलाई के

लिए अपना तन मन धन सब निष्ठावर करते देखते हैं—कलह उसीको इसके साथ अपने जी की किसी बहुत ही छिपी चाह के लिए ऐसा बुरा बरताव करते पाते हैं—जिसको देख कर बड़े पापी के भी रोंगटे खड़े होते हैं । ये बातें ऐसी हैं जिनका मरम आप जैसे बड़े लोग भी ठीक ठीक नहीं पाते । स्त्रियां क्या हैं जो इन भेद की बातों का और छोर पा सकें । इसीलिए उन को यह एक मोटी बात बतलायी हुई है—अपने इने गिने जान पहचान के लोगों को छोड़ कर दूसरेको पतिग्राना उनका धर्म नहीं है । मैं आपसे इन्हीं बातों को सोचने के लिए कहता हूं । रहा इस बन से छुटकारा पाना । यह एक ऐसी बात है जिसके लिए मुझको तनिक घबराहट नहीं है—अपजस के साथ घर लौटने से जस के साथ बन में मरना अच्छा है ।

देवस्वरूप—मैं तुम्हारे इन विचारों को सराहता हूं ! तुम्हारे धीरज करने से ही तुम्हारी सारी बिपत कटती है ।

देवस्वरूप के इतना कहते ही उसी कोठरी में से एक जन और देवहूती की और आता दिखलायी पड़ा । इसके सिर पर बड़ी बड़ी जटाएं थीं, उसकी बहुत ही घनी उजली और लम्बी दाढ़ी थी, जो छाती पर भोड़ेंपन के साथ फैली थी, मुकुड़े पर तेज था, पर यह तेज निखरा हुआ तेज न था, इसमें उदासी की छींट थी । माथे में तिलक, गले में तुलसी को माला, बायें कंधे पर जनेऊ और हाथ में तूमा था । अंचले की भांति एक धाती कमर से बंधी थी—जो कठिनाई से ठेढ़ने के नीचे तक पहुँचती था । स्वभाव बहुत ही सीधा और भला जान पड़ता था, भलमनसाहत 'रोए' 'रोए' से

टपकती थी । जब यह देवहूती के पास पहुँचा, देवस्वरूप ने कहा, देवहूती इनकी ओर देखो, इनको मत्था नवाओ, और अब तुम इनके साथ जाकर कुछ खाओ पीओ, मैं देखता हूँ तुम्हारा जी गिरता जाता है—इनके साथ जाने में भी क्या तुमको कोई अटक होगी ?

देवहूती ने बड़ी कठिनाई से सर उठा कर इस दूसरे जन की ओर देखा, देखते ही चौंक उठी मानो सोते से जाग पड़ी । उस के जी में बड़ा भारी उलट फेर हुआ—कुछ घड़ी वह ठीक पत्थर का मूर्ति बन गयी । पीछे उसकी आंखों से आंसू बह निकले । देवस्वरूप ने उस दूसरे जन का भी रंग कुछ पलटता देख कर कहा—देखो इन सब बातों का अभी समय नहीं है—इस घड़ी चुपचाप यहां से निकल चलना चाहिए, फिर जैसा होगा देखा जावेगा । यहां ही रहने में भी अब कोई खटका नहीं है—बासमती कुछ कर नहीं सकती । पर जब तक कामिनीमोहन का क्या हुआ, यह ठीक ठीक न जान लिया जावे, तब तक किसी हाथ आयी बात में चूकना अच्छा नहीं । देवस्वरूप की बातों को सुन कर दूसरा जन कोठरी की ओर चला—देवहूती बिना कुछ कहे उसके पीछे चली । इन दोनों के पीछे देवस्वरूप चला—“तीनों कोठरी में आये ॥

कोठरी में पहुँचकर देवहूती ने देखा वहां की धरती में एक सुरङ्ग है—और उसी सुरङ्ग में से हो कर नीचे उतरने का सीढ़ियां हैं । इसी पथ से हो कर ये तीनों जन नीचे उतरे ।

नीचे उतर कर देवस्वरूप ने वहाँ लटकती हुई एक लम्बी रस्ती को पकड़ कर खींचा, उसके खींचते ही सुरङ्ग का मुँह मुंद गया— और नीचे ऊपर पहले जैसा था—ठीक वैसा ही हुआ। पीछे वह तीनों जन नीचे ही नीचे बन में एक ओर निकल गये ॥

—:०:—

बाइसवीं पंखड़ी ।

दिन बीतता है, रात जाती है, सूरज निकलता है, फिर डूबता है, साथ ही हमारे जीने के दिन घटते हैं। हम लोगों से कोई पूछता है, तो हम लोग कहते हैं, मैं बीस बरस का हुआ, कोई कहता है, मैं चालीस का हुआ। कहने के समय तनक भी हिचिक नहीं होती—मुखड़ा वैसा ही हंसता रहता है—मानों हम लोग जानते ही नहीं मरना किसे कहते हैं; पर सच बात यह है—हम बीस बरस—चालीस बरस—के नहीं होते। हमारे जीने के दिन में से—बीस बरस—चालीस बरस—घट जाते हैं। जो हम को पचास बरस जीना है—तो अब हमारा दिन पूरा होने में—तीस बरस—और दस बरस—और रह जाते हैं। दूर तक सोचा जावे तो इसमें हिचिकने और मुंह के उदास बनाने की कोई बात है भी नहीं—मगना इतना डरावना नहीं है, जितना लोग समझते हैं। सच तो यों है मरने ही से जीने का आदर है—जो जग में मरना न होता—लोग जीने से घबरा जाते, न तो खाना कपड़ा मिलता, न ठहरने को ठौर मिलती, न रहने को घर अंटता, उस समय धरती पर कैसा लौट फेर होता—यह बात सोचने से भी जी कांपता है। पर हम बहुत दूर की बात नहीं कहते हैं—हम उसी बात को दिखाते हैं जिसको सोच कर सभी मरने से डरते हैं। धरती एक अनाखी ठौर है, इसपर जनम ले कर एक न एक बात में सभी उलझ जाते हैं। जिस ढंग का

जिसका जी होता है—प्यार करने के लिए वैसा ही बहुत कुछ उसको यहां मिल जाता है । एक चितरे को तो, देखो वह यहां के फूल फूल पत्तियों, चमकते हुए सूरज, प्यारी किरणोंवाले चाँद, जगमगाते हुए तारों, सुधरे जलवाणी भीलों, हरे भरे जङ्गलों, डजले धौले पहाड़ों, कलकल बहती हुई नदियों, चाँद से मुखड़ेवाणी नबेलियों, बाँके बाँके बीरों, और दूसरी सहज ही जी लुभानेवाणी छटाओं को कितना प्यार करता है । इनको ले कर वह कैसी कैसी काट छांट करता है—कैसे कैसे बेल बूटे बनाता है । दिन रात होती है, सूरज उगता और डूबता है, पर उसको इन कामों से छुट्टी नहीं । वह देखता सब कुछ है, समय पर करता सब कुछ है, पर जैसा चाहिए उसका जी इधर नहीं रहता । वह अपनी धुन में डूबा हुआ, अपनी ही काट छांट में लगा रहता है । कितनी मूर्तियां बनाता है—कितने बन, परबत, नदी, भीलों की छबि उतारता है । पर फिर भी सोचता है, अभी मुझको बहुत कुछ करना है । अभी मैंने यह मूर्ति नहीं बनायी, अभी तक मूर्ति में रङ्ग भरना है, इस मूर्ति के गालों की लाली ठीक नहीं उतरी, भौंहें भी ठीक ठीक नहीं बनीं, आँखों के बनाने में तो मुझसे बहुत ही चूक हुई, तिरछी चितवन क्या योंही दिख जायी जाती है !!! वह यही सब सोचता रहता है, इसी बीच काल उसको आ घेरता है—मन की बात मन ही में रह जाती है, वह कितनी बातों के लिए छुटपटाता है—पर करे तो क्या करे—बिष की सी घूंट घोंट कर वह काल का सामना करता है—और बहुत सी चाहों को जी में रखे हुए इस धरती से उठ जाता है । इसी

भांति कोई घर बार वाल बच्चों में बभ्रता रहता है, कोई पूजा पाठ और जप तप में लगा रहता है, कोई राजकाज और धन धरती में फसा होता है, कोई गाने बजाने और हंसी खेल में मतवाला होता है, पर सभी के ऊपर काल अचानक टूटता है, और सभी को परबस इस धरती से उठा ले जाता है—सभी अपना काम अधूरा छोड़ते हैं, पछताते हैं, पर कुछ कर नहीं सकते ।

कामिनीमोहन की भी आज ठीक यही दशा है—वह खाते पीने, सोते जागते, भोले भाले मुल्लड़े का ध्यान करना, जहां रसीली बड़ी बड़ी आंखें देखता वहीं लट्टू होता, गोरे गोरे हाथों में पतली पतली चूरियां उसको बाबला बनातीं, सुरीते कण्ठ का बोल सुन कर वह अपनी देह तक भूल जाता, गदराया हुआ जोबन उसके कलेजे में पीर उठाता—उसकी इन्हीं बातों ने उसको नयी नयी जवान स्त्रियों का रसिया बनाया । कितनी स्त्रियों का सत उसके हाथों खेया गया, कितनी स्त्रियां उसके हाथों मिट्टी में मिलीं, पर उसको चाह न घटी, आज कल वह देवहूती पर मर रहा था, बिना देवहूती चारों ओर उसकी आंखों के सामने अन्धेरा था । पर काल ने उसको इन बातों को न सोचा, आज वह काल के हाथों पड़ा है, काल को उसकी तनिक पीर नहीं है, आज वह उसको धरती से उठा लेना चाहता है ।

कामिनीमोहन अपने घर की एक कोठरी में एक पलंग पर पड़ा हुआ आंखों से आसू बहा रहा है । वहीं दस पांच जन और बैठे हुए हैं । दो चार जन उसकी समझल कर रहे हैं—गांभ

के पुराने बैद पास बैठे हुए देख भाल कर रहे हैं। पर उनके मुखड़े पर उबासी छायी हुई है—वे कामिनीमोहन की दशा घड़ी घड़ी बिगड़ते देख कर हाथ मल रहे हैं, पर उनसे कुछ करते नहीं बनता। कामिनीमोहन पहले अचेत था, पर बैद ने दो एक बलवाली ऐसी औषधें खिलायी हैं, जिससे अब वह चेत में है। पर चेत में होने ही से क्या होता है—लहू सर से इतना निकल गया है—और चोट इतनी गहरी आयी है—जिससे अब लोग उसकी घड़ी गिन रहे हैं—कामिनीमोहन के पास जो दस पांच जन बैठे हैं उनमें कुछ साधू और कुछ घरबारियों के भेस में एक जन और बैठा है। इसका मुखड़ा भी उदास है, जी पर कुछ चोट सी लगी जान पड़ती है, आंखें भी थिर हैं, पर कभी कभी बिजली की कौंध की भांत मुखड़े पर तेज भी झलक जाता है। साथ ही मुंह का एक ठण्ठी सांस निकल कर बाहर की पवन में मिल जाती है। इसने कामिनीमोहन को अपनी ओर निराशा-भरी डीठ से बार बार ताकते देख कर कहा, क्या आप मुझको पहचानते हैं ?

कामिनीमोहन। हां ! पहचानता हूं ! देवस्वरूप आपका नाम है। उस दिन आप देवहूती की बिपत में सहाय हुए थे, क्या आज मुझको बिपत से बहारने के लिए आप यहां आये हैं ?

देवस्वरूप की आंखों में पानी आया, उन्होंने कहा, मेरे हाथों जो आपका कुछ भला हो सके तो मैं जी से इसको करना चाहता हूं, आपकी दशा देख कर मुझको बड़ा दुख है। पर क्या करूं, मेरा कोई बस नहीं चलता। उस दिन देवहूती को

बचाने के लिए जी पर खेल गया था, आज आपके लिए भी अपनेको जोखों में डाल सकता हूँ, पर कैसे आपका भला होगा—यह मुझको बतलाया जाना चाहिए । मैं, जितने जीव हैं सबका भला करना, सबको बिात से उबारना, अपना धर्म समझता हूँ—आपका भला करने में क्यों हिचकूंगा ।

कामिनीमोहन । आप बड़े लोग हैं जो ऐसा कहते हैं—सब तो यों है, अब मैं किसी भांति नहीं बच सकता—मेरे दिन पूरे हो गये । पर आप किसी भांति यहां आ गये हैं, तो मैं आपसे दो चार बातें पूछना चाहता हूँ, क्या आप उनको बतला सकते हैं ?

देवस्वरूप । मैंने जो कुछ किया है—धर्म के नाते किया है, धर्म में खोटा नहीं होती—आप पूछें मैं सब बातें सच सच कहूंगा ।

कामिनीमोहन ने इतना सुन कर, जो लोग कोठरी में बैठे थे बैद छोड़ उन सब लोगों से कहा, आप लोग थोड़ी बेर के लिए बाहर जाइये । उन लोगों के बाहर चले जाने पर उसने देवस्वरूप से कहा—पहले यह बतलाइये उस दिन आप देवहूती के कोठे पर कैसे पहुँचे, क्या आप देवहूती के कोई हैं ? जो आप देवहूती के कोई नहीं हैं—तो आपने मेरी भेद की बातों को कैसे जान लिया ।

देवस्वरूप । बड़ों ने कहा है पाप कभी नहीं छिपता, क्यों उन्होंने ऐसा कहा है, यह बात थोड़ा सा विचार करने पर अपने आप समझ में आती है । सच बात यह है—जिन पापों को हम बहुत छिप कर करते हैं, उनके भी देखने सुननेवाले मिल जाते हैं ।

एक ही समय सब ओर न देखनेवाली हमारी आंखें चूकती हैं—
 दुमरी ओर लगा हुआ हमारा कान पास की बात भी नहीं
 सुनता । पर हमारे कानों की ओर लगी हुई देखनेवालों की
 आंखें—हमारी बहुत ही धीरे कही गयी बातों को ओर लगे हुए
 सुननेवालों के कान—अपने अपने अवसर पर नहीं चूकते । बहुत
 ही चुपचाप ये सब अपना काम करने हैं—और हमारी बहुत
 सी बातों को जान कर हमारी बहुत सी होनेवाली बुराइयों
 का हाथ बंटाते हैं । पीछे इन्हीं देखने सुननेवालों से हमारे
 पापों का भण्डा फूटता है । जिस दिन आपने रात में मुझको
 देवहूती के कोठे पर पाया, उसी दिन दोपहर को मैं देवहूती के
 घर के पासवाले पीपल के पेड़ के नीचे बैठा था । इस पीपल
 के पेड़ के पास एक पक्का कूँआ है—इसी कूँए पर मुझको दो
 स्त्रियाँ बात करती दिखलाई पड़ीं । उनमें एक बासमती थी,
 और दूसरी भगमानी । उन दोनों में बातचीत धीरे धीरे हो रही
 थी, पर मैं सब सुनता था । एक दो बार बासमती की डीठ मेरी
 ओर फिरी थी, पर उसने मुझको देख कर भी नहीं देखा । एक
 बार जब उसकी डीठ मुझपर पूरी पड़ी, तो वह कुछ चौंकी, पर
 उसी क्षण वह समझ गयी मैं बटोही हूँ । जो मैं गांव का होता तो
 उसको कुछ डलभन होती भी, पर बटोही समझ कर वह मेरी
 ओर से निचिन्त हो गयी । और जो बातें भगमानी से कहने को
 रह गयी थीं, उनको भी उसी भाँति धीरे धीरे उसने उससे कहा,
 पीछे दोनों वहाँ से चली गयीं । जितनी बातें बासमती और भग-
 मानी में हुईं—उनको सुन कर मैं उस दिन होनेवाली सब बातों

को भली भांति जान गया, और उसी समय अपने मन में ठाना, जैसे हो एक भले घर की स्त्री का सत बचाना चाहिए। यह सब सोच कर मैं छः घड़ी रात गये, देवहूती के घर के पिछवाड़े एक ठौर ओलती के नीचे आकर खड़ा हुआ। आप अपने दोनों साथियों के साथ ठीक मेरे पास से होकर निकले थे—पर आपने मुझको नहीं देखा। जिस खिड़की से होकर हम और आप ऊपर गये थे—वह खिड़की उस ठार के बहुत पास थी। आपको दो और साथियों के साथ देख कर मैं घबराया, पर कुछ ही घेर में मेरी विपत टल गयी। जब आपके दोनों साथी आपके गहनों का डब्बा लेकर वहां से नौ दो ग्यारह हुए। उन दोनों के चले जाने पर मैं कोठे पर चढ़ा। कोठे पर जो कुछ हुआ, वह सब आप जानते हैं। मैंने बातचीत के समय आपको कहा था, जहां वह दोनों गये वहां तू भा जा, पर उस समय उनको भगा हुआ जानकर मैंने आपको घबड़ा देने के लिए ऐसा कहा था, मेरा उस समय ऐसा कहने का कोई दूसरा अर्थ न था।

कामिनीमोहन। एक बात तो हुई—दूधरी बात मुझको यह पूछनी है—क्या इस गांव के बन में भी आप आ जा सकते हैं? क्योंकि कलह जब मैं बन में गया था, तो उसमें कई बार मैंने गाना होते सुना। यह गाना आप ही के गले से होता जान पड़ता था; क्योंकि आपके गले को मैं भली भांति पहचानता हूं।

देवस्वरूप। उस दिन मैंने तो कुछ देखा सुना, उससे मेरे जी में बहुत बड़ी उत्तमन्न पड़ गयी। सब बातें जानने के लिए मेरा जी उकताने लगा। पर मुझको कोई बात ऐसी न सूझी, जिस से मेरा काम निकल सके। इसलिए मैं गांव के बाहर धुनी रमा

कर साधुओं के मेस में बैठा, यहां मुझको तुम्हारी बहुत सी बात जान पड़ीं। पर देवहूती पर तुम्हारा जी आया हुआ है—और तुम बसको फांसना चाहते हो, ये बातें मैंने किसीसे न सुनीं। हां, तुम्हारी चालचलन की जितनी बुराई सुनी गयी, बतना ही पारबती और देवहूती के चालचलन को लोगों को सराहते सुना। लोगों ने तुम्हारी और बातों के साथ तुम्हारे बन के अड्डे की चर्चा भी मुझसे की। सभीने मुझसे यही कहा, न तो उसमें कोई जा सकता है और न वहां का भेद कोई जानता है, पर इतना सभी कहते, बन के सहारे कामिनीमोहन बड़ा अनर्थ करता है। यह सब सुन कर मैंने अपने जी में यह दो बातें ठानी। एक तो जैसे हो आपका चालचलन ठीक किया जावे—दूसरे बन का सारा भेद जान लिया जावे। पहले मैंने बन का भेद जानना चाहा—और दो दिन पीछे गांव से बन की ओर चला। बन का भेद जानने में मुझको पूरा एक महीना लगा। मैंने बन के सभ भीलों को अपना चेला बनाया, और उन सबोंने बन का सारा भेद मुझको बतला दिया। बन में मिट्टी के नीचे खंडहरों में से हो कर बहुत सी सुरंगें निकली हुई हैं—मैंने उन भीलों के सहारे एक एक करके उन सबको छान डाला। जिस दिन मैं सब कुछ देख भाल कर गांव की ओर लौट रहा था, मैंने दूर से आपको बन में आते देखा, और समझ गया—आप किसी बुरे काम के लिए ही बन में आ रहे हैं। मेरा दूसरा काम आपको पाप से बचाना था, इसलिए गाने के बहाने मैंने उस बेले ऐसी सीख आपको दी, जिसको सुन कर आप पाप करने से हिचकें। पर दुख की बात है—उस दिन के मेरे किसी गीत ने

काम नहीं किया, और आप अपनी बातों पर वैसे ही जमे रहे। जब आप मुझको बड़ के नीचे खोज रहे थे, तो मैं वहीं मिट्टी के नीचे एक सुरंग में था। जब आपसे और देवहूती से बातचीत उस खंडहरवाले घर में हुई, तब भी मैं उसी कोठरी के नीचे के एक सुरङ्ग में खड़ा सब सुनता रहा, और यहाँ से बाहर निकल कर आपकी बात पूरी होने पर मैंने अपना सबसे पिछला गीत देवहूती को ढाढ़स बँधाने के लिए गाया। आप कह सकते हैं तुम एक बटोही थे, तुमको इन बातों से क्या काम था, पर सच बात यह है, मैंने जनम भर अपने लिए ऐसे ही कामों का करना ठीक किया है, मुझको ऐसे कामों को छोड़ दूसरा काम नहीं है, और इसी लिए मैंने जिस दिन आपके गांव में पांव रक्खा, उसी दिन अपनेको जोखों में डाल दिया था।

कामिनीमोहन ने एक ऊंची सांस भर कर कहा, आप कह सकते हैं मरती बेले मुझको इन बातों से क्या काम था, पर सच बात यह है, मुझको देवहूती के चालचलन का खटका था, आप को इस भांति उसका सहाय होते देख कर ही मेरे जी में यह खटका हुआ था। मैं अपने जी को बहुत समझाता था, नहीं, देवहूती का चालचलन कभी घुरा नहीं है—पर यह न मानता। अब आप की बातों को सुन कर मेरा सब भ्रम दूर हुआ—अब मैं अपना काम करके मरूंगा।

इतना कह कर कामिनीमोहन ने एक बात देवस्वरूप से कही—देवस्वरूप ने भी उसको अच्छा कहा। पीछे गांव के बड़े बड़े लोग बुलाये गये। सब लोगों के आ जाने पर एक काम कामिनीमोहन

ने बहुत घोरज के साथ किया । पर ज्यों ही वह काम पूरा हुआ, कामिनीमोहन की सांस ऊपर को चलने लगी, उसकी आंखें बिगड़ गयीं, और रह रह कर वह चौंक उठने लगा । उसकी यह गत देख कर देवस्वरूप ने कहा, कामिनीमोहन तुम रह रह कर इतना चौंकते क्यों हो ? कामिनीमोहन की पलकें उठती नहीं—पर उसने धीरे २ आंखें खोलीं और कहा, बड़ी डरावनी मूर्तियाँ सामने देख रहा हूँ—क्या यमदूत इन्हींका नाम है ! मैं इनके डर से कांप रहा हूँ । मुझको जान पड़ता है, मुझको मारने के लिए वह सब मेरी ओर लपक रहे हैं । ओहो ! कैसे कैसे डरावने हथियार उन लोगों के हाथों में हैं । आप इनके हाथों से मुझको बचाइये, क्या यह सब मुझको नरक में ले जावेंगे ? मैं इन्हीं सबों से डर कर चौंक उठता हूँ । यह कहते कहते कामिनीमोहन की आंखें फिर मुंद गयीं ।

देवस्वरूप को कामिनीमोहन की बातें सुन कर बड़ा दुःख हुआ । उन्होंने जी में सोचा, अभी कह रहे कह रहे थे, नरक स्वर्ग कहीं कुछ नहीं है, परमेश्वर भी एक धोखे की दृष्टी है, और आज इनकी यह गत है, सच है, मरने के समय बड़े पापी की भी आंख खुलती हैं । जब तक बने दिन होते हैं, मनुष्य बेबस नहीं होता, तभी तक उसको सब सीटी पटाक रहती है । विपत्ति पड़ने पर उसका जी कभी ठिकाने नहीं रहता । पर यह माटी का पुतला इन बातों को पहले नहीं सोचता, दुःख इतना ही है । इतना सोच कर देवस्वरूप ने कहा—कामिनीमोहन राम राम कहो, राम का नाम सब विपत्तों को दूर करता है ॥

कामिनीमोहन । बान लगाने से ही सब कुछ होता है—जैसी बान सदा की होती है—काम पड़ने पर वही बान काम में आती है । मैंने आज तक राम का नाम जपने की बान नहीं डाली, इस लिए इस बेले भी मुझसे राम राम नहीं कहते बनता । मैंने जो पाप किये हैं—वे एक एक करके मेरी आंखों के सामने नाच रहे हैं । मेरा जी बेचैन हो रहा है—अपने पापों का मुझको क्या फल मिलेगा, बह सोच कर मेरा रोआं रोआं कलप रहा है, गले में कांटे पड़ रहे हैं, जीभ सूख रही है, तालु जल रहा है—मैं राम राम कहूं तो कैसे कहूं ।

इतना कहते कहते कामिनीमोहन चिल्ला उठा, मुझको बचाओ, बचाओ, ये काले काले, डरावने, टेढ़े टेढ़े दांतवाले यमदूत मुझको मारे डालते हैं । फिर कहा, अरे बाप ! अरे बाप !! मरा ! मरा !!! क्या ऐसा कोई माई का लाल नहीं है, जो मुझको इनके हाथों से बचावे !!! आह ! आह !! जो गया ! जो गया !! मेरे रोएँ रोएँ में भाले क्यों चुमाये जा रहे हैं ! मेरी जीभ क्यों पेँठी जाती है ! मेरी बोटी बोटी क्यों काटी जाती है ! मेरा कलेजा क्यों निकाला जाता है ! लोगो दौड़ो ! लोगो दौड़ो !! अब तो नहीं सहा जाता !!!

देवस्वरूप ने कामिनीमोहन के सर पर हाथ रख कर कहा—कामिनीमोहन राम राम कहो, तुमारी सब पीड़ा दूर होगी । कामिनीमोहन ने कहा, रा—म रा—म—फिर कहा, उहं ! उहं !! र्हो ! र्हो !! अरे मेरे गले में जलते जलते लोहे के छड़ क्यों

डाले देते हो !!! अरे अरे ! यह क्या ! यह क्या !! हाय बाप !
हाय बाप !! मार डाला ! मार डाला !!!

देवस्वरूप की आंखों से कामिनीमोहन की दशा देख कर आंसू
चलने लगे—वह कामिनीमोहन से कुछ न कह कर आप उसकी
खाट पर बैठ गये—धीरे धीरे उसके कान में राम राम कहने
लगे—पर कामिनीमोहन छुटपटाता इतना था, जिससे वह भली
भांति उसके कानों में राम राम भी नहीं कह सकते थे। अब
कामिनीमोहन की सांस बड़े बेग से ऊपर को खिंच रही थी—
गले में कफ आ गया था—सांस के आने जाने में बड़ी पीड़ा हो
रही थी। आः ! आः !! उहं ! उहं !! करने छोड़ वह कुछ कह
भी नहीं सकता था। गला घर्ँ घर्ँ कर रहा था। इतने में उसकी
देह को एक झटका सा लगा—आंखों के कोये फट गये—और
सड़के से सांस देह के बाहर हो गयी। सारे घर में हाहाकार
मच गया ।

तेईसवीं पंखड़ी ।

एक चूकता है—एककी बन आती है। एक मरता है—एक के भाग्य जागते हैं। एक गिरता है—एक उठता है। एक बिगड़ता है—एक बनता है। एक ओर सूरज अपने तेज को खो कर पश्चिम ओर डूबता है—दूसरी ओर चाँद हंसते हुए पूर्व ओर आकाश में निकलता है। फूल की प्यारी प्यारी जी लुभानेवाली पंखड़ियाँ एक ओर झड़ती हैं—दूसरी ओर अपने हरे रंग से जो को हरा करते हुए फल सर निकालते हैं। इधर पतझड़ होती है—उधर नयी नयी कोपलों से पौधे सजने लगते हैं। इधर रात की उंधियाली दूर होती है—उधर दिन का उजियाला फैलने लगता है। जग का यही ढंग सदा से चला आया है। कामिनी-मोहन मर गया, दो चार दिन गाँव में उसकी बड़ी चर्चा रही, कोई उसके लिए आठ आठ आंसू रोता रहा, कोई उसपर गालियों की बौछार करता रहा, कोई उसको भला कहता रहा, कोई उसको बुरा बनाता रहा। जो उसके वैरी मित्र कुछ न थे, वे उसके जवान मरने पर आंसू बहाते, पर जब उसकी बुरी चालों को सुनते, नाक भौं सिकोड़ते, कहते—हाय ! कामिनीमोहन ! चार दिन के जीने पर तुम इतने आपेसे बाहर हो गये थे, तुमको सोचना चाहिए था, मरने पीछे जग में जस और अपजस ही रह जाता है। दो चार दिन पीछे लोगों को ये सारी बातें भूल गयीं। धीरे धीरे कामिनीमोहन की ठौर एक दूसरा जन लोगों के जी में घर

करने लगा, गांव में जहां देखो वहीं उसीकी चर्चा होती—ये हमारे देवस्वरूप थे । ज्यों ज्यों वे कामिनीमोहन की क्रिया बिध के साथ लगे, ज्यों ज्यों वे गांव के लोगों के साथ दया और प्यार से बरतने लगे, त्यों त्यों लोगों का जी बनकी ओर खिंचने लगा ।

धीरे धीरे कामिनीमोहन का दसवां हुआ, फिर तेरहवाँ हुई, देवस्वरूप ने कामिनीमोहन का सब काम पूरा पूरा कराया, क्रिया कर्म की कोई बिध उठा न रक्खी । जब सब कर्म हो चुका, तो एक दिन एक चौपाल में सारा गांव इकट्ठा हुआ, गांव का कोई मुखिया ऐसा न था, जो उस समय वहां न पहुँचा हो । जब सब लोग आ कर अपनी अपनी ठौरों बैठ चुके देवस्वरूप उठ कर खड़े हुए, और कहा—कामिनीमोहन ने मरते समय अपने धन के लिए कुछ लिखापढ़ी की है, और जो लोग उस समय वहां थे उनसे कहा था, मेरा सब कर्म हो जाने पर एक दिन गांव के सब लोगों को इकट्ठा करना, और जो लिखावट आज मैं लिखता हूं उसको पढ़ कर सबको सुनाना, पीछे इस लिखावट में जैसा लिखा है वैसा करना । आज आप लोग उसी लिखावट को सुनने के लिए यहां बुलाये गये हैं । आप लोगों के गांव के पांच बड़े मुखियाओं ने जिनको आप लोग यहां बैठे देख रहे हैं, उस लिखावट को मुझको पढ़ने के लिए दिया है—वह लिखावट यह मेरे हाथ में है । मैं अब इसको पढ़ता हूं—आप लोग इसको सुनें । इतना कह कर देवस्वरूप उस लिखावट को पढ़ने लगे । लिखावट यह थी—

“मैं कामिनीमोहन बेटा राधिकामोहन रहनेवाला बंसनगर परमना हरगांव (गोरखपुर) का हूं—

“मेरे कोई लड़की लड़का नहीं है, जो सम्पत्ति मेरे पास है, वह सब मेरे बाप की कमाई हुई है, इसमें मेरे वंश के किसी दूसरेका कोई साझा नहीं है। मेरे मरने पर मेरा यह सारा धन मेरी स्त्री फूलकुंआर का होगा, पर इतना धन एक थोड़े बयस की स्त्री के हाथ में छोड़ जाना मैं अच्छा नहीं समझता, इसलिए मरने के पहले मैं अपने धन के लिए कुछ लिखापढ़ी करना चाहता हूँ—

“किसीका सर पर न होना, और बहुत सा धन अचानक हाथ में आ जाना, अनर्थों की जड़ है, मेरे बाप के मरने पर मेरी यही गत हुई थी—मेरे मरने पर मेरी स्त्री की भी ठीक यही गत होगी। मेरा जन्म ब्राह्मण के घर में हुआ है—मैं लिखा पढ़ा भी हूँ—दस भलेमानस के साथ उठा बैठा भी हूँ—समय का फेरफार भी देखा है। पर मैंने क्या किया? कोई बुरा कर्म मुझ से करने से छूटा? जब मेरी यह गत हुई, तो सब भांति से कोरी एक स्त्री ऐसी दशा में क्या करेगी—यह कह कर बतलाने का काम नहीं है। पर इन सब बातों को सोचकर इस बेले जो मैं कोई ढंग निकाल जाऊँ—तो मैं समझता हूँ सभी समझवाले इस बात को अच्छा समझेंगे—

“मेरे बाप ने बड़ी कठिनाई से इतनी सम्पत्ति कमायी थी, एक एक पैसे के लिए उन्होंने कितनों का रोआं कलपाया था, कुछ कपट करके कितनों का सबबस हरा था, पर इतनी बड़ी सम्पत्ति में से एक पैसा उनके साथ न गया, मैं उनका प्यारा बेटा हूँ, मैं

भी आज इसको छोड़ कर चला । फिर क्यों लोग दूसरों का रोमाँ कलपा कर धन इकट्ठा करते हैं, यह कुछ समझ में नहीं आता । क्या यह उन्हीं कलपे हुए लोगों की आह का फल नहीं है, जो आज इतनी बड़ी सम्पत्ति का कोई भोगनेवाला नहीं रहा ? जान पड़ता है जब तक किसीकी चलती है—तब तक नहीं सूझता आज मुझको अपने बाप के लिए ये बातें सूझ रही हैं—पर कलह उनसे बढ़ बढ़ कर मैं बुरे बुरे कर्म गली गली करता था, उस घड़ी तो लोगों के समझाने पर भी मेरी आंख न खुली । मुझ को इस घड़ी इन पचड़ों से कुछ काम न था, पर एक तो इन बातों को दिखला कर मैं इस ढंग से धन बटोरनेवाले की आंखें खोलता हूँ—दूसरे जिनको अपनी संपत्ति सौंपना चाहता हूँ, उन के कान भी खड़े किये देता हूँ । मरते समय मरनेवाले के मुँह की ऐसी बातें बहुत काम की होती हैं ।

“देवहूती कौन है ? कहाँ रहती है ? मैं यह बतलाना नहीं चाहता । आज कल हमारे गाँव के सभी देवहूती को जानते हैं । पर मैं यह कहूँगा, देवहूती एक बहुत ही सीधी सच्ची, सती, समझवाली, और भलेमानस स्त्री है । मैंने आज तक बहुत सी स्त्रियाँ बहुत से ढंग की देखीं—पर देवहूती ऐसी स्त्री मुझको देखने में नहीं आयी । मेरे दिन बड़े खोटे थे—जो मेरा जी देवहूती पर आया, और, अचरज नहीं है जो एक सती स्त्री पर बुरी डीठ डालने से ही आज मैं भरी जवानी में इस भाँत अचानक मर रहा हूँ । मैंने देवहूती को फाँसने के लिए क्या नहीं किया—कैसी कैसी चाल नहीं चला—पर मेरी सब

बालों में देवहूती के धर्म की जैजैकार रही और मैं सदा मुंह की खाता रहा । क्या इतना कहने पर भी देवहूती के सत के लिए मुझको कुछ और कहना चाहिए—मैं समझता हूं अब कुछ कहने का काम नहीं है—पर इतना कहूंगा । जैसे गंगाजल खारा नहीं हो सकता, चांद की किरणें मैली नहीं हो सकतीं, सूरज पर अंधियाली नहीं दौड़ सकती—वैसे ही देवहूती के सत पर अप-जस का धब्बा नहीं लग सकता । मैं पहले देवहूती को प्यार की डीठ से देखता था, पर आज मैं उसको एक देवी समझता हूं—जी से उसके आगे मट्ठा नवाता हूं—और जो कुछ साग पात मेरे पास है, उसको आदर के साथ उसके सामने रख कर उसकी पूजा करना चाहता हूं । मैं बड़ा पापी हूं, क्या जानें इस पूजा के फल से उस लोक में मेरा कुछ भला हो । दूसरे यह भी दिखलाना है—जो स्त्री संकट के समय भी अपना धर्म निभाहती है, उस लोक की कौन कहे, उसको यहां ही सब कुछ मिलता है—

“मेरी स्त्री फूलकुंवर कैसी है ? मैं इसको क्या कहूं । पर मुझ पेसे कुचाली पति से भी जो कभी बखड़ कर नहीं बोली—वह स्त्री कैसी स्त्री है—इसको समझनेवाले आप समझ लें । हाब ! आज उसके ऊपर कैसी विपत ढहती है ! इस को नेक सोचने पर भी कलेजा फटता है । पर मैं उसको देवहूती के हाथ में सौंपता हूं—देवहूती से बढ़ कर मैं किसीको ऐसा नहीं देखता, जो फूलकुंवर का आंसू ठीक २ पोंछ सके—और उसको अपने धर्म पर भी रखे । देवहूती के हाथों

फूलकुंआ का अच्छा निबटेता होगा—मेरे जी को इसकी पूरी परतीत है—

“मेरे बंस के जो लोग हैं, भगवान की दया से वे सब अच्छे हैं—सबको दूध-पूत है—धन संपत्ति का भी किसीको टोटा नहीं; इस लिए इन लोगों के लिए मैं कुछ करना नहीं चाहता । पर मुझसे पांचवीं पीढ़ी में जो पंडित रामस्वरूप हैं उनके दिन आज कल पतले हैं । इस लिए आज मैं उनको नहीं भूल सकता—इस समय मैं उनके लिए भी कुछ कर जाना चाहता हूँ—

“जो कुछ मैंने अब तक कहा और लिखाया है, उससे मेरे सुध बुध का ठीक होना और मेरा सचेत रहना पाया जाता है—इस लिए “जो कुछ मैं लिखता हूँ सुधबुध ठीक होते और सचेत रहते लिखता हूँ” मैं ऐसी बात अपनी इस लिखावट में लिखना नहीं चाहता—

“मेरे पास बीस गांव हैं, इनमें से मनोहरपुर गांव मैंने पं० रामस्वरूप को दिया । इस गांव में बरस में बारह सौ रुपये बचते हैं—मैं समझता हूँ इतने रुपये बरसौढ़ी मिलते रहने पर वह अपना दिन भली भांति बिता सकेंगे—

“अब उन्नीस गांव और रहे—इन उन्नीस गांवों और दूसरी सारी संपत्ति को मैं देवहूती और फूलकुंआ को देता हूँ । उन्नीसों गांवों पर देवहूती और फूलकुंआ दोनोंका नाम बड़ेगा, और दूसरी सारी संपत्ति भी इन दोनोंके साझे की समझी जावेगी । मेरी स्त्री जैसी सीधी और भोली है, और देवहूती जैसी भलेमानस

और समझवाली है, इससे मैं समझता हूँ कोई संपत्ति बांटनी न पड़ेगी। देवहूती अपनी मा और भाई के साथ आ कर मेरे घर में रहे, और फूलकुंवर और वह मिल कर सारी संपत्ति की सम्हाल करें, मेरे जी की प्यारी चाह यही है। और जिस लिए मैं फूलकुंवर को देवहूती को सौंपे जाता हूँ—वह बात भी तभी पूरी होगी। इन दोनोंमें से किसी एकके मरने पर सारी संपत्ति दूसरेकी समझी जावेगी। देवहूती का पति किसी साधू के साथ निकल गया है—वह कहां है कोई नहीं जानता। पर जो देवहूती का दिन पलटे और उसका खोया हुआ पति उसको फिर मिले, और भगवान उसका कोई बेटा देवे, तो देवहूती और फूलकुंवर दोनोंके मरने पर सारी संपत्ति उसकी होगी। जो यह दिन भगवान न दिखलावे, तो दोनों के मरने पर सारी संपत्ति मेरे वंश के लोग पावेंगे। ये दोनों स्त्रियां मेरी संपत्ति किसी भांति दूसरे को न लिख सकेंगी—जो लिखेंगी तो वह लिखना न लिखने ऐसा समझा जावेगा। देवहूती जी करने पर अपने भाई को ऐसे ही फूलकुंवर अपने भाई के छोटे लड़के को कोई गांव लिख सकती है—पर इस गांव की बचत बरस में चौबीस सौ से ऊपर की न होगी—

“मैं पंडित हरनाथ, पंडित रामस्वरूप, पंडित रामदेव, बाबू महेश सिंह और बाबू राजबंस लागा, और जो यहां रहें तो देवस्वरूप के हाथों में—जिनके सामने यह लिखावट लिखी गयी है—अपनी सारी संपत्ति की देख भाल सौंपता हूँ। ये लोग मेरी सम्पत्ति को बिगड़ने और बुरे ढंग से काम में आने से बचावेंगे—और देवहूती और फूलकुंवर को ऐसी सीख देंगे जिससे वह मेरी संपत्ति को

आज से अच्छे कामों में लगावें । स्त्रियों को अपने ऊपर छोड़ देना हमारे यहां अच्छा नहीं समझा जाता, इनके ऊपर किसीका दबाव भी होना चाहिए, इस लिए मुझको इतना और करना पड़ा । मैं समझता हूं ऐसा करके मैंने कोई चूक नहीं की है—

“ मुझको एक बात का दुख रह गया, मैं देवस्वरूप को अपनी संपत्ति में से कुछ देना चाहता था, पर उन्होंने न लिया, मेरा बहुत कुछ बोध होता, जो मेरी संपत्ति में से वे कुछ थोड़ा भी लेते । इस लिखावट के लिखने में मुझको उनसे बहुत सहाय मिली है—इसके लिए मैं उनका निहोरा करता हूँ—

‘ जहां तक मैं सोचता हूं अब मुझको कुछ और नहीं लिखना है—इस लिए इस लिखावट को मैं पूरा करता हूँ’

ह० कामिनीमोहन । ”

देवस्वरूप पूरी लिखावट पढ़ कर बोले—आप लोगों को जो कुछ सुनाना था सुनाया गया । आप लोग इस लिखावट को सुन कर पूछ सकते हैं, देवहूती तो सरजू में डूब कर मर गयी ! फिर क्या कोई दूसरी देवहूती है, जिसको कामिनीमोहन ने अपनी सम्पत्ति दी है ? मैं गांव के उन पांच बड़े मुखियाओं के कहने से—जिनका नाम लिखावट पढ़ते समय लिया जा चुका है—आप लोगों का यह भरम दूर करना चाहता हूं । पर भरम दूर करने से पहले मैं आप लोगों से पूछता हूं—क्या आप लोग हरमोहन पांडे को जानते हैं ?

लोगों की जो बड़ी भीड़ वहां इकट्ठी थी, उनमें से कुछ लोग बोल बटे—क्यों नहीं जानता हूं, वह देवहूती के बाप थे । दो बरस

हुआ, एक दिन वे गांव के दक्खिन बन के पास एक जन को दिखलाई पड़े—फिर तब से उनकी खोज न मिली। हम लोग जानते हैं, उनको कोई बन का जीव डठा ले गया, और अब वह इस धरती पर नहीं हैं।

जिस घड़ी लोगों के मुंह से यह बात निकली, उसी समय उस भीड़ में एक जन उठ कर खड़ा हुआ। इस जन को हम बन में देख चुके हैं। जब देवस्वरूप के साथ घर लौटने में देवहूती ने नार्हीं की थी, उस बेले यही जन देवहूती के पास आया था। उस समय हम लोगों ने जिस भेस में इस जन को देखा था, इस बेले उसका यह भेस नहीं है। इस घड़ी इस के सर पर पगड़ी है, देह पर अंगा है, गले में दुपट्टा है, और उजली लम्बी धोती पांवों को छू रही है। पर दाढ़ी जैसी की तैसी थी, उसमें कुछ लौट फेर न हुआ था। जब यह जन अपनी ठौर पर बैठ कर खड़ा हुआ, देवस्वरूप ने कहा, क्या आप लोग इनको पहचानते हैं ? यह सुन कर सारी भीड़ कुछ घड़ी चुप रही, पीछे दो जन भीड़ में से उठ कर खड़े हुए। और उन लोगों ने कहा, हां ! हम लोग पहचानते हैं, यही हरमोहन पांडे हैं। इन दोनों की बातें सुनकर सारी भीड़ खड़बड़ा उठी, बारी बारी करके बहुत से लोग बड़े बैठे। सर ऊंचा नीचा करके सबोंने देख भाल की, और कहा, ठीक है, यही हरमोहन पांडे हैं। इस समय सारी भीड़ अचरज में आ गयी थी, और जितने मुंह डतनी बातें होने लगने से, हारा स्र मच गया था, पर देवस्वरूप ने किसी भांति फिर सबको चुप किया,

और कहा अब आप लोग जानिये, जो दो बरस के मरे हुए हरमोहन पांडे जी सकते हैं, तो पन्द्रह बीस दिन का मरो देवहूती भी जी सकती है । सच बात यह है देवहूती भी मरी नहीं है, जीती है । यहां आप लोग हरमोहन पांडे से पूछ कर अपना अपना भरम दूर करें । और इनके घर पर जा कर देखें, वहां आप लोगों को देवहूती जीती मिलेगी । देवस्वरूप इतना कह पाये थे और हरमोहन पांडे उनकी बातों को ठीक बतला ही रहे थे, इसी बीच भीड़ फिर खड़बड़ा उठी, बहुत लोग अपनी अपनी ठौर छोड़ कर चौपाल के नीचे उतरने लगे । कोई रोता चिल्लाता भी सुनाई पड़ा । सब लोग घबड़ा उठे, बात क्या है ! पर जो था चौपाल के नीचे ही उतरा जा रहा था, इसलिए कुछ ठीक न जान पड़ा क्या है । यह हलचल देखकर गांव के पांचों मुखिया और देवस्वरूप भी चौपाल से नीचे उतरे, और भीड़ चीर कर आगे बढ़े । तो देखा, एक खाट पर बासमती लहू में डूबी हुई पड़ी तड़प रही है, उसको देह में छुरी के सैकड़ों घाव लगे हुए हैं, और उसका बेटा उसको खाट के पास खड़ा रो चिल्ला रहा है । देवस्वरूप ने उसके बेटे की ओर देख कर कहा, वह क्या हुआ गंगाराम ?

गंगाराम । देखो महाराज ! गांव को सूना पा कर न जाने कौन आज मेरी मां को इस भांति छुरियों से घायल कर गया । मैं अभी चौपाल में से उठ कर घर गया, तो वहां इसको पड़े तड़पते पाया । यह बहुत पुकारने पर भी नहीं बोलती, न किसी का नाम बतलाती । इससे आप लोगों को दिखलाने के लिए मैं

इसको वहां खाट पर अपने एक पड़ोसी के साथ बठा लाया हूं । बाबू आप लोग अब इसका निश्चाय करें—दोहाई बाबू लोगों की ।

जिस घड़ी गंगा राम बातें कर रहा था, बासमती सांस तोड़ रही थी, उसके घाव, बसकी बुरी गत, और उसका तड़पना देख कर सबके रोंगटे खड़े थे, ऐसा कोई अंग नहीं था जहां क्रूर चुभाई नहीं गयी थी । उसकी यह दशा देख कर गांव के मुखियाओं ने कहा, इसको अभी थाने में ले जाओ । यह सुन कर गंगाराम ने ज्यों खाट बठायी, त्यों उसीमें कहीं लिपटी एक लिखावट नीचे गिर पड़ी—लिखावट यह थी —

“बासमती ने कितनी भोली भाली स्त्रियाँ और कितने भले घरों को बिगाड़ा है । मेरा जी इसीसे इसके ऊपर बहुत दिनों से जलता था, पर कामिनीमोहन का डर मुझको कुछ करने न देता था । जिस दिन कामिनीमोहन मरे उसी दिन से मुझको अपने जी की जलन बुझाने का विचार था । पर अवसर हाथ न आता था । आज अवसर हाथ आने पर मैं अपने जी की जलन का बासमती के लहू से ठंडा करता हूं और जो स्त्रियाँ कुटनपन करने में बड़ी चोख हैं, उनको बतलाता हूं, वे चेत रखें, मेरे ऐसा उनको भी कोई कभी मिल रहेगा । किसीको जी से मारना और थाने के लोगों के हथकंडों का विचार न करके एक लिखावट भी पास रख जाना, एक नयी बात है । पर लोगों की भलाई के लिए मैं ऐसा करता हूं—आगे मेरे भाग्य में जो बश हो ।

एक अपने जी पर खेलनेवाला ।”

लिखावट पढ़ जाने पर गंगाराम बासमती को ले कर थाने की ओर चला गया, पर जाने से पहले बासमती मर चुकी थी। जितने लोग वहां थे सब लोगों ने बड़े दुख से तड़प तड़प कर बासमती को मरते देखा था, इस लिए इसीकी चर्चा करते करते वे लोग भा अपने अपने घर आये। पर न जानें कैसा एक डर आज गांध के सब लोगों के जी में समा गया ॥

चौबीसवीं पंखड़ी ।

आज तक मर कर कोई नहीं लौटा, पर जिसको हम मरा समझते हैं, उसका जीते जागते रह कर फिर मिल जाना कोई नयी बात नहीं है। ऐसे अवसर पर जो आनंद होता है—वह उस आनंद से घट कर नहीं कहा जा सकता—जो एक मरे हुए जन के लौट आने पर मिल सकता है। पारबती बड़ी भागवाली है—आज दो बरस का खोया हुआ पति हो उसको नहीं मिला, उसकी आंखों की पुतली, वह देवहूती भी अचानक आ कर उससे गले मिली—जिसको वह डूब मरी समझ कर आठ आठ आंसू रोता थी। आज उसके आनंद का पार नहीं है। कुछ घड़ी के लिए वह बावली बन गयी, अपने देह तक की सुख भूल गयी, संसार उसकी आंखों में कुछ और हो गया, न उससे हंसते बनता था न रोते। पर कुछ ही बेर में वह भाफ जो धुन बांध कर भीतर उठ रही थी, बाहर निकल पड़ी, और वह फूट २ कर रोने लगी। जब बहुत दिनों की जी में लगी दुखड़ों की काई भर भर बहते हुए आंसुओं से भुल गयी और पारबती का जी कुछ हलका हुआ, उस घड़ी वह और सब बातें भूल कर हरमोहन से कहने लगी—क्या आपको मुझको इस भांति छोड़ देना चाहिए था—आप किसके हाथ मुझको सौंप गये थे, जो दो बरस तक मेरी सुख भी न ली? सब तो गया ही था, मैं आपका ही मुंह देख कर जीती थी, फिर आप इतने कठोर क्यों हुए? पर फिर भी मेरे

माग्य अच्छे हैं, जो आपने इतने दिनों पीछे भी चेता, और मेरे बजड़े हुए घर को बसाया ।

हरमोहन पांडे भी इस बेले चुपचाप आंखों से आंसू बहा रहे थे, जब पारबती कह चुकी, वह बोले—जिस होनहार ने धन संपत्ति और गांव घर मुझसे छुड़ाया था, उसीने तुम्हारी ऐसी घरनी, देवहूतो जैसी लड़की, और देवकिशोर जैसा लड़का भी मुझसे छुड़ाया । मुझको सब भांत का दुख तो था ही, पर जमाई के किसी साधू के संग कहीं निकल जाने की बात जब मैंने सुनी, उसी घड़ी मेरे दुख का पार न रहा, मैंने सोचा ऐसे घर से तो बन अच्छा है, और इसी धुन में मैं बन में निकल गया । निकलने को तो मैं बन में निकल गया, पर वहां मुझको बहुत कुछ भुगतना पड़ा । महीनों मुझको बनफल खा कर और झरनों का पानी पी कर अपने दिन बिताने पड़े । बात यों है—बन में निकल जाने पर जब दो चार दिन पीछे जी ठिकाने हुआ, तो मेरे जा में कई बार यह बात उठी—मैं घर लौट चलूं—मैं घर की ओर चला भी । पर जिस पथ से मैं बन में घुसा था, वह पथ कुछ ऐसी भूल-भुलैया के ढंग का है, जिसने मुझको घर न लौटने दिया । जाते समय मुझको कहां जाना है, यह विचार तो था ही नहीं, इसलिध नाक की सीध में मैं बन में घुसता चला गया, पर निकलते समय मैं निधर से निकलना चाहता था, कुछ दूर चलने पर फिर वहीं आ जाता था, महीनों तक मैं नित बन से निकलने का जतन करता रहा, पर एक दिन भी मेरे मन की न हुई । उलटे लेने के देने पड़ गये । महीनों बनफल खाने, झरनों का पानी पीने और

घरती पर सोने से मैं रोगी हो गया, और मेरा चलना फिरना तक रुक गया। इन दिनों मैं एक पत्ते की भोपड़ी में—जिसको मैंने अपने हाथों बनाया था, दिन रात पड़ा रहता था। और इतना दुबला हो गया था, जिससे किसी जंगली जीव का सामना होने पर किसी भांति अपनेको बचा न सकता था।

पर मेरे दिन पूरे नहीं हुए थे, इसी लिए रोगी होने के थोड़े ही दिनों पीछे किसी ओर से घूमते घामते दो भाल मेरे पास आये, इन दोनोंने मुझको देखा, मेरा नाम घाम पूछा और चुपचाप मुझको अपने घर उठा ले गये। मैंने उन दोनोंसे घर पहुँचा देने के लिए बहुत कहा, भांति भांति की लालच दिलायी, पर उन्होंने मेरी एक न सुनी, कहा, आप इतने घबराते क्यों हैं? जब आप अच्छे हो जावेंगे, घर पहुँचा दिया जावेगा। मैं उनकी बातें सुन कर चुप हो रहा, कुछ डरा भी, पर अपने घर ला कर उन दोनोंने मेरी जितनी टहल की, मैं उसके लिए उनका जनम भर ऋणी रहूँगा। मैं पाँच छः महीने अच्छा नहीं हुआ, पर उन दोनों ने एक दिन भी मेरी टहल और सहाल करने से जी न चुराया। जब मैं भली भांति चंगा हुआ, उस समय मुझको घर से निकले एक बरस हो चुका था। बीच बीच में कई बार मैंने उन सबसे घर पहुँचाने के लिए कहा, पर जब मैं घर की बात उठाता, तभी वे सब टालटूल करते। कबो वह टालटूल करते, मैं पहले इस भेद को न समझता था, इस लिए मैं सोचता—इन सबका प्यार मेरे साथ बहुत हो गया है, इसी लिए ये सब मुझको घर पहुँचाना नहीं चाहते।

धीरे धीरे यह बात मेरे जी में जम गयी, और मैंने सोचा, अपने आप मुझको जंगल से बाहर निकलने के लिए कोई जतन करना चाहिए । पर यह काम मैं इस भांति करना चाहता था, जिसमें वे दोनों भील जाने तक नहीं । क्योंकि सेवा टहल करके उन्होंने इस भांति मुझको अपने हाथों में कर लिया था, जिससे मैं किसी भांति उनका जा तोड़ना अच्छा न समझता था ।

तुम कहोगी भीलों का और इतना ध्यान ! पर इन भीलों के बरताव की बात मैं क्या कहूँ । क्या बस्ती में बसनेवालों में इतनी भलमनसाहत हो सकती है ? कभी नहीं ! छल कपट का वे सब नाम तक नहीं जानते, साथे और सच्चे इनने हैं जिनका होना चाहिए । हम लोग मुँह पर बात बनाते हैं, बात चलने पर धरती आकाश एक करते हैं, कभी कभी ऐसी चिकना चुपड़ी सुनाते हैं, जिससे पाया जाता है हमसे बढ़ कर भला कोई दूसरा हो नहीं सकता । पर भातर की सड़ी गंध से जो भिन्ना जाता है—काम पड़ने पर ऐसा भंडा फूटता है, जिसके कहते हुए भी लाज लगती है । मुझको बस्ती के लोगों से भली भांति काम पड़ चुका था, मैं बहुत से लोगों का रंग ढंग देख चुका था, इस लिए जंगल में पहुँचने पर जब भीलों से पाला पड़ा, तो मुझको जान पड़ा, बस्ती के लोग इन भोले भाले भीलों से कितनी दूर हैं । कभी कभी मेरे जी में घर न पहुँचाने की बात खटकती थी, पर इसको भी मैं उनका प्यार ही समझ चुका था, चाहे मेरे साथ उनका यह प्यार न था, तब भी जिस लिए

वे मुझको घर न पहुँचाते थे, यह भी एक ऐसी बात थी, जिससे वह और अच्छे समझे जा सकते हैं । कामिनीमोहन को और से वे सब बन के रखवाले थे, कामिनीमोहन ने उनसे कह रखा था, जो बन के भीतर गांव का कभी कोई पाया जावे तो उसका बिना मुझसे पूछे बाहर न निकलने देना, फिर वह क्यों उनकी बातों पर न चलते? अवसर पा कर उन सबोंने कामिनीमोहन से मेरे घर पहुँचा देने के लिए पूछा भी था, पर जान पड़ता है उन दिनों उसका डीढ़ देवहूती पर पड़ चुकी था, इस लिए उसने मुझको जंगल में रख छोड़ने के लिए ही कहा । ये बातें कामिनीमोहन के मरने पर मुझको भीलों ने बतलायी थीं ॥

जब बन में एक बरस बीत कर दूसरा लगा, और बाल-बच्चों का नेह बहुत सताने लगा, तब मैं चुपचाप नित्य बन से निकल कर घर पहुँचने के लिए पथ ढूँढ़ने लगा । पर मुझ ऐसे आलसो जीव के लिए बन में पथ ढूँढ़ लेना कठिन बात थी । जब बन में मैं पथ ढूँढ़ने निकलता और कहीं कुछ उलझन पड़ती, तभी मैं अपनी भोपड़ी में पलट आता, कहता अथ कलह पथ ढूँढ़ूँगा । पर इसी भाँति कलह कलह करते दो बरस बीतने पर आये और मुझको पथ न मिला ॥

भाग्य से एक दिन देवस्वरूप से भेंट हुई । उन्होंने मुझे देख कर साधू समझा, और कहा, आपका दर्शन बड़े अवसर पर हुआ, आज मैं एक सती स्त्री का धर्म बचाना चाहता हूँ, पर मुझको डर था वह मेरी परतीत करे न करे । पर आपको

देख कर मैं सुखी हुआ, आप बड़े बूढ़े हैं, आपकी परतीत करने में उसको कुछ आगा पोछा न होगा । आप मेरे साथ चलिये और एक धर्म के काम में सहाय हूँजिये । मैं उनकी बातों को कुछ न सम्झ सका, पर धर्म की दुहाई देते देख कर उनके साथ हो गया । वे मुझको एक सुरंग से एक कोठरी में ले गये, ज्यों मैं कोठरी में पहुँचा एक ड्योढ़ी में से निकल कर देवहूती को कोठरी की ओर आते देखा । मैंने देवहूती को देख कर पहचाना, और उनसे कहा, यह तो मेरी लड़की है । यह यहाँ कैसे आबी, आप सब बातें मुझसे खोल कर कहें । उन्होंने मेरी बात सुन कर कहा, तब तो और अच्छा हुआ, पर आप इस घड़ी न कुछ पूछें-पाछें और न कुछ बोलें—इस घर से बाहर निकल चलने पर सब बातें अपने आप, आप जान जावेंगे । जब हम तीनों सुरंग से बाहर निकले, तो देवस्वरूप मेरी भोपड़ी तक हम लोगों के साथ आये, पथ में बहुत सी बातें देवहूती की भलमनसाहत और कामिनीमोहन की चाल की उन्होंने मुझ को सुनायीं, मैंने भी अपना सारा दुखड़ा उनको सुनाया, बीच बीच में देवहूती फूट फूट कर रोती थी । जब मैं अपनी भोपड़ी में पहुँचा, वे कहने लगे—इस समय मैं एक काम से बंसनगर जाता हूँ, आप देवहूती के साथ कुछ दिन और बन में रहिये, थोड़े ही दिनों पीछे मैं आपको देवहूती के साथ आपके घर पहुँचा दूँगा । गाँव के पंचों के कहने से आज वहाँ देवहूती के साथ मुझको घर लिवा लाये हैं, पथ में गाँव की बड़ी चौपाल में मुझको थोड़ी बेर के लिए ठहरा लिया था, चौपाल से थोड़ी दूर पर

देवहूती को पालकी भी इतरवायी थी, सोचा था, क्या जानें कुछ काम पड़े। पर मुझको जीता देख कर गांववालों ने देवहूती के लिए कुछ पूछ पाछ न की। इसी बीच बासमती का पचड़ा फैल गया। मैंने देखा अब यहाँ रहना ठीक नहीं, इस लिए देवहूती के साथ घर चला आया। तुमने जो कुछ कहा सब ठीक है, पर होनहार किसीके हाथ नहीं, जो जो नाच उसने नचाया, वह सब नाचना पड़ा, अब भी जो नाच वह नचावेगा, नाचना पड़ेगा, पर इस बुढ़ीती में एक बार हमारी तुमारा भेंट और बदो थो, वह हुई, आगे की राम जानें ॥

पारबती चुपचाप हरमोहन पांडे की बातें सुनती रहा, कभी रीतो, कभी ऊंची सांघें लेता, और कभी चुपचाप उनके मुंह की ओर ताकती रही। जब हरमोहन पांडे चुप हुए, वह बोली, भगवान ने जैसा मेरा दिन फेरा, सबका दिन फिरे। आपको और देवहूती को इन दो बरसों में जैसी विपत भेलनी पड़ी, राम किसी बैरी को भी ऐसी विपत में न डालें। मैंने जब भूल कर भी कभी किसीका बुरा नहीं किया, तो मेरा बुरा कैसे होता। कामिनीमोहन के मरने पर बासमती मेरे पास दो तीन दिन आयी थी, उससे देवहूती की सब बातें सुनी थीं, मैं उससे मिलने की आस में ही दिन गिन रही थी, पर अचानक आपका भी दर्शन करा कर भगवान ने मेरे किस जनम के पुण्य का फल आज मुझको दिया है मैं नहीं कह सकती ॥

पारबती इन्हीं बातों को कह रही थी, इसी बीच गांव की बहुत सी स्त्रियां देवहूती से मिलने के लिए वहां आयीं।

देख कर हरमोहन वहां से उठ कर एक दूसरे घर में चले गये ; पारबती देवहूती को स्त्रियों के पास छोड़ कर पहले हरमोहन के पास गयी। उनका हाथ मुंह धुलाया, उनको कुछ खाने को दिया, पीछे स्त्रियों के पास लौट आयी। पारबती, देवहूती, और आयी हुई स्त्रियों में क्या बातचीत हुई, मैं इसको लिखना नहीं चाहता। ऐसे अवसर पर जैसी बातें हुआ करता हैं, उनको आप लोग अपने आप समझ लें ॥

पञ्चीसवा पंखड़ो ।

जब तक हमको पेट भर खाने के लिए नहीं मिलता, हम दो मूठी अन्न के लिए तरसते रहते हैं, उन दिनों हमको यही सोच रहता है, कैसे पेट भर खाने को मिलेगा, कहां से दो मूठी अन्न लायें, जिससे पापी पेट की आग बुझे । पर पेट भर खाना मिलने पर, दो मूठी अन्न का ठिकाना हो जाने पर, हमारा जी पहले का सा नहीं रह जाता । इस घड़ी हम सोचते हैं, कुछ कमाना चाहिए, हमारे पहनने के कपड़े कैसे फटे फुटे और बुरे हैं, भलेमानसों को मुंह तक नहीं दिखाया जाता, कहां से कुछ मिले, जो आधे दिन पत रहे । जो भगवान ने दया की, इस दुखड़े से भी छुट्टी मिलो, तो जी में आता है, घर चारों ओर से गिरा पड़ा है, बरसात में घर की छतें चलनी बन जाती हैं, धूप के दिनों लू और लपट के थपेड़ों से जी पर आ बनती है, जैसे हो घर बनवाना चाहिए । जो भाग ने साथ दिया, पैसे हाथ चढ़ गये, तो घर बनते भी बेर नहीं होती । पर क्या हमारी चाहें यहीं आ कर ठिकाने लगती हैं ? नहीं, घर बना तो हाथी घोड़ा चाहिए, धन धरती चाहिए, रुपये चाहिए । सच बात यह है, चाह कभी पूरी नहीं होती । जिसके लिए आज हम बेकल हैं, जो वह कलह मिल गया, तो परसों दूसरी ही उधेड़ बुन में हम लगते हैं, और उसके लिए हाथ पांव मारते हैं, जो अब हमारे पास नहीं हैं । पारबती आज कल दिन रात हरमोहन पांडे और देवदूती के लिए रोती कलपती थी; सोते जागते उसको इन्हींका ध्यान था । राम राम

करके उसके दुख की रात बीती, सुख के सूरज ने मुंह दिखलाया, हरमोहन पांडे और देवहूती ने आ कर उसके अंधेरे घर में उजाला किया, वह दो एक दिन इस सुख में भूली रही । पर दो ही दिन पीछे उसका जी फिर दुखी रहने लगा, वह देवहूती का रूप जोबन देखती, उसके धन विभव की बात विचारती, और सोचती, क्या कोई दिन वह भी होगा, जिस दिन देवहूती का उजड़ा हुआ घर बसेगा ? फिर सोचती, यह भी बावलापन है ! जो साधू हो गया, वह घरबारी कैसे होगा ! ! ! फिर जी में बात आती, तो भगवान ने इसको इतना रूप क्यों दिया ! इतना धन विभव क्यों दिया ! ! ! जो सदा उसको जलना ही है, तो यह रूप और धन विभव किस काम आवेगा ! क्या देवहूती को विपत से उबारनेवाले देवस्वरूप उसकी इस विपत से रच्छा करने का भी कोई उपाय सोचेंगे ! देवस्वरूप का नाम मुंह पर आते ही वह चौंक बठी । देवस्वरूप को एक दिन अचानक पारबती ने देख लिया था, देखते ही उसके जी का भाव न जाने कैसा हो गया था, इस घड़ी भी उसके जी का भाव वैसा ही हुआ, वह मन ही मन सोचने लगी, देवस्वरूप का मुखड़ा देवहूती के पति से इतना क्यों मिलता है ? देवहूती का पति भी साधू हो गया है, देवस्वरूप भी साधु है ! फिर क्या देवस्वरूप ही तो देवहूती का पति नहीं है ? इन बातों का सोच कर पारबती बड़े गोरखधंधे में पड़ी । वह जानना चाहती थी देवस्वरूप कौन है ? कहाँ का है ? क्यों दूसरोंकी भलाई के लिए दिन रात उतारू रहता है ? क्यों उसने देवहूती के साथ इतनी भलाईयाँ कीं ? पर बहुत कुछ पूछ पाछ करने पर भी वह इन बातों को न जान सकी । इसी बीच

एक दिन पारवती ने सुना, कल्ह देवस्वरूप बंसनगर से चले जावेंगे, उनको कई तीर्थों में जाना है, इसी लिए बे उतावली कर रहे हैं । पारवती ने गांव से चले जाने के पहले एक दिन अपने यहां उन का नेवता करना चाहा—और यह बात हरमोहन पांडे से कही । उन्होंने पारवती की बात मानी, और नेवता देकर एक दिन देवस्वरूप को अपने यहां बुलाया । जब वह खा पी चुके तो घर से मिली हुई एक बैठक में उन दोनों जनों में इस भांति बातचीत होने लगी ॥

हरमोहन । आपने हम लोगों के साथ जितनी भलाई की है, उनका हम लोग कहां तक निहोरा कर—बिना किसी अर्थ के इस भांति दूसरोंकी भलाई करते आपसे पहले मैंने किसी दूसरेको नहीं देखा । आप अब बंसनगर छोड़ कर आज कल में जाना चाहते हैं, इससे हम लोगों का जी मल रहा है, आंखों से आंसू निकल रहे हैं । क्या आप फिर दर्शन दे कर हम लोगों को कृतार्थ करेंगे ? आप जैसे साधुओं का दर्शन करने ही से हम जैसे घर-बारियों का भला होता है ।

देवस्वरूप । एकके विपत्त में फँसने पर दूसरेका उसके बचाने के लिए उतारू हो जाना, हम सब लोगों का सबसे बड़ा धर्म है । मैंने वही किया है, इसमें आपके निहोरा मानने की कोई बात नहीं है । यह आपका बड़प्पन है जो इस बहाने आप मुझको सराहते हैं । और जो प्यार आप लोगों का मेरे साथ है, वह आप लोगों की दया है, मुझमें कोई गुण ऐसा नहीं है, जिस के लिए आप लोग मुझको इतना चाहें । यह सच है, मैं आज

कल में बंसनगर छोड़ूंगा, पर कुछ दिनों पीछे आप लोगों का दर्शन करने की फिर चाह है। मेरा जनम ब्राह्मण के घर में हुआ है, एक तो यों ही ब्राह्मणों और साधुओं का भेस बहुत मिलता जुलता होता है—दूसरे इधर दो तीन बरस मैं साधुओं के साथ रहा भी हूँ। इससे मेरा भेस कुछ साधुओं का सा देख कर आप मुझको साधु समझ रहे हैं, पर सच बात यह है, मैं साधु नहीं हूँ साधु क्या, साधुओं के पाँच की धून भी नहीं हूँ ॥

हरमोहन। आपकी बातें ठीक ठीक मेरी समझ में नहीं आती हैं, क्या आप साधु नहीं हैं? घरबारी हैं?

देवस्वरूप। हाँ! घरबारी हो समझिये, जब मैं साधु बनने योग्य अभी नहीं हूँ तो अपनेको घरबारी कहने में क्यों हिचकूंगा। साधु होना टेढ़ी खीर है, बड़ा कठिन काम है। सर पर जटा बढ़ाये, भभूत रमाये, गेरुआ पहने, हाथ में तूँबा और चिमटा लिये, आप कितनों को देखते हैं, पर क्या वे सभी साधु हैं? नहीं, वे सभी साधु नहीं हैं। भेस उनका साधुओं का सा देख लीजिये, पर गुण किसीमें न पाइयेगा। कोई पेट के लिए भभूत रमाता है, कोई चार पैसा कमाने के लिए जटा बढ़ाता है, कोई लोगों से पुजाने के लिए गेरुआ पहनता है, और कोई घर के लोगों से लड़ कर बिगड़ खड़ा होता है, और झूठ मूठ साधुओं का भेस बनाये फिरता है। इन सब लोगों से निराले कुछ ऐसे लोग होते हैं—जो न तो कुछ काम कर सकते—न किसी काम में जी लगाते—जिस काम को वे करना चाहते हैं, आलस से वही काम उन के लिए पहाड़ होता है—फिर उनका दिन कटे तो कैसे कटे!

वे सब छोड़ छोड़ कर साधु बनने का ढ़चर निकालते हैं, और इसी बहाने किसी भांति अपना दिन काटते हैं। जब तक इन लोगों को तन ढाकने और पेट भरने ही तक मिलता है, तब तक कहने सुनने को ये लोग कुछ भले होते भी हैं, पर जो कहीं कुछ रुपया पैसा हाथ चढ़ गया, कुछ धन धरती मिल गयी, तो अनर्थ होता है, जो काम बिगड़े से बिगड़ा घरबारी नहीं कर सकता, उन कामों को यह भूठा साधु करता है और जितनी बुराई देश और देश के लोगों की इन लोगों के हाथों होती है, दूसरोंके हाथ कभी नहीं हो सकती--हम से जवान साधु तो और अनर्थ करते हैं ! अभी भली भांति मूछ भी नहीं आयी है—अट्ठारह बीस बरस का बय है--जवानी ऊपर फिसली जाती है—अकड़ तकड़ देह में भरी हुई है—मन में सभी ढंग की चाहें हैं—एक चाह ने भी पूरा होने का अवसर नहीं पाया—इसी बीच साधु बनने की धुन समायी। साधु बने, भभूत रमाया, जटा बढ़ायी, गेरुआ पहना, पर इस साधु बनने से क्या हुआ, जब तक मन हाथ न आया, और जी की चाहें न मिटीं। हां ! इतना होगा, भोले भाले लोग उनको साधू महामना समझ कर उनसे किसी बात की भिक्षक न रक्खेंगे, और वह महामना देश की और देश के लोगों की बुराई करते रहेंगे। किसी पोथी में इस भांति साधु होना नहीं लिखा है, कहीं पेसे साधुओं की बड़ाई नहीं की गयी है। आज कल साधू होना भेड़ियाघसान हो गया है—जिसको देखो वही साधू बना फिरता है, पर इस भांति साधु होने से साधु न होना ही अच्छा है।

मैं यह नहीं कहता सभी साधू ऐसे हैं, जितने साधू देखने में आते हैं, सभी बुरे और खोटे हैं। पर यह कहूंगा जो भली भांति पढ़ा लिखा नहीं है, जिसके साधू होने का समय नहीं आया, जो यह नहीं जानता साधू किस लिए हुआ जाता है, जिसने यह नहीं समझा, साधूभेस बनाने के पहले साधू का गुण होना चाहिए, उसको साधू बनना जग को धोखे में डालना है। साधू का भेस देखकर हमारा आपका उसका आदर मान न करना, एक ऐसी बात है, जिससे कभी किसी अच्छे साधू का मान न करने का दोष भी हमको आपको लग सकता है। इसीसे हम लोगों में जो साधू के भेस में देखने में आते हैं, उन सबका आदर और मान करने की चाल है। पर यह हमारा और आप का करतब है, ऐसे झूठे भेस बनानेवाले के लिए यह और लाज की बात है। जितनी बातें मैं ऊपर कह आया हूं, उससे आपने समझा होगा, मुझमें ऐसे गुण अब तक नहीं हैं, जिससे मैं साधू हो सकूं, और इसी लिए मैंने आपसे कहा है, मैं साधुओं के पांव की धूल भी नहीं हूं। हां ! साधू होने के लिए जतन कर रहा हूं—आप बड़ों की दया से जो मेरा जतन पूरा हुआ, मेरा मन ठीक हो गया, और चाहें मिट गयीं, तो समय आने पर मैं साधू होने की चाह रखता हूं। इस समय साधू कह कर आप मुझको न लजवावें।

हरमोहन। आप बहुत बड़े लोग हैं जो ऐसी बातें कहते हैं, मैं आपकी बातों को काट कर यह न कहूंगा—आपसे बढ़ कर कौन साधू हो सकता है। पर यह कहूंगा, हमलोगों का बड़ा

भाग्य है, जो आप फिर दर्शन देने के लिए इस गांव में आने की चाह रखते हैं। जो कभी कभी आकर आप दर्शन दे जाया करेंगे, तो हम लोगों का बहुत कुछ भला होगा। इस घड़ी हम आपसे अपनी एक और भलाई की आशा रखते हैं। आप जानते हैं, दो बरस हुआ, देवहूती का पति किसी साधू के साथ कहीं निकल गया। आप कितने तीर्थों, नगरों और गावों में जाते हैं, ऐसा संजोग हो सकता है, जो आपके साथ उसकी भेंट होवे, आप का जी इधर होने से ऐसा होने में और सुभीता होगा। जो भगवान् यह दिन दिखलावें, और आपके साथ किसी दिन उसकी भेंट हो जावे, तो आप उसको घर फेर लाने के लिए जतन करेंगे। जिस भांति देवहूती को आपने कितनी बिपतों से बचाया है उसी भांति देवहूती को इस बिपत से भी बचावें। हम लोगों की बड़ी गिड़गिड़ाहट के साथ आपसे यही बिनती है।

देवस्वरूप ! आपके बिना कहे उसी दिन से मेरे जी में यह बात बैठी हुई है, जिस दिन यह बात मैंने जानी। मैं जहां तक हो सकेगा देवहूती के पति के ढूंढने में न चुकूंगा, पर आप दया करके उनका रूप रंग क्या कुछ बतला सकते हैं ?

हरमोहन। मैंने सुना है उसका रूप रंग आपसे बहुत मिलता है।

देवस्वरूप यह सुन कर कुछ घड़ी चुप रहे—एक एक करके कई बार हरमोहन के मुखड़े पर डीट डालते रहे। फिर बोले—आपका नाम हरमोहन पांडे झोड़ कुछ और है ? क्या देवहूती का कोई दूसरा नाम भी है ?

हरमोहन । मेरा नाम तो हरमोहन पांडे ही है—पर मुझको लोग कहते मोहन पांडे हैं । इसी भांति देवहूती का भी कोई दूसरा नाम नहीं है—हां ! प्यार से लोग उसको पियारी पुकारा करते हैं । क्यों ? आपने यह क्यों पूछा ?

देवस्वरूप कुछ इधर उधर करके बोले—पियारी तो मर गयी न ? देवस्वरूप को इधर उधर करते देखकर हरमोहन पांडे ने एक गहरी डीठ उनके ऊपर डाली, इस समय उनके मुखड़े पर एक रंग आता, और एक जाना था, जी में अनाखा उलट फेर हो रहा था । पर उन्होंने सम्मल कर कहा, नहीं वह मरी नहीं, अब तक जीती है । क्या देवहूती के मरने की बात आप जानते हैं ?

देवस्वरूप ने धीरज के साथ कहा—हां ! मैंने सुना कुछ ऐसा ही था, पर आपकी बात भी सच हो सकती है । किसी बड़े रोग में बेसुध हो जाने पर बहुत लोगों के लिए ऐसी बातें फैल जाती हैं ।

हरमोहन । ठीक ऐसा ही देवहूती के लिए भी हुआ है, जिस दिन यहां यह बात फैली, उसके थोड़े ही दिनों पीछे, मैंने उसके पति के किसी साधू के साथ निकल जाने की बात सुनी । जान पड़ता है अपनी स्त्री को मरा समझ कर ही, उसने ऐसा किया है । जो हो, पर आप यह बतलावें, आप इन बातों को कैसे जानते हैं ? क्या आप रामनगर के रहनेवाले हैं ?

एक जन सच्चे जी से तीर्थ जाने के लिए सजधज कर खड़ा है, कैसे वहां जाकर देवताओं की सेवा पूजा करके अपना जनम सफल करेगा ! कैसे साधु महातमाओं का दर्शन करके अपनेको बड़भागी

बनावेगा !! वह इन्ही उमंगों फूला नहीं समाता है। इसी बीच अचानक उसने एक ऐसी बात सुनी, जिससे उसको तीर्थ जाने का विचार छोड़ना पड़ा, सारी चाहें उसकी धूल में मिल गयीं, और मुखड़े पर निराशा-भरी गहरी उदासी झलकने लगी। ठीक यही दशा हरमोहन की बात सुन कर देवस्वरूप की हुई। मुखड़े का चमकता हुआ चटकीला रंग फीका पड़ गया, आंखों की जोत कुछ मैली हो गयी, और अचानक वह कुछ घबरा से गये, पर देखते ही देखते ये सब बातें दूर हुईं, धीरज मुखड़े पर खेलने लगा, और उन्होंने कुछ चौंकते चौंकते कहा, हां ! मैं रामनगर का ही रहनेवाला हूँ ।

हरमोहन पांडे ने कुछ उकताहट के साथ कहा, आपके बाप का नाम ?

देवस्वरूप ने वैसे ही धीरज के साथ कहा, पंडित गोविन्दस्वरूप ?

अबकी बार हरमोहन का कलेजा धक से हो गया, उन्होंने लड़खड़ाती जीभ से कहा, और आपका नाम ? फिर कहा—क्या देवस्वरूप ही आपका नाम है ?

देवस्वरूप बोलना ही चाहते थे, इतने में लाल पगड़ीवाले, थाने के दो मुचंडे, अचानक बैठक में घुस पड़े, और डांट कर बोले तुम लोग बासमती को मरवा कर यहां बैठे अट-कौसल कर रहे हो ! उठो ! अभी उठो !! देखो आज कैसी गाढ़ी छनती है। हरमोहन की नानी तो थानेवालों को देखते ही मर गयी थी, इसपर उन्होंने जो डांट बतलायी, उससे उसके रहे सहे औसान भी जाते रहे। पर

देवस्वरूप ने बिना किसी घबराहट के कहा, देखो ऊधम करने का काम नहीं है, जहां तुम लोग कहो वहां हम लोग चल सकते हैं । देवस्वरूप का रंग ढंग और धीरज देखकर फिर वे दोनों कुछ न बोले और जिधर से आये थे, देवस्वरूप और हरमोहन को लेकर चुपचाप उसी ओर चले गये ।

छब्बीसवीं पंखड़ी ।

बासमती के मारे जाने पर दो चार दिन गांव में बड़ी हल-चल रही, थाने के लोगों ने आकर कितनों को पकड़ा, मारने-वाले को ढूँढ़ निकालने के लिए कोई बात उठा न रखी, पर बासमती से गांववालों का जी बहुत ही जला हुआ था, इससे लाख सर मारने पर भी थाने के लोग अपनी सी न कर सके, अन्त को उन लोगों को हार माननी पड़ी, और दो चार दिन पीछे गांव में फिर चहल पहल हुई। आज बंसनगर की निराली छुटा है, फूल पत्तियों से सज कर वह दूसरा स्वर्ग बन गया है। घर घर द्वारों पर बंदनवारें बंधी हैं, केले के खंभे गड़े हैं, और जल से भरे कलसे रखे हैं। स्त्रियां मीठे सुरों में गा रही हैं, पुरुष जहां तहां खड़े हँस बोल रहे हैं, आपस में चुहलें कर रहे हैं, और लड़के किलक रहे हैं, उछल कूद रहे हैं, तालियां बजा रहे हैं, और गांध की छटा देखते हुए भुंड के भुंड इधर उधर घूम रहे हैं। देखो, यह साम्हने का मन्दिर कैसा सजा हुआ है, फूल पत्तियों से, केले के खंभों से, बंदनवारों से वह कैसा अनूठा और सुहावना बन गया है ! उसके सामने एक भंडप में बाजा कैसे मीठे सुरों में बज रहा है ! इन सामने उछलते खेलते आते हुए लड़कों की ओर देखो, उनकी धुन बाजों की धुन के साथ कैसी लग रही है ! वे बाजों के मीठे सुर पर कैसा उमग रहे हैं ! मंदिर के ठीक बीच में एक बहुत ही ऊंचा भंडा गड़ा हुआ है, इस भंडे के इधर उधर दो छोटे भंडे और हैं, घीरे बहनेवाली बयार इन भंडों के फरहशों को

ले कर खेल ही है । हमारा जो भी उनमें उलझा हुआ है । उनके लाल फरहरों पर उजले कपड़े से बने अच्छरों में कुछ लिखा है, हम उसको पढ़ना चाहते हैं । अच्छा देखो, हमने उसको पढ़ लिया—जो सबसे बड़ा और ऊंचा भंडा है, वह आकाश से बातें करते हुए कह रहा है “धर्म की सदा जय” उसके पास का एक भंडा ललकार रहा है “श्रंत भले का भला और बुरे का बुरा” और दूसरा धीरे धीरे अपने फरहरे को उड़ाता है, और बतलाता है—“सांच को आंच नहीं” । इस मंदिर के पास ही एक घर है, घर के द्वार पर बहुत से लोग इकट्ठे हैं, इस घर को हम लोग कई बार देख चुके हैं, यह हरमोहन पांडे का घर है, आओ देखें यहां क्या हो रहा है ।

देखो, सामने एक लम्बी चौड़ी चांदनी तनी हुई है, चांदनी के नीचे चौकियों पर और चौकियों के नीचे धरती पर सुन्दर बिछावन बिछा हुआ है । एक एक, दो दो, चार चार, दस दस, करके लोग आ रहे हैं, और ढब से बिछावन पर बैठते जाते हैं । बिछावन ऊपर नीचे लगभग भर गया है, कितने ही लोग आसपास खड़े भी हैं, पर फिर भी भीड़ पर भीड़ चली आती है—और लोग टूटे पड़ते हैं । धीरे धीरे हरमोहन पांडे के घर के पास की धरती लोगों से खचाखच भर गयी, कहीं तिल धरने को ठौर न रही, पर इतनी भीड़ होने पर भी ऊ्रम नहीं था, सब लोग चुपचाप किसीकी बात देख रहे थे, पान नैट रहा था, पंखे भूले जा रहे थे, और हरमोहन पांडे अपने दस बीस साथियों के साथ इन सब लोगों की आवभगत में लगे हुए थे ।

अब हम घर के भीतर भी चल कर देखना चाहते हैं, वहां क्या होता है । हम लोगों में भलेमानसों के घर में जाने की चाल नहीं है । जिस भलेमानस के घर में लोग बेरोक-टोक आते जाते हैं, न उसीको कोई भला समझता, और न वही भला गिना जाता, जो ऐसा करता है । पर आप आइये, हमारे साथ चले आइये, घबराइये नहीं, हम लोग सब ठौर बेरोक-टोक आ जा सकते हैं, और अपने साथ औरों को भी ले जा सकते हैं । इससे न घरवाले को ही कोई बुरा कहता है, न हमहीं लोगों को कोई बुरा बनाता । जब यह चाल है, तो वह बात भले ही न हो, हमको और आपको हिचकने का कोई काम नहीं ! आइये, चले आइये, देखिये, कैसा निराला समा है । आपने कभी खिला हुआ कमल देखा है ? और जो देखा है तो ऐसे बहुत से कमल जिस तालाब में खिले हों, क्या ऐसे किसी तालाब की छटा की सुरत आपको है ? आपने कभी हंसते हुए पूरे चांद की शोभा देखी है ? और जो देखी है तो ऐसे सैकड़ों चांदों से सजे हुए आकाश की छवि को आपने अपने मन में कभी आंका है ? हरे भरे पत्तों की आड़ में डाल पर बैठ कर कोयल को आपने कभी कूकते सुना है ? और जो सुना है तो कितने ही पेड़ों की झुरमुट में ऐसी कई एक कोयलों के बोलने की छटा का ध्यान आपने कभी किया है ? जो सुरत नहीं है, मन में कभी नहीं आंका है, और ध्यान नहीं किया है, तो उसकी सुरत कीजिये । उस छवि को मन में आंकिये और उस छटा का ध्यान कीजिये । और फिर हरमोहन पांडे के घर की शोभा को उससे मिलाइये । आज हरमोहन

पांड़े के घर में सैकड़ों पूरे चांद एक साथ निकले हैं अनगिनत कंवल फूले हुए हैं, और रसीले कंठ से कितनी ही कोयलें बोल रही हैं। इसपर भांत भांत और रंग रंग के कपड़ों की फबन, गोटे पट्टे की चमक दमक, घुघुआओं की झनकार और रंग दिखला रही हैं। एक ठौर चढ़ती जवानी की बहुत सी छुबीलियां बैठी हैं, चांद रस बरसा रहा है, कोयल बोल रही है, कंवल फूले हुए हैं और निराली गंध में बसी हुई बयार धीरे धीरे चल रही है। वहीं देवहूती भी बैठी हुई घर में उंजाला कर रही है—आज उसके मुखड़े पर निराला जोबन है ! अनूठी छटा है ! और अनाखा आनंद है ! आज उसके गहनों कपड़ों की छवि देखे ही बन आती है। पास बैठी हुई छुबीलियां उसको छेड़ रही हैं, और कभी कभी इन सबोंका वह ठहाका लगता है, जिससे सारा घर रह रह कर गूंज जाता है। हम यहां ठहरना नहीं चाहते, इन छुबीलियों में हमारा क्या काम ! पर एक बात जी में रही जाती है, देवहूती का आज यह ठाट क्यों !

इस दूसरी ठौर को देखो, यहां देवहूती की मा पारवती बैठी हुई है, पास ही उसीके बय की सैकड़ों स्त्रियां डटी हुई हैं। भांत भांत की बातें चल रही हैं, पर ओर ओर किसीका नहीं मिलता, जितने मुंह उतनी बातें सुनी जा रही हैं। कोई कुछ कहनी है, तो दूसरी अपने मन से दस बातें और गढ़ कर उसमें मिला देती है, न जानें कहां की छानबीन हो रही है। पारवती क्या कह रही है, जी करता है उसे सुनें, पर पास की स्त्रियां ने ऐसा गड़बड़ मचा रखा है, जिससे कुछ सुना नहीं जाता।

जाने दो इस पचड़े को, चलो बाहर ही चलें, देखें अब वहां क्या हो रहा है ।

देखो, अभी यहां वैसा दी जमघटा है, लोग अभी तक उसी भांत चुपचाप किसीकी बाट देख रहे हैं—पर अब कोई आया ही चाहता है, क्योंकि लोगों में कुछ खलबली सी पड़ रही है । अच्छा, आओ, हमलोग भी यहीं ठहरें देखें, किसकी अवाई है !

मंदिर के मंडप में जो बाजा बज रहा था, धीरे धीरे वह धुन से बजने लगा, जय और बधाई की धुन से सारी दिशाएं गूंज उठीं, साथ ही गांव के पांच सात भलेमानसों के साथ धीरे धीरे हमारे जाने पहचाने देवस्वरूप ने उस जमघटे के बीच पांश रखा । देवस्वरूप देखने में वैसे ही धीरे पूरे जान पड़ते थे, उनके मुखड़े का भाव वैसा ही था, धीरज उसी भांत उसपर खेल रहा था, और जैसा गंभीर वह पहले रहता था, अब भी था । वह सबसे जथा-जोग मिलते जुलते चांदनी के भीतर आये, और उसके ठीक बीच में एक ठौर बैठ गये ।

जब देवस्वरूप बैठ गये, उनके मौसरे ससुर नंदकुमार, अपनी ठौर से उठे, और सबकी ओर देखकर कहने लगे—

“आज आप लोगों को बड़े 'प्रानन्द' के साथ मैं यह बतलाता हूं—देवस्वरूप ही देवहूती के वह खोये हुए पति हैं—जिनके लिए हम लोगों का एक एक दिन एक एक बरस हो रहा था । मैं यह जानता हूं मेरे इस बात को बतलाने के पहले ही सारा गांव यह बात जान गया है, क्योंकि जो सारा गांव पहले ही इस बात को

न जान गया होता, तो आज गांव में यह धूमधाम न होती । पर सबके सामने इस बात को छोड़ मुझको और दो चार बातें कहनी हैं, इसीलिए आप लोगों के सामने कुछ कहने के लिए मैं खड़ा हुआ हूं । कई बार देखादेखी होने पर भी देवस्वरूप ने हरमोहन पांडे को और हरमोहन पांडे ने देवस्वरूप को तब तक क्यों नहीं पहचाना, जब तक न्योते के दिन उन लोगों में बातचीत न हुई, यह शंका अब तक लोगों को बनी हुई है । यह शंका ठीक है ; पर आप लोगों को जानना चाहिए—तिलक के दिन से व्याह के दिनों तक एक दिन भी इन दोनों जनों में देखादेखी नहीं हुई थी, और इसी लिए भेंट होने पर भी ये लोग एक दूसरेको न पहचान सके । तिलक चढ़ाने पुरोहितों के साथ मैं गया था, और व्याह के दिनों पांडेजी अचानक कठिन रोग में फँस गये थे, इसीसे देखादेखी न हो सकी थी । देवहूती व्याह में बहुत छोटी थी, इसीसे न उसको देवस्वरूप पहचान सके, और न देवस्वरूप को वह पहचान सकी । देवस्वरूप को पहचाना तो देवहूती की मा ने पहचाना और वही पहचान सकती थीं, और उन्हींके पहचानने से ही हम लोगों को आज का यह दिन देखने में आया । आप लोग कहेंगे—आज तक तुम कहां सोते थे, पर यह भी दिनों का फेर ही था, जो मैंने भी उसी दिन देवस्वरूप को देखा, जिस दिन यह बात धीरे धीरे सब लोगों में फैल गयी थी । देवस्वरूप को लड़कपन में लोग देख कहते थे, उनके इस लड़कपन के नाम ने लोगों को और धोखे में डाला । अब मैं समझता हूँ आप लोग सब बात भली भाँति समझ गये होंगे ” ।

इतना कह कर पंडित नंदकुमार अपनी ठौर पर बैठ गये । उस घड़ी जय और बघाई की वह धूम थी, जो किसी भांति नहीं लिखी जा सकती । जिस घड़ी यह धूम मच रही थी, एक ऐसा उंजाला चांदनी के भीतर छा गया, मानों बिजली कौंध गयी—साथ ही—

“ धर्म का बेड़ा पार ”

इस ध्वनि से सारी दिशा गूंज उठी ।

—:।०:—

सत्ताइसवीं पंखड़ी ।

आज दस बरस पीछे हम फिर बंसनगर में चलते हैं । पौ फट रहा है, दिशाएं उजली हो रही हैं, और आकाश के तारे एक एक कर के डूब रहे हैं । सूरज अभी नहीं निकला है, पर लाली चारों ओर दिशाओं में फैल गयी है । कहीं कहीं पेड़ों के नोचे अभी भी गहरी अधियाली है—पर अंधेरा धीरे धीरे दूर हो रहा है । चिड़ियां बोल रही हैं, कौए कांव कांव कर रहे हैं, फूल खिल रहे हैं, और सरजू नदी बयार के ठंढे झोकों से ठंढी हो कर धीरे धीरे बह रही है । इसी सरजू के एक पक्के घाट पर एक जन बैठा हुआ पूजा कर रहा है, उसके माथे में चंदन लगा है, उसकी दोनों आंखें अधखुली हैं, और मुखड़ा तेज से चमक रहा है । वह ऐसा एकचित्त हो कर पूजा कर रहा है; और इस भांति सच्चे जी से भगवान के भजन में लगा हुआ है, जिसको देख कर बड़े पापो का जी भी पसीज जाता है । हम जानना चाहते हैं, यह कौन है । यह और कोई नहीं, हमारे जान पहचानवाले देवस्वरूप हैं । सूरज निकलते निकलते उन्होंने अपनी पूजा पूरी की, और सरजू के तीर से बठ कर घर की ओर चले—एक टहलू जो देखने में बड़ा भलामानस जान पड़ता था—पीछे पीछे साथ साथ था ।

हम कुछ घड़ी के लिए देवस्वरूप का साथ छोड़ना चाहते हैं—और देखना चाहते हैं, गांव की आज कल क्या दशा है । बंसनगर गांव पहले ही हरा भरा था, पर आजकल वह और चढ़ बढ़ गया था । गांव में जो धनी थे, उनकी चर्चा ही क्या है—

आजकल की दुखियों की दशा भी सुधर गयी थी । देवस्वरूप ने कामिनीमोहन का बहुत सा धन पाकर अपने ठाट-बाट में नहीं लगाया, जो ढंग बनका पहले था, अब भी था । देवहूती भी उन्हींके दिखाये पथ पर चलती थी, लाखों रुपये की सम्पत्ति पाकर उसने अच्छे अच्छे गहने नहीं गढ़ाये, अपने लिए ऊँचे ऊँचे पक्के घर नहीं बनवाये । देवस्वरूप ने उसको समझाया, कामिनीमोहन के धन के हज कौन ! जो अपने पसीने की कमाई नहीं, इसको अपने काम में लगाना अच्छा नहीं । तब वह धन जिससे बहुतों का भला हो सकता है, हम लोग अपने काममें क्यों लावें ? चाहें बढ़ाने ही से बढ़ती हैं, फिर पहले ही उनको बढ़ने का मधसर क्यों दिया जावे ? देवस्वरूप ने गांव के बीन दुखियों की दशा देखी थी, कितनी ही अभागिनी रांडू खिबों के दुःख पर कई बार आंसू बहाया था, उनको ये सब बातें भूलती नहीं थीं । देश जिन बातों से दिन दिन गिर रहा था, वे बातें भी दिन रात उनकी आंखों के सामने फिरा करतीं । इस लिए उन्होंने कामिनीमोहन का बहुत सा धन पाकर उसको अच्छे कामों में लगाया, आज बनके किये हुए अच्छे कामों से ही बरानगर का ढंग निराला हो गया था । देवस्वरूप का साथ छोड़ कर ज्यों हम आगे बढ़े, त्यों एक बहुत ही लम्बा चौड़ा ऊँचा घर सामने दिखलाई पड़ा । इस घर के फाटक पर लिखा हुआ था—

कामिनीमोहन की धर्मशाला

— —

आप आकर रहें यहां पर आज ।
भाग्य ऐसे कहां हमारे हैं ॥

— —

हमने इस धर्मशाले के भीतर पैठ कर देखा, इसमें बटोहियों के सुख के लिए सब कुछ किया गया था ! यहां बटोहियों को ठहराया ही नहीं जाता था, उनके दो दिन तक खाना भी मिलता था । और जो इसके कामकाजी थे, वे कितने भले और अच्छे थे, यह मुझसे बतलाया भी नहीं जा सकता । मैं उनकी आब-भगत का ढंग देखकर मोह गया, उनकी मीठी बातों का रस चख कर जी ऊबता ही न था । मैं इस घर को भली भांति देखकर बाहर आया । बाहर आते ही इस घर से थोड़ी ही दूर पर बहुत ही लम्बा चौड़ा और कई खंडों में बंटा हुआ एक दूसरा घर मुझे दिखलाई पड़ा । इस घर के फाटक पर लिखा हुआ था —

कामिनीमोहन का बनाया हुआ

अनाथालय

—:०::—

है सहारा जिसे नहीं, उस पर ।

कौन आंसू नहीं बहावेगा ?

— — —

इस घर में जब मैं गया, देवस्वरूप के जी में कितनी दया है, यह बात मुझको भली भांति जान पड़ी। यहां सैकड़ों लड़के और लड़कियां मुझको दिखलाई पड़ीं। इन लड़के और लड़कियों के मा बाप नहीं थे, और न दूसरा कोई इनको सहारा देनेवाला था, इसलिए देवस्वरूप और देवहूती ने अपनी दया का हाथ इनके सर पर रक्खा था। गांव में जब हम घुसने लगे थे, हमारे कान में यह भनक पड़ी थी—जिनके मा बाप नहीं उनके मा और बाप देवस्वरूप और देवहूती हैं—इस घर में आकर हमने यह बात आंखों देखी। जितने लड़के और लड़कियां यहां थीं, सब ऐसे कपड़ों में थीं, और उनका मुखड़ा ऐसा हरा भरा था, जैसा बड़े सुख में पले लड़कों का भी नहीं देखा जाता। इन लड़कों को यहां लिखना पढ़ना और दूसरे भांति भांति के काम भी सिखलाये जाते थे, जिससे सयाने होने पर अपना पेट वे आप पाल सकें। सबसे बड़ी बात यह थी—ऐसे लड़कों की खोज के लिए देवस्वरूप ने पचीसों ऐसे लोग रखे थे, जो देश देश में घूम कर यही काम किया करते थे। मेरा जी इस घर को देखकर भर आया, और मैं सोचने लगा—हाय ! न जानें कितने लड़के इस भांति सहारा न पाकर इस धरती से उठ जाते होंगे, न जानें कितने अपना सबसे अच्छा हिन्दू धर्म छोड़ कर दूसरे धर्मों में चले जाते होंगे, पर हमारे देश में देवस्वरूप ऐसे कितने लोग हैं। हम सैकड़ों रुपये मिट्टी में मिला देते हैं, पर ऐसे कामों में एक पैसा भी हमसे नहीं उठाया जाता, क्या इससे भी बढ़कर कोई बात जी को दुखानेवाली है ? इन बातों को सोचते मेरी आंखों

मैं आँसू आने लगे, मैंने उनको बड़ी कठिनाई से रोका । इसी समय एक तीसरे घर पर डीठ पड़ी, इस घर के फाटक पर लिखा हुआ था—

कामिनीमोहन की पाठशाला

—:०:—

जिसने कुछ भी नहीं पढ़ा लिखा ।

खो दिया हाथ का रतन उसने ॥

—:—

मैंने इस घर में जाकर देखा, गांव के सब जात के लड़के इसमें पढ़ रहे थे, और देश काल के विचार से यहां सभी ढंग की पढ़ाई होती थी, साथही इसके जिसका जो निज का काम था वह काम भी उसको यहां सिखलाया जाता था । इस घर में भी बहुत से खंड थे, एक एक खंड में एक एक बात सिखलायी और पढ़ायी जाती थी । ब्राह्मणों को और ऐसे लड़कों को जिनको कोई सहारा न था, यहां खाना कपड़ा भी मिलता था । जिस खंड में ब्राह्मण के लड़कों को वेद पढ़ाया जाता था, उस खंड में जाने पर न जाने कितनी पुरानी बातें जी में घूमने लगें । पंडितों का सहज भेस, सीधी बोल चाल, और वेदों का घुर से पढ़ा जाना, बड़े पापी के जी में भी धर्म का बीज बोते थे । हमको यहां से हटना कठिन हो गया, पर किसी भीर्ति यहां से निकले, और ज्यों आगे बढ़े त्यों एक और लम्बा चौड़ा घर सामने दिखलाई पड़ा । इस घर के फाटक पर लिखा था—

कामिनीमोहन के नाम पर
इस घर में सदाबर्त बंटता है ।

—०—

मत कभी पेटजलों को भूलो ।
भूख की पीर तुरी होता है ॥

—०—

गांव में जो दीनदुखी दृष्टे कष्टे और काम करने योग्य थे, उन को रुपया अन्न और गाय बैल देकर देवस्वरूप ने कई एक कामों में लगा रखा था । पर जो लूते, लंगड़े, अंधे, रोगी और अपाहिज थे, उन सबको बहां नित्य कोरा अन्न मिलता था । दूसरे गांवों के भी ऐसे लोग जो सदाबर्त बंटने के बेले यहाँ आते थे—फेरे नहीं जाते थे । उन सबोंकी आवभगत भी यहाँ वैसी ही होती थी, जैसी गाँववालों की । हम यहाँ से और आगे बढ़े, कुछ दूर जाकर एक बहुत ही सुथरा और अच्छा घर दिखलाई पड़ा । इस घर के फाटक पर लिखा था —

कामिनीमोहन का बनाया हुआ
रोगियों के औषध कराने का घर

—०—

हम उन्हें भूला समझते हैं बहुत ।
रोगियों पर जो दया करते नहीं ॥

—०—

इस घर में, गांव ही के नहीं, दूसरे गांवों के भी बहुत से रोगी औषध कराने के लिए आते थे । उन सबकी देखभाल और समझाल यहां बहुत ही जी लगा कर की जाती थी । रोगियों के ठहरने और रहने के लिए अलग अलग बहुत से अच्छे अच्छे घर थे—यहां उनको सब प्रकार का खाना भी मिलता था । जो यहां ठहरना नहीं चाहते थे, उनको औषध ही दी जाती थी । जो निरे कंगाल और भूखे रहते, उनको कपड़े भी मिलते थे । जो यहां पका पकाया खाना चाहते, उनके लिए वासना रखे हुए थे—जो कोरा अन्न मांगते थे, उनको कोरा अन्न ही मिलता था—रोगियों की टहल के लिए कई एक टहलू थे । अब तक यह सब देखते भालते हम सरजू के तीर से थोड़ा ही आगे बढ़े थे—पर अब यहां से और आगे बढ़ कर हम गांव में घुसे । गांव में घुसने पर हमको एक घर भी उजड़ा हुआ न मिला । पहले गांव में पचासों खंडहर थे, पर आजकल वे सब बस गये थे । गांव में जिसको देखो वही सुखी, और वही काम में लगा हुआ दिखलाई देता । बीच गांव में पहुँचने पर हमको कामिनीमोहन का घर दिखलाई दिया, साथ ही बहुत सी बातों की एक साथ सुरत हुई । इस घर के फाटक पर पहले जैसे आठ पहर पहरा पड़ा करता था, आज भी पड़ता था । पर हम पहरेवालों से कह सुनकर किसी भांति फाटक के भीतर गये । इस घर में दो खंड था, एक पुरुषों का, दूसरा स्त्रियों का । जो खंड पुरुषों का था उसमें हमको बहुत से लोग काम करते दिखलाई पड़े—ये सब कामकाजी थे, और जो बहुत से अच्छे अच्छे काम देवस्वरूप ने

खोले थे, उन सबकी लिखापढ़ी, देखभाल और उनका लेखा इन लोगों के हाथ में था । मैं यहां से हटा और दूसरे खंड पर पहुँचा । यहां बड़ा कड़ा पहरा था । इस खंड के फाटक पर लिखा हुआ था—

अभागिनी फूलकुंवर ने अपना

बढ़ प्यारा घर अपनी रांड

बहनों को भेंट किया

— — —

सोग उसका सहा नहीं जाता ।

हाथ ! जिसका रहा सुहाग नहीं ॥

— — —

हम इस खंड में जाने नहीं पाये, पर पूछने पर हमको सब बातें जान पड़ीं । इस घर में गांव की ऐसी रांड स्त्रियां काम करती थीं, जो भले घर की थीं, और जिनका कहीं सहारा नहीं था । उनको यहां सिलाई, बेलबूटा काढ़ना, सूत का काम, और इसी ढंग के बहुत से और काम सिखलाये जाते थे, और उनसे बहुत थोड़ा काम लेकर, उनके खाने पीने और कपड़ों का व्योत लगाया जाता था । पास ही लड़कियों की एक छोटी पाठशाला भी थी, इसके फाटक पर लिखा हुआ था—

फूलकुंवर की लड़कियों
की पाठशाला

वह लड़का भला न क्यों होगा ।
मा जिसकी पढ़ी लिखी होगी ॥

हम यहां से हटकर कामिनीमोहन की फुलवारी के फाटक पर पहुंचे। अब यह फुलवारी सबकी संपत्ति थी। देवस्वरूप ने इसको सारे गांव के लोगों को दे दिया था। इसके फाटक पर लिखा हुआ था—

चैतुका

कौन चुप चाप कह रहा है वह ।
क्यों छुटा देख हम अटकते हैं ॥
देा दिनों भी न फूल रहता है ।
किन्तु कांटे सदा खटकते हैं ॥
कामिनीमोहन ।

इस फाटक को भी छोड़ कर हम आगे बढ़े। अब हमको देवस्वरूप का घर देखना था। जाते जाते हमको हरमोहन पांडे का घर मिला, और इसी घर की दाहिनी ओर देवस्वरूप का घर दिखलाई पड़ा, इस घर को देवस्वरूप ने अपने रुपये से बनवाया था, और

आजकल वह देवहूती के साथ इसीमें रहते थे । देवस्वरूप के पास बाप दादे की इननी संपत्त थी, जिससे वह अपना दिन भली भांति बिता सकते थे, इस लिए कामिनीमोहन की संपत्ति में से वे अपने लिए कभी एक पैसा नहीं लेते थे, और अपने लिए जो कुछ करते थे वह अपने बाप-दादे की संपत्ति से ही करते थे । इस घर के द्वार पर एक बहुत बड़ी बैठक थी, इसी बैठक में देवस्वरूप बैठे हुए थे, हम उसके भीतर गये । नित्य छ बजे दिन से ग्यारह बजे दिन तक देवस्वरूप अपने खोले सारे कामों की जांच पड़ताल और देखभाल करते थे, इसके पीछे वे खाने पीने में लगते थे । अब बारह बजा ही चाहता था, इस लिए देवस्वरूप भी रोटी खाकर बैठक में आ गये थे । एक पांच बरस का लड़का उनसे तोतली बातें कर रहा था, वह भी उसको खेला रहे थे, इसी बीच बारह बजा, और बैठक में एक कामकाजी आकर एक ओर बैठ गया, कुछ पीछे डजले कपड़ों में एक भलेमानस दिखलाई पड़े—देवस्वरूप ने उनको आदर से बैठाया, उनका कुशल छेम पूछा, उनसे मीठी मीठी बातें कीं, टहलते टहलते पास जाकर उनके अनजान में सबकी आंखें बचाते हुए उनके एक कपड़े के कोने में कुछ बांधा, और फिर अपनी ठौर आकर बैठ गये । ये अभी बाहर गये थे, इसी बीच किसीकी चीठी लिये एक जन और वहां आया, और वह चीठी देवस्वरूप को दी । देवस्वरूप ने उसको खोलकर पढ़ा । उसमें लिखा था—

“तुम बिन नाथ सुने कौन मेरी

आपका

जगमोहन”

देवस्वरूप पढ़ते ही सब समझ गये, और उसपर लिखा “पांच फूल आपकी भेंट किये जाते हैं” और पांच रुपये उस जन को दे कर वहां से चलता किया । बैठक में बैठे हुए काम काजी ने चुप चाप लेखे के चिट्ठे पर लिखा—

नंदकुमार लाल ५)

जगमोहन मिश्र ५)

एक बजे से चार बजे तक मेरे देखते देखते कितने लोग आये, किसीने अपने लड़की का ब्याह बतलाया, किसीने आंसू बहाया, किसीने कोई और ही बहाना किया, और देवस्वरूप ने भी कुछ न कुछ सभीको दिया । ये जितने थे सब ऐसे थे, जिनका दिन कभी बहुत अच्छा था, पर अब पतला पड़ गया था, फिर भी भरम किसी भांति बना था, देवस्वरूप ने उनके इस बने बनाये भरम को बिगाड़ना अच्छा नहीं समझा, और इसी लिए एक यह ढंग भी उन्होंने निकाल रखा था । उन्होंने ने अपने सामने एक चौकठा लटका रखा था, उसमें लिखा हुआ था—

देखिये बिगड़े नहीं उनका भरम ।

मरते हैं पर मांग जो सकते नहीं ॥

इस ढंग की खियों के लिए, ठीक ऐसा ही ढंग देवहूती का था, और इसी लिए गांव में घर घर इन लोगों की जैजैकार होती थी । जो कुछ पढ़ना लिखना होता, देवस्वरूप इसी बेले

पढ़ते लिखते भी थे, और पढ़ते पढ़ते जो कोई काम ऐसा जान पड़ता जिसमें हाथ गँधाना वह अच्छा समझते, तो उसमें भी वह कुछ न कुछ देते थे। आज उन्होंने दो कामों में कुछ दिया, उन्होंने एक ठौर पढ़ा, बिजनौर में एक मंदिर गिर रहा है, उस को फिर से ठीक करने के लिए पांच सौ रुपये चाहिए—देवस्वरूप ने यहां सौ रुपये भेजे। दूसरी ठौर उन्होंने पढ़ा, बिहार में कुछ लोग अपनी देश भाषा की बढ़ती के लिए जतन कर रहे हैं, पर रुपये के टोटे से ठीक २ काम नहीं चल सकता—देवस्वरूप ने यहां दो सौ रुपये भेजे। इसी भांति वे और और कामों में भी समय समय पर कुछ कुछ भेजा करते।

चार बजे देवस्वरूप अपनी बैठक से अपने दो चार साथियों के संग निकले, और टहलते हुए गांव के उत्तर और सरजू के तीर पर जा पहुँचे, हम भी साथ थे। यहां एक फुलवारी उन्होंने बनवायी थी, इस फुलवारी के चारों ओर ईंट की पक्की भीत थी, और भांति भांति के खेल वृष्टे और फल फूल के पेड़ों से इसकी निराली छटा थी। फुलवारी के ठीक बीच में एक छोटा सा पक्का तालाब था। जिसमें बहुत ही सुथरा जल भरा हुआ था। देवस्वरूप टहलते टहलते इसी तालाब के पास आये और वहीं एक सुथरी ठौर देख कर बैठ गये। इस तालाब के पास एक बहुत ही सुन्दर मंदिर था, इस मंदिर के द्वार पर सेने के अच्छरों में खुदा हुआ एक पत्थर लगा था, जिसमें यह लिखा था—

फूलदेवी का मंदिर

जो भरी हो भले गुनों ही से ।
कौन देवी उसे न समझेगा ॥

देवी कौन है ? वही, जिसमें अच्छे गुण हों, मैं समझता हूँ फूलकुंवर ऐसी अच्छे गुणवाली स्त्री कोई होगी । उनकी दया और भलमनसाहत की बड़ाई कहां तक करें, कामिनीमोहन ऐसे पति पर भी उनका इतना सच्चा प्यार था, जो उनके मरने के एक महीने के भीतर ही उन्होंने भी यह लोक छोड़ा । कौन ऐसा कलेजा है जो इन बातों को जान कर भी न कसकेगा ! हमलोग उसी फूलदेवी का यह मंदिर बनाकर अपनेको धन्य समझते हैं, और सच्चे जी से उनका और उनके पति का उस लोक में भला चाहते हैं ॥

देवस्वरूप और देवहूती ।

—:~:—

पत्थर पढ़कर मुझको मंदिर देखने की बड़ी चाह हुई । मैं हाथ पांव धोकर और कुछ फूल लेकर मंदिर के भीतर गया । वहां जाकर देवी की मूर्ति देखने पीछे मेरी जो गत हुई, मैं उस को किसी भांति नहीं बतला सकता । बहुत मेल के एक पत्थर की चौकी पर एक अपसरा ऐसी सुन्दर स्त्री की मूर्ति खड़ी थी—मुखड़ा हंसता हुआ होने पर भी कुम्हलाया हुआ था—उसपर गहरी उदासी झलक रही थी । दोनों आंखें आकाश की ओर लगी हुई थीं, जिनसे पलपल कलेजे को टुकड़े टुकड़े करती

हुई निराशा टपक रही थी । दोनों हाथों में दो कमल के फूल थे, जो खिलते खिलते कुम्हला गये थे, और देह पर के एकाध गहने और कपड़े इस ढंग से बने थे, जिनके देखते ही यह बात अज्ञानक मुंह से निकलती थी—हा ! परमेश्वर ! ऐसों की भी यह गत ! ! ! सिर के ऊपर ठीक सामने आकाश में ऊपर बठते हुए कामिनीमोहन की मूर्ति बनी हुई थी, जिसके चारों ओर धीरे धीरे अंधियाली घिर रही थी, पर बीच बीच में एक जोत फूटती थी, जो उस अंधियाली को दूर करना चाहती थी । पास ही दाहिनी ओर चौकी के नीचे देवहूतो की मूर्ति बनी हुई थी, जो अपने हाथ की अंजुली से उसके पांवों पर फूल डाल रही थी ।

मैंने भी सर झुका घर कर हाथ के फूलों को फूलदेवी के पांवों पर डाला, पीछे कलेजा पकड़े हुए मन्दिर के बाहर आया । यहाँ देवस्वरूप की बुरी गत थी, वे फूलकुंवर और कामिनीमोहन की चर्चा अपने साथियों से कर रहे थे, और बेदब दुखी थे । पीछे वह सरजू पर आये, सूरज को डूबता देखकर कुछ पूजा की, फिर घर की ओर चल पड़े । घर आकर वह नौ बजे तक आये हुए लोगों से मिलते जुलते रहे, जब नौ बज गया, वे घर के पास के मन्दिर में गये । यहाँ एक घंटे तक उन्होंने एक पंडित से रामायण की कथा सुनी, पीछे मन्दिर की आरती हो जाने पर घर आये । अब दस बज गये थे, इस लिए खा पी कर वे सोने लगे । हम भी यहीं तक उनके साथ थे, उनके सोने के घर में जाते ही हम उतसे अलग हुए ।

देवस्वरूप बहुत दिन तक इस धरती पर रहे, उनके हाथों देश का, देश के लोगों का बहुत कुछ भला हुआ । देवहूती भी उन की छाया थी, जितने भले काम देवस्वरूप ने किये उन सबमें उस का हाथ था ॥

अब इस धरती पर न देवस्वरूप हैं, न देवहूती ! पर यश उन का अब तक है । नरक स्वर्ग कोई मानता है, कोई नहीं मानता, पर यश अपयश सभी मानते हैं । नित्य लाखों लोग इस धरती पर जनमते मरते हैं, पर देवस्वरूप की भाँत यश बटोरनेवाले कितने मार के लाल हैं ?

—ॐ॥ शुभम् ॥—

साहित्य के कुछ अनमोल रत्न ।

प्रियप्रवास—रुविरत्न पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय कृत—यह हिन्दी का सर्वोत्तम महाकाव्य है। कई प्रतिष्ठित विद्यापीठों में पढ़ाया जाता है। वात्सल्यरस के विरह की खूबी रसिकजनों के आस्वादन की वस्तु है। मूल्य २।) सवा दो रुपये।

सौन्दर्योपासक—हिन्दी का मौलिक उपन्यास। यह भावसूचक गार्हस्थ्य उपन्यास है। भाषा, भाव, और घटना की दृष्टि से यह पुस्तक बड़े महत्व की है। “सरस्वती” इसे बंगला उ. न्यासों के टक्कर का उपन्यास बतलाती है। मूल्य ॥।) बारह आने।

मानव-सन्तति-शास्त्र—४८८८ सन्तान उत्पन्न करना मनुष्यों के हाथ की बात है—यह जानना चाहने हों तो इस पुस्तक को पढ़िये और बलिष्ठ, मेधावी तथा बशस्वी सन्तान उत्पन्न कीजिये। मूल्य १।) सवा रुपये।

स्त्री-कर्तव्य—मूल्य ॥।) आठ आने

भारतीय स्त्रियों की योग्यता, प्रथम भाग—मूल्य ॥=) दस आने
भारतीय स्त्रियों की योग्यता, द्वितीय भाग—मूल्य ॥=) दस आने
पहली पुस्तक में स्त्रियों के कर्तव्य की सुन्दर शिक्षाएं दी गयी हैं। दूसरी और तीसरी पुस्तकों में भारत की प्राचीन स्त्रियों की योग्यता देख कर मुग्ध होना पड़ता है तथा अपना प्राचीन गौरव स्मरण हो आता है।

पुराण-कीर्त्तन—इसमें भारत के प्राचीन वेद-शास्त्रज्ञ ऋषिमुनियों के जीवनचरित बड़ी खोज के साथ सरल भाषा में लिखे गये हैं। यह अपने ढंग की एक ही है। ऐसी पुस्तक हिन्दी में दूसरी नहीं। मूल्य १।) एक रुपया।

नाटकावली—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत। इसमें सत्य हरिश्चन्द्र,

मुद्राराक्षस, भारतदुर्दशा, नीलदेवी, अन्धेर नगरी आदि १६ नाटक हैं। मूल ३) तीन रुपये।

इतिवास-समृच्चब—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत। इसमें काश्मिर-कुसुम, महाराष्ट्र आदि देशों के इतिहास और अगव्वालों खजियों को बरत्ति-कथा आदि की १३ पुस्तकें हैं। मूल्य २) दो रुपये।

भक्त रहस्य—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत। इस भाग में भारतेन्दु की २२ पुस्तकें हैं। भक्तहृदय की भक्तिमयी भावनाओं की मनोमुग्धकर छटा देखिये, भगवत्प्रेम की अलौकिकता का रसास्वादन कीजिये। मूल्य २) दो रुपये।

काव्यामृत-प्रवाह—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत कविश्रेष्ठ भारतेन्दु की कविताओं का अनुपम भण्डार। यह कविता, कविता-प्रेमियों और कवि बनने का चाव रखनेवालों को प्रिय वस्तु है। मूल्य २) दो रुपये।

तृतीय खण्ड और षष्ठ खण्ड फिर से छप रहे हैं।

मानस-मयंक—प्रसिद्ध रामायणी पं० शिवलाल पाठक रचित। इसे गोस्वामीजी की रामायण की कुंजी कहनी चाहिए। इससे राम-चरितमानस के गूढ़ार्थ स्पष्ट मालूम पड़ते हैं। चन्द्रिका नाम की वार्तिक टीका भी साथ है। बड़ी उत्तम पुस्तक है। मूल्य ५) पांच रुपये।

मानस-भाव-प्रकाश—गोस्वामी तुलसीदास कृत रामायण की टीका। भाई सतसिंहजी ज्ञानी ने यह टीका बनायी है। इस टीका में रामायण के भाव बड़ी खूबी से प्रस्फुटित किये गये हैं। बड़े आकार के १४०० पेटों की बड़ी पुस्तक है। मूल्य ८) आठ रुपये।

जाति-भेद—बंगीय श्रेष्ठ कवि द्विजेन्द्रलाल कृत और स्व० गिरिजाकुमार घोष द्वारा अनूदित। इसमें जातिभेद का इतिहास है। मूल्य ॥) बारह आने।

टाड-राजस्थान-देश भाग—राजपुताने के धर्मप्रेमी, वीर क्षत्रियों की संसार को चकित कर देनेवाली कीर्ति-गाथा । प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता पं० गौरी-शंकर हीराचन्द्र ओझा की टिप्पणी ने इस पुस्तक का महत्व और भी बढ़ा दिया है । मूल्य ४।) सवाचार रुपये ।

भारत-शानन-पद्धति—इस समस्त प्रत्येक भारतवासी के पढ़ने योग्य है । प्राचीन और नवीन शासन-पद्धतियों का इतिहास लिखा गया है । राज-नौति और इतिहास के विद्यार्थियों के काम की चीज़ है । मूल्य ३।) साढ़ेतीन रुपये ।

आल्हा-रहस्य—वीरता की, धर्म की, और देश की आन रखनेवाले आल्हा के रोमाचकारी युद्धों का सजीव भाषा में वर्णन । मूल्य ॥) बारह आने ।

सुन्दरीतिलक—व्रजभाषा की मधुरता, कवियों की अलौकिक कल्पनाएं, संप्रहर्षा भारनेन्दु बा० हरिश्चन्द्र की गहरी जानकारी आदि का अपूर्व समावेश इसमें है । श्रीकृष्ण-प्रेममय शृङ्गार-रस की चुड़चुड़ाती हुई १८५५ सवैयाओं का वृहत् संग्रह । मूल्य १।) सवा रुपये ।

मानस-तत्त्व-बोधिनी—कविसम्राट् भक्तशिरोमणि महात्मा तुलसीदास ने अपनी रामायण में कैसे अनूठे भाव भर दिये हैं, कितनी गूढ़ उक्तियां कही हैं, इन बातों का इस पुस्तक में अपूर्व दिग्दर्शन कराया गया है । यह रामायण के क्रिष्किन्धाकाण्ड की वृहत् टीका है । बड़े आकार के ६०० पेजों में समाप्त हुई है । रामायण के शौकीनों को इससे लाभ बठाना चाहिए । मूल्य १।) डेढ़ रुपये ।

चरित-सुधार—यह पुस्तक प्रत्येक को पाठ्यपुस्तकों के समान कंठस्थ करने योग्य है । इसके एक उपदेश का यथावत् मर्म समझने से जीवन बहुत कुछ सुखी हो सकता है । स्थान २ पर उदाहरणों और कविताओं के योग से इस पुस्तक की रोचकता

और उपयोगिता बहुत अधिक बढ़ गयी है। नवयुवकों के आदर्श तक पहुँचाने का मार्ग बनलाने के लिए तथा कठिनाइयों के समक्ष पर उत्तम सलाह देने के लिए यह पुस्तक अनुपम है। मूल्य १) रुपया या ॥=) चौदह आने।

होनहार बालक—इसमें देशी और विदेशी १५ होनहार बालकों की मनोरञ्जक कथाओं का वर्णन है। अपने बालकों को यह पुस्तक अवश्य दीजिये और उनका भी भविष्य उज्ज्वल कीजिये। मूल्य ॥=) सात आने।

मीराबाई की जीवनी—लेखक—श्रीप्रयोध्यानवासी भीताराम-शरण भगवान् प्रसादजी रूपकला। इसमें मीराबाई का जीवनचरित तथा उनकी भगवद्भक्ति और प्रीति का बड़ा सुन्दर वर्णन है। पढ़ कर चित्त गद्गद हो जाता है। प्रत्येक पंक्ति प्रेमप्रवाह से परिपूर्ण है, भक्तिभाव का तो मानों भंडार ही है। मूल्य बढ़ी ॥=) दस आने, छोट्टी का १-) पाँच आने।

तृप्यन्ताम्—पंडित प्रतापनारायण मिश्र कृत। देश की सामयिक विवश अवस्था का विनोदात्मक वर्णन। जो लोग आलस में समय खोते हैं उन्हें इस पुस्तक को पढ़ कर अपने समय का सदुपयोग करना चाहिए। विनोद के ढग पर कर्तव्यशिक्षा की यह सर्वोत्तम पुस्तक है। मूल्य १-) डेढ़ आने।

सुचान-शिक्षा—परिणित प्रतापनारायण मिश्र कृत। यह विद्यार्थियों के बड़े काम की पुस्तक है। इसमें मिश्रजी के लिखे बालकोपयोगी नीति के निबन्ध हैं। मूल्य ॥) आठ आने।

कलिकौतुकरूपक—पं० प्रतापनारायण मिश्र कृत। यह मिश्रजी का लिखा एक छोटा नाटक है। इसमें कलि के कौतुक बड़ी खूबी के साथ दिखाये गये हैं। मूल्य ३-) तीन आने।

मन की लहर—पं० प्रतापनरायण मिश्र कृत । कविता और मिश्रजी के प्रेमियों की प्रिय पुस्तक । इसमें उनकी फुटकर संस्कृत, उर्दू, हिन्दी, और फारसी कविताओं का संग्रह है । मूल्य ३॥ साढ़े तीन आने ।

अधखिला फूल—पंडित अयोध्या सिंह उपाध्याय कृत । इसको विशुद्ध भाषा पाढ़ये, शब्दों की छुटा देखिये, और भावों की मनोहरता का अनुभव कीजिये । मूल्य ॥=॥ दस आने ।

ठेठ हिन्दी का ठाट—ठेठ हिन्दी में पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय का लिखा हुआ उपन्यास । इसमें दूसरी भाषा का एक भी शब्द नहीं आने पाया है । लेखक ने भाषा लिखने में कमाल किया है । मूल्य ॥॥ आठ आने ।

भाषा विज्ञानांकुर—भाषा-विज्ञान की उत्तम पुस्तक । इसमें हिन्दी भाषा की उत्पत्ति लिखी गयी है । विद्वानों और विद्यार्थियों के काम की है । मूल्य ॥॥ आठ आने ।

रघुवर-गुण-दर्पण—भगवान के गुण का वर्णन नहीं हो सकता, वे केवल अनुभव की वस्तु हैं । इस ग्रन्थ को सहायता से आप भगवद्गुणों का अनुभव कर सकते हैं । इस अलौकिक भावपूर्ण पुस्तक के विषय में अधिक लिखना व्यर्थ है । मूल्य ॥=॥ दस आने ।

उपदेश रामायण—आदिकवि वाल्मीकि और तुलसीदास कृत रामायण का गद्य में सारांश ! इस पुस्तक में दोनों महात्माओं के लोक और परलोक सुधारनेवाले उपदेश पूर्ण रूप से सरल भाषा में संगृहीत हैं । विद्यार्थी इससे पूरा लाभ उठा सकते हैं । मूल्य ॥=॥ पंद्रह आने ।

दशावतार कथा—भगवान के दशावतारों की कथाओं का रोचक वर्णन । आप दशावतारों की कथा जानते हों तो भी इस पुस्तक को एक बार अवश्य पढ़ें । इसमें बहुत सी नयी बातें मिलेंगी । मूल्य ॥॥ आठ आने ।

पातञ्जल-दर्शन-प्रकाश—पातञ्जलदर्शन के संस्कृत भाष्य और टीकाओं का सार-संग्रह करके यह उत्तम पुस्तक तैयार की गयी है। इसके भाषा-भाष्यकार अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान महात्मा बालासामी उदासीन हैं। प्रशंसित स्वामीजी के शिष्य स्वामी आत्म-स्वरूपजी ने अपनी द्विपणी जोड़ कर इस पुस्तक को और भी सबप्रिय बना दिया है। मूल्य २॥) वा ३) तीन रुपये।

पुरुषोत्तम रामचन्द्र—इस पुस्तक में आदर्श-चरित्र मर्यादा-पुरुषोत्तम महाराज श्रीरामचन्द्रजी का जीवन-चरित्र लिखा है। बालक-बालिकाओं के लिए यह बहुत ही उपयोगी पुस्तक है। दाम १॥) छः आने।

श्रीपीपाजी—यों तो भक्तमाल के द्वारा सभी भगवत् प्रेमी पीपाजी को जानते ही हैं, पर भारतविख्यात रूपकलाजी ने इस पुस्तक में चरित्र के साथ साथ मधुमक्खी जैसे मधुसंग्रह करती है उस प्रकार कितने दिनों के असम परिश्रम से गद्य पद्यमय संग्रह करके भक्तों के लिए अपूर्व रत्न प्रस्तुत कर दिया है। जिसके एक पद को पढ़कर चित्त आनन्द में मग्न हो जाता है। मूल्य १॥) छः आने।

पाप का फल—इस उपन्यास की कथा में सबसे बढ़कर विचित्रता यह है कि इसके घटना-क्रम को पढ़ने से मनुष्य पाप से घृणा करने लगता है और पुनः पाप की ओर उसकी प्रवृत्ति नहीं होती। ऊपार्ह वगैरह उत्तम है। दाम १॥) सात आने।

उपाङ्गिनी—यदि शुद्ध सात्विक प्रेम की दिव्य छटा देखनी हो, यदि समाज की प्रचलित कुरिनियों का परिणाम देख कर शिक्षा ग्रहण करना चाहते हों, तो इस शिक्षाप्रद नाटक का पाठ कीजिये और अभिनय देखिये। इसके लेखक सुप्रवीण हिन्द-लेखक और सुकवि सौन्दर्योपासक के रचयिता श्रीब्रजनन्दन सहायजी हैं। मूल्य १) एक रुपये।

मृगमयी—बंगाल के सुप्रसिद्ध उग्रन्यास-लेखक बाबू बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय कृत “कपाल कुण्डला” का यह उपसंहार है। पुस्तक ऐसी रोचक है कि हाथ में लेने पर अन्त तक पढ़े बिना छोड़ने का जी नहीं चाहता। (दाम केवल ॥) बारह आने।

वैष्णव-बाटिका—मुंशी हरिजन लाल कृत। भक्ति-रस-पूर्ण ललित पदों का अपूर्व संग्रह, श्रीराम-भक्तों का कण्ठहार है—मूल्य ॥) बारह आने।

कुसुम कुंज—बाबू शिवनन्दन सहाय की कविताओं का संग्रह, अवश्य देखने योग्य है। मूल्य केवल १-) पांच आने।

गौराङ्ग महाप्रभु—बाबू शिवनन्दन सहाय कृत। श्रीनामकीर्तन की महिमा प्रकट करके भारतीय जनता को और विशेषतः पूर्व-बंगाल-निवासियों को प्रेम-भक्ति में लीन करके कृतार्थ करनेवाले लीलावतारी श्रीगौराङ्ग महाप्रभु का ऐसा विवेचनापूर्ण और शिक्षाप्रद वृहत् जीवन-चरित्र अब तक कहीं नहीं छपा है। वर्णनशैली बड़ी ही मनोहारिणी है। प्रेम-पिपासुओं को अवश्य ही इसे पढ़ना चाहिए। ऐसी सुन्दर जिल्दवाली पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये रखवा गया है।

राजकुमार कुणाल—महाराज आशोक के पुत्र राजकुमार कुणाल पर उनकी विमाता मोहित हुई थी; परन्तु जितेन्द्रिय कुणाल ने उसका तिरस्कार करके अपने धर्म की रक्षा की। इसपर क्रुद्ध हो कर उस दुष्टा ने कुणाल की आंखें निकलवा लीं। फिर भी कुणाल ने उसे क्षमा हा किया। इसी ऐतिहासिक कथा का अतीव रोचक एवं शिक्षाप्रद वर्णन इस पुस्तक में है। मूल्य १) एक रुपया मात्र।

धर्मचिन्तामणि—धर्म के क्या लक्षण हैं, धर्म के कितने भेद हैं; प्रत्येक भेद का वर्णन, वर्णाश्रम-धर्म क्या है, गृहस्थों के क्या धर्म हैं, क्या कर्तव्य हैं, स्त्रियों का क्या कर्तव्य है इत्यादि बातें इस

सुन्दरता से प्रमाण के साथ लिखी हैं कि एक बार १० से डस और विश्वास हो जाता है। इसके रचयिता महामहोपाध्याय पं० रघुन्धन त्रिपाठी हैं। मूल्य वं वत्त (=) छः आने।

साहित्य लहरी—प्रधात् सूरदास के सटीक दृष्टकूट—लगभग २०० कूटमय भजनों का संग्रह सटीक। अन्त में काशी के प्रसिद्ध सरदार कवि का लिखा उपसंहार है। अनेक पुस्तकों और कविताओं से सूरदासजी की जीवनी और उनके समय के अन्य ११७ उत्तम कवियों का संक्षिप्त वृत्तान्त भी लिखा है। मूल्य २) से घटा कर १) एक रुपया कर दिया गया है।

उपासना-प्रकाश—इसमें उपासना, विशेष कर श्रीरामोपासना के तत्त्व और रहस्य प्रकाशित किये गये हैं। मूल्य ॥) आठ आने।

अहिंसा-तत्त्व—इसमें अहिंसा का स्वरूप, यथार्थ अर्थ और निष्कर्ष आदि भली भाँति दर्शाया गया है। मूल्य (=) छः आने।

फाहियान की यात्रा—पुरातन काल में चीन-देशीय बौद्ध-धर्मानुयायी अपने पतितपावन परमपूनीत तीर्थस्थल भारतवर्ष के भिन्न भिन्न भागों के दर्शन और भ्रमण के लिए समय समय पर आते गये हैं, वे लोग अपना यात्राविवरण भी लिख कर छोड़ गये हैं। उन्हींमें से “फाहियान” भी एक सुप्रसिद्ध पुरुष हैं। सबसे पहले इन्हींने भारतवर्ष की यात्रा की थी। इसी यात्रा का वर्णन इस पुस्तक में अच्छे ढंग से लिखा गया है। मूल्य ॥) आठ आने।

चयनिका—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कविताओं का संग्रह है। जो लोग इस चयनिका का अवलोकन कर इसके कविताकुसुमों के रस-माधुर्य का आस्वादन करेंगे उन्हें अकथनीय आनन्द होगा और वे निश्चय भारतेन्दु-काव्योपवन में बिहार करने के अभिलाषी होंगे। इस परमोपयोगी पुस्तक का न्याछावर १-) पाँच आने मात्र है।

सत्यहरिश्चन्द्र—सत्यवशी, धर्मशूर श्रीहरिश्चन्द्र को कौन नहीं जानता है। इस नाटकसे स्पष्ट जाना जाता है कि आने धर्मपथ पर चलनेवाले धर्मात्मा लोग दुःसह विपत्ति आने पर भी अपनी धोरती और धर्म से तनिक भी नहीं डिगते। सबके सुभीते के लिए मूल्य १ से घटा कर २) दो आने कर दिया गया है।

मुद्रा राक्षस—रटने के राजा नन्द, चन्द्रगुप्त के मन्त्री राक्षस और चाणक्य की राजनीति की बह्नि और खन्धों से पूरित अपूर्व नाटक। राजाओं और मन्त्राजियों और जमींदारों के तो अवश्य देखने योग्य है। इसका भी मूल्य ॥२) से घटाकर ॥३) छः आने कर दिया गया है।

दुर्लभ बन्धु—यदि सच्चे मित्र का नमूना देखना चाहते हों तो इसे अवश्य देखिये। इसमें अनन्त और बसन्त इन दोनों मित्रों की असीम और सखी मित्रता का वर्णन पढ़ने ही योग्य है। इसकी उत्तमता के अनुसार ॥३) आठ आने दाम बहुत ही थोड़ा है।

नीलदेवी—मुसलमानी अमलदारों में वे हिन्दुओं के धन धर्म और इज्जत पर किस प्रकार हमला करते थे और उस समय क्षत्राणी लोग किस प्रकार अपनी सतीत्व-रक्षा करते थे। सो अतिरोचक बह्नियाँ में वर्णित है। नाटक उत्तम है। मूल्य २) दो आने हैं।

भारत दुर्दशा—इसमें भारत की पूरी दुर्दशा दर्शाया गया है। वर्णन अत्यन्त रोचक है। मूल्य १) डेढ़ आने।

अन्धेर नगरी, प्रहसन—‘अन्धेर नगरी चौपट राजा। टके सेर भाजी टके सेर खाजा।’ बस, इसमें इसी कहावत की मूल कहानी है। यह अपने ढंग का अपूर्व नाटक है। मूल्य १) डेढ़ आने।

रघुबीर-पत्रपुष्प—हिन्दी-भाषियों के सुपरिचित कविवर श्रीरघुबीर नारायणजी की देशभक्ति तथा प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन सम्बन्धी कविताओं का संग्रह। देशभक्तों का बहुमूल्य कंठहार। इसकी बटोहिया आदि कई कविताओं का प्रचार बिहार प्रान्त के गाँव गाँव में

हो/गया है और उन्हें अलग छपवाकर कितनोंने अच्छी रकमें पै करली हैं। अवश्य संग्रह कीजिये। मूल्य ॥=॥ छः आने।

रघुवीर-रस-रंग—यह भी कबिवर श्रीरघुवीर नारायणजी कृति है। इसमें कवि की प्रेमाभक्ति और धिनय की कविताओं व संग्रह है। कई पद्य मनोहर प्रान्तीय भाषा में लिखे गये हैं। प्रत्ये हिन्दीभाषी को इस अक्रिसुधा-तरङ्गिणी में स्नान करके अपने मन प्राण को शीतल करना चाहिये। मूल्य ॥=॥ दस आने।

बङ्कम साहित्य—बंगला के सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखक बङ्किम-चन्द्र चटर्जी की रचनाओं से हिन्दीप्रेमी अच्छी तरह परिचित हैं। उन्हीं मनोहर उपन्यास-रत्नों को घर घर पहुँचाने के लिए इस अति सुलभ ग्रन्थावली की योजना हुई है। प्रथम गुच्छ में इन्दिरा, दुर्गेशनन्दिनी, देवीचौधुरानी और द्वितीय गुच्छ में युगलाङ्गुरोय, राधारानी, राजसिंह तथा तृतीय गुच्छ में कपालकुण्डला, मृणालिनी, और कृष्णकान्त का दानपत्र है। प्रत्येक गुच्छ का मूल्य १॥ रुवा रूपा है।

अन्य गुच्छ भी शीघ्र ही प्रकाशित होंगे।

मिलने का पता—

मैनेजर —खड्गविलास प्रेस,

बांकोपुर।

